भारत में

बौद्ध-निकायों का इतिहास

श्रीनारायण श्रीवास्तव

किशोर विद्या निकेतन
भदैनी, वाराणसी

Ac. Gunratnasuri MS
Jin Gun Aradhak Trust

प्रकाशक :
किशोर विद्यानिकेतन
भदैनी, वाराणसी

©लेखक :
श्रीनारायण श्रीवास्तव

मार्च : १९८१

मुद्रक ।
देववाणी प्रेस, स्टेशन रोड
मलदहिया, वाराणसी

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

प्रस्तुत ग्रन्थ में लेखक ने बौद्ध–निकायों का इतिहास प्रस्तुत करते हुए उन निकायों की पृष्ठभूमि और विशद परिचय, अत्यन्त परिश्रम के साथ एवं तत्कालीन एवं परवर्ती सम्बद्ध साहित्य का सम्यक् अनुशीलन करते हुए, प्रस्तुत किया है। स्वभावतः इसके लिए उन्हें गहन शोध–कार्य करना पड़ा है। बौद्ध निकाय अर्थात् बौद्ध भिक्षु-संघ भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में इनकी प्रेरणा से मिल-जुलकर कार्य करते रहे। परन्तु उनके महापरिनिर्वाण के बाद इन निकायों, भिक्षु संघों में मतभेद बढ़ने लगे जिससे अंततः इस देश में बौद्ध धर्म की क्रमिक अवनति होती गई।

इस प्रकार इस शोध–ग्रन्थ से पाठक को न केवल बौद्ध धर्म का पूरा एवं स्पष्ट विवरण एक स्थान पर मिल जाता है, उसके साथ ही यह जानकारी भी मिल जाती है कि बौद्ध धर्म की उन्नति एवं अवनति क्यों हुई और कालान्तर में उसके निरन्तर, निर्बाध प्रसार में किस कारण बाधा उपस्थित हुई। इस प्रकार इस शोध प्रबंध में बौद्ध धर्म के प्रारंभिक काल से सातवीं शताब्दी तक के भारतीय इतिहास की झलक मिल जाती है। हिन्दी भाषा में इस प्रकार के ग्रन्थ प्रायः नहीं के बराबर हैं। इस अर्थ में लेखक द्वारा एक बहुत बड़े अभाव की पूर्ति की गई है, इसमें संदेह नहीं। इसलिए लेखक निश्चय ही प्रशंसा और बधाई के पात्र हैं।

रांँची
१५-३-८१

डॉ० फणीन्द्रनाथ ओझा
विश्वविद्यालय प्राचार्य एवं अध्यक्ष,
इतिहास विभाग, रांँची विश्वविद्यालय, रांँची

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

विषय-सूची

प्रस्तावना

प्रथम अध्याय **बौद्धधर्म का सामान्य परिचय** १–४५

भगवान् बुद्ध का जीवनचरित्र: जन्म, गृहत्याग, सुजाता की खीर, बुद्धत्व की प्राप्ति, धर्मचक्र-प्रवर्तन, धर्मप्रचार महापरिनिर्वाण, बौद्धधर्म के मूल सिद्धान्तों का संक्षिप्त परिचय, चार आर्यसत्य, प्रतीत्यसमुत्पाद, बोधिपक्षीय धर्म, अनित्य-दुःख-अनात्म त्रिलक्षण, कर्म और पुनर्जन्म, निर्वाण, भिक्षु-भिक्षुणियों का जन्मसम्पर्क, समाज में इनका स्थान।

द्वितीय अध्याय **भिक्षुसंघ का गठन** ४६–६४

भिक्षुओं के लिए प्रज्ञप्त शिक्षापद, शिक्षापदों का क्रमिक विकास, भिक्षुसंघ को एकताबद्ध करने का उपाय, भिक्षुओं में प्रथम मतभेद, तथागत द्वारा भिक्षुओं को सतर्क करना, बौद्ध मन्तव्यों का सूचीकरण, चार महाप्रदेशों की देशना।

तृतीय अध्याय **बौद्ध निकायों का प्रारम्भिक युग** ६५–८०

बुद्धकाल में भिक्षुनिकाय का स्वरूप, कुशीनारा में सम्मेलन तथा पाँच सौ भिक्षुओं का चयन, प्रथम संगीति की कार्यवाही, बुद्धवचनों का एकीकरण, आयुष्मान् आनन्द के प्रमाद, आयुष्मान् पुराण द्वारा संगीतिपाठ का बहिष्कार, नये निकायों का प्रादुर्भाव।

चौथा अध्याय **बौद्ध निकायों में पारस्परिक मतभेद** ८१–९०

भिक्षुओं में विनय के प्रति शिथिलता, दस विनयविरोधी आचरण, यश काकण्डपुत्र द्वारा प्रतिरोध,

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

भिक्षुओं का दो पक्षों में विभाजन, दोनों ओर से पक्ष-संग्रह, वैशाली में द्वितीय संगीति, दो निकायों का सृजन दोनों की अलग-अलग संगीतियाँ।

पाँचवाँ अध्याय बौद्ध निकायों का क्रमिक विकास ८१--११५

नये निकायों का प्रादुर्भाव, अट्ठारह भिक्षुनिकाय, भिक्षुसंघ में भयंकर मतभेद मोग्गलिपुत्ततिस्स द्वारा निराकरण, पाटलिपुत्र में तृतीय संगीति का आयोजन, कथावत्थुप्पकरण की देशना, विभिन्न प्रदेशों में धर्म-प्रचार, बौद्ध निकायों के दो प्रमुख भेद: स्थविरवाद तथा महासांघिक।

छठाँ अध्याय बौद्ध निकायों की परम्परा ११६–१३९

(क) स्थविरवादी परम्परा—

महामहेन्द्र द्वारा त्रिपिटक का लंका ले जाना, सिंहली भाषा में पालि अट्ठकथाओं का अनुवाद, आलोक विहार में चतुर्थ संगीति, त्रिपिटक का लिपिबद्ध किया जाना।

(ख) महायानी परम्परा—

महायान का प्रचार-प्रसार, संस्कृत में बौद्ध साहित्य का सृजन, कुण्डलवन विहार में चतुर्थ संगीति का आयोजन बुद्धवचनों का संस्कृत में एकीकरण, मुख्य महायान सूत्र, महायान का महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक कार्य।

सातवाँ अध्याय बौद्ध निकाय और उनके सिद्धान्त १३९--१९२

(क) स्थविरवादी परम्परा : स्थविरवाद,

महिंसासक, वात्सीयपुत्र, सर्वास्तिवाद, धर्मगुप्तिक,

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

कश्यपीय, सांक्रान्तिक, सूत्रवादी, धर्मोत्तरीय, भद्रयानिक, छन्नागारिक, सम्मितीय

(ख) महायानी परम्परा : महासांघिक
गोकुलिक, एकव्यवहारिक, प्रज्ञप्तिवादी, बाहुलिक, चैत्यवादी,

(ग) विभिन्न नये निकायः हेमवत
राजगिरिक, सिद्धार्थिक, पूर्वशैलीय, अपरशैलीय, वाजिरीय (बज्रयानी), वैतुत्य, अन्धक, उत्तरापथक, हेतुवादी, नीलपटदर्शन

अठवाँ अध्याय उपसंहार ११३–२१५

बौद्ध निकायों के क्रमिक विकास का सर्वेक्षण, ह्वेनसांग द्वारा वर्णित भारत के भिक्षुनिकाय तथा उनके विहार, इत्सिंग द्वारा वर्णित तत्कालीन भिक्षुनिकाय, विभिन्न निकायों का पुरातात्त्विक साक्ष्य, बौद्ध धर्म के उत्थान-पतन में भिक्षुनिकायों की भूमिका, एक शास्ता तथा एक लक्ष्य के विभिन्न स्वरूप, बहुजनहिताय, बहुजनसुखाय की भावना से प्रेरित, भिक्षुसंघ के प्रति बौद्धधर्म की उदात्त भावना।

सहायक ग्रन्थों की सूची २१७–२२०

पालि, संस्कृत, हिन्दी, सिंहली, अंग्रेजी, पत्र-पत्रिकाएँ।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

प्रस्तावना

भगवान् बुद्ध ने बुद्धत्व-प्राप्ति के पश्चात् पैंतालीस वर्षों तक सम्पूर्ण मध्यदेश में पैदल चारिका करते हुए उपदेश दिया था। उनके समय में ही बौद्ध धर्म मध्यदेश से बाहर जा चुका था। प्रायः उत्तर भारत के सभी जनपदों में उनके प्रति जनसाधारण में प्रगाढ़ श्रद्धा थी। उनके विहारों के निर्माण हो चुके थे और सहस्रों भिक्षु उनके अनुयायी थे। कोसलनरेश प्रसेनजित्, मगध नरेश बिम्बसार और अजातशत्रु, अवन्ति-नरेश चण्डप्रद्योत, वत्सनरेश उदयन आदि बौद्धधर्म के शुभेच्छु थे। भगवान् बुद्ध के जीवनकाल में केवल एक बार ही कौशाम्बी में भिक्षुओं में एक साधारण बात को लेकर पारस्परिक मतभेद उत्पन्न हो गया था, जो तीन मास के उपरान्त ही शान्त हो गया था, फिर भगवान् बुद्ध के महापरिनिर्वाण के समय तक भिक्षुसंघ में किसी प्रकार का मतभेद उत्पन्न नहीं हुआ। सभी भिक्षु दूध-पानी के समान मिल जुल कर परस्पर सौहार्द और मैत्री से अपने लक्ष्य की प्राप्ति में जुटे रहते थे। किन्तु भगवान् बुद्ध के महापरिनिर्वाण के पश्चात् ही भिक्षु-संघ में मतभेद दृष्टिगोचर होने लगा। उसको रोकथाम के लिए प्रथम संगीति का आयोजन हुआ, फिर उसके सौ वर्षो के पश्चात् द्वितीय संगीति हुई तत्पश्चात् बुद्ध-महानिर्वाण के २१८ वर्षो के बाद तृतीय संगीति। स्थविरवाद की चौथी संगीति बट्टगामणी अभय के समय (ईस्वी पूर्व २७-१ ईस्वी सन्) में श्रीलंका में सम्पादित हुई और भारत में चौथी संगीति काश्मीर के कुण्डलवन विहार में कनिष्क के समय (ईस्वी सन् ७८-१००) में हुई थी। इन संगीतियों में भिक्षुसंघ द्वारा किये गए प्रयत्नों तथा राजाओं से प्राप्त संरक्षणों से भी भिक्षुसंघ एकाबद्ध नहीं रह सका। उनमें मतभेद बढ़ता ही गया और अनेक निकायों का प्रादुर्भाव होता गया। सम्राट् अशोक के समय तक इन निकायों की संख्या अट्ठारह तक पहुँच चुकी थी। पीछे इनमें और भी वृद्धि हो गयी। साम्राट् अशोक के आचार्य भदन्त मोग्गलिपुत्ततिस्स ने अपने कथावत्थुप्पकरण के उपदेश द्वारा स्थविरवाद के सिद्धान्तों का निराकरण किया किन्तु महायानी परम्परा के निकाय उससे आबद्ध

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

नहीं थे। इस प्रकार स्थविरवाद और महायान दोनों ही परम्पराओं में निकायों की बढोत्तरी होती गयी और यह क्रम आगे भी चलता रहा।

इस प्रबन्ध में बुद्ध-काल (ईस्वी पूर्व छठीं शताब्दी) से लेकर सातवीं शताब्दी ईस्वी तक के इन्हीं निकायों के इतिहास को प्रस्तुत किया गया है। यद्यपि श्रीलंका, बर्मा, थाईलैण्ड आदि देशों में पालि, सिंहली, बर्मी आदि भाषाओं में बौद्धनिकायों के सम्बन्ध में पूर्वाचार्यों ने बहुत कुछ लिखा है, किन्तु उन्होंने इसे वैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत नहीं किया है और उनका मुख्य उद्देश्य केवल अपने देश के बौद्ध निकायों पर प्रकाश डालना ही है। मैंने इस प्रबन्ध में अब तक के उपलब्ध सभी प्रकार के अन्तर्बाह्य साक्ष्यों, पुरातात्त्विक प्रमाणों तथा शोध-कार्यों का उपयोग करते हुए वर्ण्य विषय को प्रस्तुत किया है। हमारे देश में इस विषय में बहुत कम लिखा गया है और हमारी जानकारी के अनुसार किसी भी भारतीय शोध-प्रज्ञ ने अब तक इस दिशा में कार्य नहीं किया है।

सम्पूर्ण प्रबन्ध आठ अध्यायों में विभक्त है। इनमें प्रथम अध्याय सामान्य परिचय और अन्तिम अध्याय उपसंहार से सम्बन्धित है।

इस प्रबन्ध के प्रथम अध्याय में बौद्ध धर्म का सामान्य परिचय दिया गया है। भगवान् बुद्ध तथा उनकी शिक्षाओं पर गवेषणापूर्ण प्रकाश डाला गया है। बौद्ध धर्म के मूल सिद्धान्तों का संक्षिप्त परिचय दिया गया है और तत्कालीन धार्मिक परिस्थितियों का वर्णन किया गया है। इसके साथ यह भी बतलाया गया है कि बौद्धधर्म और उसके अनुयायियों अर्थात् भिक्षु-भिक्षुणियों का समाज में क्या स्थान था और उनका जन समाज से कितना प्रगाढ़ सम्बन्ध था। यह सम्पूर्ण विवरण संप्रामाणिक अन्तः एवं बाह्य साक्ष्यों के आधार पर प्रस्तुत किया गया है। विभिन्न विद्वानों के विचार-वैषम्य तथा अन्वेषणों का भी विशुद्ध रूप से उपयोग किया गया है। अब तक के इस सम्बन्ध में हुए शोध कार्यों के परिप्रेक्ष्य में भी सांगोपांग विवेचन करने का प्रयत्न किया गया है, जिससे यह अध्याय बौद्धधर्म के सामान्य परिचय के लिये एक प्रामाणिक प्रबन्ध बन गया है।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

दूसरे अध्याय में भिक्षुसंघ के गठन का परिचय दिया गया है और बताया गया है कि भिक्षुओं के शिक्षापदों (परिपालनीय नियमों) का किस प्रकार प्रारम्भ हुआ और कैसे इनका क्रमिक विकास हुआ अर्थात् शिक्षापदों की किस प्रकार क्रमशः बढोत्तरी हुई ? भगवान् बुद्ध ने भिक्षुसंघ को किस प्रकार संगठित किया, भिक्षुसंघ के प्रथम मतभेद को दूर किया और भविष्य में मतभेद के प्रति सदा सतर्क रहने की चेतावनी देते हुए बौद्ध मन्तव्यों का सूचीकरण कराया तथा बौद्धधर्म के लिए चार महाप्रदेशों (कसौटियों) की देशना की जिससे कि बुद्ध द्वारा प्रवेदित धर्म चिरस्थायी बना रहे तथा उनके द्वारा संचालित भिक्षु-संघ की परम्परा अविच्छिन्न बनी रहे ।

तीसरे अध्याय में बौद्ध निकायों के प्रारम्भिक युग का वर्णन किया गया है। इस अध्याय में बतलाया गया है कि बुद्ध-काल में भिक्षु-निकाय का क्या स्वरूप था। किन कारणों से प्रथम संगीति हुई और उसमें बुद्ध-वचनों का एकीकरण किया गया और त्रिपिटक बुद्ध-वचन का सम्पादन किया गया। इस संगीति का एक मात्र उद्देश्य था बुद्ध और भिक्षुसंघ के प्रति श्रद्धा एवं मैत्री-भाव उत्पन्न करना तथा सभी भिक्षु-भिक्षुणियों को एक सूत्र में आबद्ध करना। फिर भी आयुष्मान् पुराण जैसे कुछ पुराण-पंथी भिक्षुओं ने इस संगीति की कार्यवाही को अंगीकृत नहीं किया और फलस्वरूप नये निकायों काप्रादुर्भावहुआ।

चौथे अध्याय में बौद्ध निकायों के पारस्परिक मतभेद का विवेचन किया गया है। साथ ही यह बतलाया गया है कि किस प्रकार और किन परिस्थितियों में भिक्षुओं में विनय के प्रति शिथिलता आती गयी। वे दस विनय-विरोधी आचरण करने लगे। यशकाकण्डपुत्र ने इसका प्रतिरोध किया और सम्पूर्ण भिक्षु-संघ दो पक्षों में विभाजित हो गया। इन दोनों ही पक्षों के वरिष्ठ भिक्षु वैशाली में एकत्र हुए और तथागत के महापरिनिर्वाण के सौ वर्षों के पश्चात् ही द्वितीय संगीति का सम्पादन हुआ। इसी से संगीति के समय भिक्षुसंघ दो प्रमुख निकायों में विभक्त हो गया और दोनों की अलग-अलग संगीतियाँ हुईं।

पाँचवें अध्याय में बौद्ध निकायों के क्रमिक विकास का वर्णन किया गया है और बतलाया गया है कि किस प्रकार नये निकायों का

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

प्रादुर्भाव हुआ। धीरे-धीरे उनकी संख्या अट्ठारह भिक्षु-निकायों तक पहुँच गयी, तब भिक्षुसंघ में भयंकर मतभेद उत्पन्न हो गया, जिसका निराकरण अशोक के गुरु भदन्त मोग्गलिपुत्ततिस्स द्वारा किया गया और भगवान् बुद्ध के महापरिनिर्वाण के २१८ वर्षों के पश्चात् पाटलिपुत्र में तृतीय संगीति का आयोजन हुआ। उसी संगीति में भदन्त मोग्गलिपुत्ततिस्स स्थविर ने कथावत्थुप्पकरण की देशना की। संगीति के उपरान्त नियोजित ढंग से विभिन्न प्रदेशों में धर्मप्रचार भेजे गये और बौद्ध निकायों के दो प्रस्तुत भेद स्थविरवाद तथा महासांघिक (महायान) उठ खड़े हुए।

छठें अध्याय में सम्पूर्ण बौद्ध निकायों की परम्परा का परिचय दिया गया है जो स्थविरवादी तथा महायानी परम्परा के अनुसार दो वर्गों में विभक्त है। स्थविरवादी परम्परा के अन्तर्गत बतलाया गया है कि अशोक के पुत्र महामहेन्द्र द्वारा किस प्रकार पालि त्रिपिटक लंका ले जाया गया। सिंहली भाषा में पालि अट्ठकथाओं का अनुवाद हुआ। आलोक विहार में चतुर्थ सँगीति सम्पन्न हुई और त्रिपिटक लिपिबद्ध किया गया। महायानी परम्परा के अन्तर्गत महायान बौद्धधर्म के प्रचार-प्रसार पर प्रकाश डाला गया है और बतलाया गया है कि संस्कृत में बौद्ध साहित्य का किस प्रकार सृजन हुआ ? कुण्डलवन विहार में चतुर्थ संगीति का आयोजन हुआ। वहीं बुद्ध-वचनों का संस्कृत में एकीकरण किया गया। यह महायान का महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक कार्य था। यहीं से महायान दृढ़मूल हुआ और सम्पूर्ण भारत तथा निकटवर्ती चतुर्दिक् पड़ोसी देशों में उसका प्रभाव बढ़ा।

सातवें अध्याय में बौद्ध निकायों तथा उनके सिद्धान्तों का परिचय दिया गया है। इन्हें तीन भागों में विभक्त किया गया है—

१—स्थविरवादी परम्परा—इसके अन्तर्गत बारह भिक्षु-निकाय आये हैं।

२—महायानी परम्परा—इसके अन्तर्गत छः भिक्षुनिकायों का वर्णन है।

इस प्रकार ये अट्ठारह निकाय अशोक-काल तक अपना स्वरूप ग्रहण कर चुके थे और इनकी परम्परा दृढ़ हो चुकी थी। प्राचीन पालि

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

तथा संस्कृत ग्रन्थों में प्राप्त अभिलेखों आदि से इनकी स्थिति भी प्रमाणित हो चुकी है, जिनका परिचय मैंने अपने इस ग्रन्थ में, उनके दार्शनिक मतों के विश्लेषण के साथ प्रस्तुत किया है। इनमें से अधिकांश का परिचय कथावत्थुप्पकरण की अट्ठकथा से प्राप्त हुआ है तथा कुछ के परिचय संस्कृत महायानी ग्रन्थों से मिले हैं। हमने यथास्थान उद्धरण-सहित उनके मतों का विवेचन किया है।

३—विभिन्न नये निकाय—इनके अन्तर्गत आठ निकायों का वर्णन है, जिनका प्रादुर्भाव सम्राट् अशोक के पीछे हुआ था अर्थात् तृतीय संगीति के उपरान्त ये प्रकाश में आये थे और लगभग तीसरी शताब्दी ईस्वी तक इनका विकास होता रहा। यद्यपि सातवीं शताब्दी ईस्वी में जब चीनी यात्री ह्वेनसांग ने भारत का भ्रमण किया था, तब भी इनमें से अधिकांश निकाय विद्यमान थे और कुछ तो बड़े ही प्रभावशाली थे। हमने इनकी एक वृहद् सूची भी प्रस्तुत की है, जिससे विदित होता है कि किन-किन निकायों के भिक्षु किन-किन स्थानों पर कितनी-कितनी संख्या में विद्यमान थे तथा किन-किन विहारों अथवा स्थानों पर उनका आधिपत्य था।

आठवाँ अध्याय उपसंहार का है। इनमें बौद्ध निकायों के क्रमिक विकास का सर्वेक्षण किया गया है। चीनी यात्री ह्वेनसांग, इत्सिंग आदि के द्वारा वर्णित निकायों का भी आकलन किया गया है और पुरातात्त्विक साक्ष्यों द्वारा उनकी स्थिति की प्रामाणिकता को सिद्ध किया गया है। बौद्धधर्म के उत्थान-पतन में भिक्षुनिकायों की क्या भूमिका थी, इसका भी गवेषणात्मक विवेचन किया गया है। आगे यह भी बतलाया गया है कि इन भिक्षु-निकायों के एक शास्ता थे तथा एक लक्ष्य के ये विभिन्न स्वरूप थे। ये सभी भिक्षु-निकाय बहुजनहिताय, बहुजनसुखाय की भावना से प्रेरित थे और भिक्षुसंघ के प्रति बौद्धधर्म के जनमानस में उदात्त भावना थी।

भारत के प्राचीन इतिहास को पूर्णरूपेण समझने के लिए बौद्ध निकायों के इतिहास को जानना आवश्यक है। भारत में बौद्धधर्म के उत्थान और पतन के इतिहास की जानकारी के लिये भी बौद्ध निकायों का इतिहास एक महत्त्वपूर्ण साधन है। यह श्रीलंका, बर्मा, तिब्बत,

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

चीन, नेपाल आदि पड़ोसी बौद्ध देशों के साथ भारत के सांस्कृतिक सम्बन्धों के इतिहास का भी एक महत्त्वपूर्ण अंग है। प्राचीन भारत की सांस्कृतिक, सामाजिक, दार्शनिक और धार्मिक अवस्थाओं के अध्ययन में भी इस ग्रन्थ का एक महत्त्वपूर्ण स्थान होगा। एक प्रकार से यह प्रबन्ध बौद्ध धर्म के अपने प्रारम्भिक काल से लेकर सातवीं शताब्दी ईस्वी तक के भारत के इतिहास का एक विशिष्ट अंग है।

इस मौलिक ग्रन्थ का निर्देशन बौद्ध दर्शन, साहित्य एवं इतिहास, के अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त विद्वान् डॉ० भिक्षु धर्मरक्षित द्वारा सम्पन्न हुआ है। इस कार्य-सम्पादन में जो स्नेह, सहानुभूति, एवं सतत सहायता उनसे मुझे प्राप्त हुई है, उसके लिए मैं आजीवन उनका ऋणी रहूँगा। यह मेरे लिए बड़े सौभाग्य की बात है कि ऐसे लब्धप्रतिष्ठ विद्वान्, विचारक एवं दार्शनिक के सान्निध्य में रहकर कार्य करने का शुभ अवसर मुझे प्राप्त हुआ। वे मेरे निर्देशक ही नहीं, अपितु जीवन के प्रेरणास्रोत भी हैं। ऐसी महान् विभूति के द्वारा इस ग्रन्थ का निर्देशन मेरे लिए गौरव की बात है।

मैं राँची विश्वविद्यालय के लब्धप्रतिष्ठ विद्वान् डॉ० फणीन्द्रनाथ ओझा, अध्यक्ष एवं प्रोफेसर, इतिहास-विभाग, राँची विश्वविद्यालय, राँची का भी हृदय से आभारी हूँ, जिनके उत्साह-वर्धन तथा स्नेहिल सहायता के सहारे ही मैं इस ग्रन्थ को पूर्ण करने में सफल हो सका। इनके विविध सुझावों एवं मार्गदर्शनों के लिए भी मैं हृदय से आभारी हूँ।

डॉ० सुशील माधव पाठक, इतिहास-विभाग राँची, विश्वविद्यालय का भी मैं अत्यन्त कृतज्ञ हूँ, जिनके प्रोत्साहन, स्नेह एवं अनेकानेक सुझावों द्वारा ही मैं इस महान् कार्य को पूर्ण करने में समर्थ हो सका हूँ।

मैं अपने ज्येष्ठ भ्राता डॉ० रमाशंकर श्रीवास्तव का भी आभार व्यक्त करने में अपना परम सौभाग्य समझता हूँ, जिन्होंने समय-समय पर बहुमूल्य एवं अलभ्य पुस्तकों को अध्ययनार्थ देकर एवं प्रेरणा द्वारा उत्साहित करके मुझे इस योग्य बनाया कि मैं बौद्धधर्म पर अपना

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

विचार व्यक्त कर सका। मुझे तो ऐसा लगता है कि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में मैं जो कुछ भी कर सका हूँ वह सब उन्हीं की देन है।

इसके साथ ही मैं श्रद्धेय डॉ० श्याम नारायण मेहरोत्रा, निदेशक, शिक्षा-विभाग, उत्तर प्रदेश का भी हृदय से आभारी हूँ जिनके प्रोत्साहन एवं स्नेह के बल पर ही मैं इस कार्य को पूर्ण करने में सक्षम हो सका। साथ ही मैं श्री रामचन्द्र माहेश्वरी जिला विद्यालय निरीक्षक वाराणसी को भी उनके समय-समय पर दिये गये प्रोत्साहनों के लिए हृदय से आभार व्यक्त करता हूँ। इसके साथ ही मैं अपने परम हितैषी डॉ० आशुतोष उपाध्याय एवं अन्य सहयोगियों का हृदय से आभारी हूँ, जिन्होंने समय-समय पर इसे पूर्ण कराने में सहयोग प्रदान किया है।

अन्त में मैं प्रकाशक श्री नन्दकिशोर जी द्विवेदी एवं मुद्रक श्री रवीन्द्रनाथ द्विवेदी का आभारी हूँ जिनके सत्प्रयास से शीघ्रातिशीघ्र प्रकाशन संभव हो सका। आर्य महिला डिग्री कालेज, वाराणसी के प्राध्यापक डॉ० कपिलदेव पाण्डेय के सत्प्रयास एवं निर्देशन से इस ग्रन्थ का प्रकाशन इतना भव्य एवं शुद्ध हो सका अतः मैं उनका हृदय से आभारी हूँ।

श्री नारायण श्रीवास्तव

महाशिवरात्रि, २०३७ वि० सं०

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

प्रथम अध्याय

बौद्ध धर्म का सामान्य परिचय

भगवान बुद्ध का जीवन चरित्र

जन्म

भगवान् बुद्ध न केवल हमारे देश के, प्रत्युत् विश्व के एक महान् विभूति थे। उनका व्यक्तित्व विश्व के महान् व्यक्तित्वों में से एक था। यही नहीं, उनके व्यक्तित्व की गणना महान् पुरुषों में सर्वोपरि की जाती है। हमारे देश का इतिहास यद्यपि बहुत प्राचीन है, किन्तु ऐतिहासिक–काल भगवान् बुद्ध से ही प्रारम्भ होता है। उनकी देन हमारे देश की अक्षुण्ण–मणि है जो शाश्वत, चिरन्तन तथा अक्षय निधि के समान महत्वपूर्ण है। उन्हीं के महान् ऐतिहासिक उपदेशों तथा तदनुरूप अनुगमन के कारण हमारा देश विश्व–गुरु कहलाता है। ऐसे महापुरुष का जीवन भी कम महिमामय नहीं है।

भगवान् बुद्ध का जन्म ईस्वीपूर्व ६२३ में हुआ था।[१] इस तिथि के सम्बन्ध में विद्वानों में मतैक्य नहीं है,[२] किन्तु पालिग्रन्थों में वर्णित तिथियों के अनुसार बौद्ध देशों में उक्त तिथि मान्य है। दीपवंस, महावंस तथा बौद्ध देशों की परम्पराओं के अनुसार यही तिथि मानी जाती है और इसी तिथि के अनुसार विश्व के बौद्धों ने सन् १९५६ में २५००वीं बुद्ध–महापरिनिर्वाण जयन्ती मनायी थी। भगवान् बुद्ध के जन्म के सम्बन्ध में भी अनेक मान्यताएँ हैं। स्थविरवादी परम्परा मानती है कि बुद्ध का जन्म वैशाख पूर्णिमा को हुआ था।[3], महायानी परम्परा आश्विन पूर्णिमा[४] और फाल्गुन पूर्णिमा[५] को बुद्ध-

---

१. भगवान् बुद्ध : आचार्य धर्मानन्द कौशाम्बीकृत, पृष्ठ ८९।

२. दी अर्ली हिस्ट्री ऑफ इण्डिया : श्री वी० ए० स्मिथ द्वारा लिखित, आक्सफोर्ड, १९२४ पृष्ठ ४९-५०।

३. विसाखनक्खत्तेन जातो–मधुरत्थविलासिनी, पृष्ठ २४८।

४. महावस्तु भाग २, ८-२० श्री जे० जे० जोन्स द्वारा अंग्रेजी में अनूदित, लन्दन १९५२ पृष्ठ ८, भाग १ पृष्ठ १६२ में भी।

५. ललितविस्तर, पृष्ठ ४३ तथा ६१। इति हि भिक्षवः शिशिरकाल-विनिर्गते वैशाखमासे विशाखानक्षत्रानुगते ऋतुप्रवरे वसन्तकालसमये—पंचदश्यां पूर्णमास्यां पौषगृहीताया मातुः पुष्यनक्षत्रयोगेन बोधिसत्व-स्तुथित वरभवनाच्च्युत्वा स्मृतः—जनन्या दक्षिणायां कुक्षावक्रामात।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

जन्म मानती है। ऐसे ही हिन्दू पुराण विजयादशमी को बुद्ध-जन्म मानते हैं और यही तिथि हिन्दू पंचागों में वर्णित है।[1] इस प्रकार बुद्ध-जन्म वैशाख पूर्णिमा, आश्विन पूर्णिमा और फाल्गुन पूर्णिमा इन तीन तिथियों में मानी गयी है, किन्तु स्थविरवादी बौद्ध-परम्परा वैशाख पूर्णिमा को ही बुद्ध-जन्म मानती है।

पालि तथा संस्कृत बौद्ध साहित्यों में भगवान् बुद्ध के जो जीवन चरित्र उपलब्ध हैं, उनमें अधिक विषमता नहीं है। अपने श्रद्धा-भाजन शास्ता के प्रति व्यक्त, सम्मान-सूचक एवं चमत्कारिक कुछ बातों को छोड़कर प्रायः सभी में समानता है। वास्तव में सबका स्रोत एक ही है।[2] बौद्ध मान्यता के अनुसार जो व्यक्ति बुद्धत्व की प्राप्ति के लिए दृढ़ संकल्प होकर दस पारमिताओं[3] को पूर्ण करता है, वह भविष्य में बुद्ध होता है। पारमिताओं को पूर्ण करने के समय उसे 'बोधिसत्व' कहा जाता है। जातकट्ठकथा में गौतम बुद्ध की ५५० पूर्व-जन्म सम्बन्धी कथाएँ आयी हुई हैं, जिनमें उनके द्वारा पारमिताओं के पूर्ण करने का वर्णन है।

गौतम बुद्ध जब बोधिसत्व थे और तुषित स्वर्ग में शान्तिपूर्वक जीवन व्यतीत कर रहे थे, तब तत्कालीन भारतीय समाज के दुःख-दारिद्र्य तथा अस्थिरता को देखकर उनसे त्राण के लिए देवताओं ने स्वर्ग में जाकर उनसे प्रार्थना की----

"कालोयं ते महावीर! उप्पज्ज मातुकुच्छियं।
सदेवकं तारयन्तो बुज्झस्सु अमतं पदं॥"

(अर्थ----हे महावीर! अब आपका समय हो गया है। माँ के पेट में जन्म ग्रहण करें (और) देवताओं के सहित (सारे संसार को भवसागर से) पार करते हुए अमृत-पद (निर्वाण) का ज्ञान प्राप्त करें।)

--अथ खलु मायादेवी लुम्बिनीवनमनुप्रविश्य दक्षिणबाहुप्रसार्यप्लक्ष-शाखां गृहीत्वा—स परिपूर्णान् दशानां मासानामत्ययो मातुर्दक्षिण-पार्श्वान्निष्क्रमति स्म स्मृतः सप्रजानन्ननुलिप्तो गर्भामलैर्यथानान्यः कश्चिदुच्यते न्येषां गर्भमल इति।

१. कृष्णोष्टम्यां नभसिसितपरे, चाश्विने यद्धशम्यां।
बुद्धः कल्की नभसि समभूच्छुक्लषष्ठ्यां क्रमेया॥
—निर्णयसिन्धु, दशावतारजयन्त्यः, परिच्छेद २, पृष्ठ ७१।

२. हिन्दी सन्त साहित्य पर बौद्ध धर्म का प्रभाव, पृष्ठ ९।

३. दस पारमिताएँ ये हैं—दान, शील, नैष्क्रम्य, प्रज्ञा, वीर्य, सत्य, शान्ति, अधिष्ठान, मैत्री और उपेक्षा---जातक हिन्दी, आनन्द कौसल्यायन, भाग १, पृष्ठ २७--३३।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

बोधिसत्व ने देवताओं की प्रार्थना पर अनुकम्पापूर्वक ध्यान दिया और समय, द्वीप, देश, कुल, माता तथा आयु का विचार कर देवताओं को अपने मर्त्यलोक में उत्पन्न होने की स्वीकृति दे दी। उन्होंने विचार करते हुए देखा कि सौ वर्ष से कम आयु का समय बुद्धों की उत्पत्ति के लिए अनुकूल नहीं होता और न इससे अधिक लम्बी आयु का समय ही। जब लम्बी आयु होती है तो प्राणियों के जन्म, जरा और मृत्यु का भान नहीं होता। अतः वे अनित्य, दुःख तथा अनात्म सम्बन्धी बुद्धोपदेश को नहीं समझ पाते। ऐसे ही कम आयु वाले प्राणियों में राग–द्वेष बहुत होते हैं। उन पर बुद्धोपदेश का प्रभाव पानी पर लकीर के समान शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। अतः बोधिसत्व ने निश्चय किया कि सौ वर्ष की आयु वाला समय ही बुद्धों के उत्पन्न होने का समय है।

द्वीप का विचार करते हुए उन्होंने देखा कि सभी बुद्ध जम्बूद्वीप में ही जन्म लेते हैं और वह भी उसके मध्यदेश में ही।[१] विनय पिटक में मध्यदेश की सीमा इस प्रकार वर्णित है—"मध्यदेश की पूर्व दिशा में कजंगल[२] नामक कस्बा है, उसके बाद बड़े शाल के वन हैं और फिर आगे सीमान्त (प्रत्यन्त) देश। पूर्व–दक्षिण में सलीलवती[३] नामक नदी है, उसके आगे सीमान्त देश। दक्षिण दिशा में सेतकण्णिक[४] नामक कस्बा है, उसके बाद सीमान्त देश। पश्चिम दिशा में थूण[५] नामक ब्राह्मण ग्राम है, उसके बाद सीमान्त देश। उत्तर दिशा में ऊशीरध्वज[६] नामक पर्वत है, उसके बाद सीमान्त देश[७]। इसी प्रदेश में बुद्ध, प्रत्येक बुद्ध, प्रथम अग्रश्रावक, महाश्रावक, अस्सी महाश्रावक, चक्रवर्ती राजा तथा दूसरे महाप्रतापी क्षत्रिय, ब्राह्मण और वैश्य पैदा होते हैं और वहीं यह कपिलवस्तु नामक नगर है। मुझे वहीं जन्म लेना है।

कुल का विचार करते हुए उन्होंने देखा कि आजकल क्षत्रिय कुल लोकमान्य है। इसीलिए उसी कुल में जन्म लूँगा। शुद्धोदन नामक राजा मेरा पिता होगा। माता का विचार करते हुए उन्होंने देखा कि बुद्धों की माता चंचल

---

१. जातक, प्रथम खण्ड–पृष्ठ ६३-६४।

२. वर्तमान ककजोल, जिला संथाल–परगना, बिहार।

३. वर्तमान सिलई नदी।

४. हजारीबाग जिले में कोई स्थान।

५. थानेश्वर, जिला करनाल (हरियाणा)।

६. हरिद्वार के पास का पर्वत भाग।

७. विनयपिटक, महावग्ग ५, ३, २ तथा जातक पृष्ठ ६४ और बुद्धचर्या पृष्ठ १।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

और शराबी नहीं होती, वह दीर्घकाल से पारमिताएँ पूर्ण करने वाली और जन्म से ही अखण्ड पंचशील का पालन करने वाली होती हैं और यह महामाया नामक देवी ऐसी ही है। यह मेरी माता होगी, किन्तु उनकी आयु का विचार करते हुए उन्होंने देखा कि दस महीने सात दिन की ही उनकी आयु है।[१]

उस समय कपिलवस्तु नगर में आषाढ़ का उत्सव मनाया जा रहा था। पूर्णिमा के सात दिन पूर्व से ही महामाया देवी ने भी मद्यपान–विरत, माला-गन्ध से सुशोभित हो उत्सव मनाना आरम्भ कर दिया था। उन्होंने सातवें दिन प्रातः ही उठकर सुगन्धित जल से स्नान कर चार लाख का महादान दिया और सब अलंकारों से विभूषित हो, सुन्दर भोजन ग्रहण कर उपोशथ (व्रत) के नियमों का ग्रहण किया। फिर सु–अलंकृत शयनागार में प्रविष्ट हो सुन्दर शय्या पर लेटे, निद्रित अवस्था में स्वप्न देखा—

'उसे चार महाराज (दिक्पाल) शय्यासहित उठाकर हिमवन्त प्रदेश में ले जाकर साठ योजन के मनोशिला के ऊपर सात योजन छाया वाले महान् शाल वृक्ष के नीचे रखकर खड़े हो गये। तब उनकी देवियों ने आकर महामाया देवी को अनोरात्तदह[२] में ले जाकर मनुष्यमल दूर करने के लिए स्नान कराया, दिव्य वस्त्र पहनाया, गन्धों से लेप किया, दिव्य फूलों से सजाया। वहीं पास में रजत पर्वत के भीतर सुवर्ण विमान में पूर्व की ओर सिर करके दिव्य शयन बिछवाकर उन्होंने उसे लिटाया। बोधिसत्व श्वेत सुन्दर हाथी बन, सुवर्ण पर्वत पर विचर कर रजत पर्वत पर चढ़े और उत्तर दिशा से आकर उक्त स्थान पर पहुँचे। उनकी रुपहली माला जैसी सूँड़ में श्वेत पद्म था। उन्होंने नाद कर स्वर्ण विमान में प्रवेश कर तीन बार माता की शय्या की प्रदक्षिणा की, फिर दाहिनी बगल को चीर कुक्षि में प्रविष्ट हुए जान पड़े। इस प्रकार बोधिसत्व ने आषाढ़ पूर्णिमा के दिन उत्तराषाढ़ नक्षत्र में गर्भ में प्रवेश किया। 'दूसरे दिन जागने पर देवी ने इस स्वप्न को राजा से कहा। राजा ने चौसठ प्रधान ब्राह्मणों को बुलवाया और उनका सत्कार कर स्वप्न की बात कही, ब्राह्मणों ने कहा—'महाराज, चिन्ता न करें, रानी को पुत्र उत्पन्न होगा। यदि वह घर में रहा, तो चक्रवर्ती राजा होगा और यदि घर से निकलकर प्रव्रजित होगा, तो महाज्ञानी बुद्ध होगा।'

बोधिसत्व के गर्भ में आने के समय अनेक प्रकार की चमत्कारिक घटनाएँ घटित हुईं, जिनका विस्तृत वर्णन, निदान–कथा, में आया हुआ है।[3] उस समय

---

१. जातक, निदान कथा। २. मानसरोवर झील।

३. जातक निदान कथा, पृष्ठ ६७।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

सब दिशाएँ शान्त हो गयीं, मृदुल शीतल पवन चलने लगा। असमय में वर्षा होने लगी, जल और स्थल में उत्पन्न होने वाले सब प्रकार के पुष्प खिल उठे। चारों ओर से पुष्पों की वर्षा हुई। आकाश में स्वर्गीय वाद्य बजने लगे।[1]

मज्झिम निकाय के अच्छरिय धम्म सुत्त[2] के अनुसार जिस समय बोधिसत्व तुषित लोक से च्युत हो माता के गर्भ में प्रविष्ट हुए, उस समय सारे संसार के तेज को मात करने वाला अप्रमाण प्रकाश लोक में प्रकट हुआ। सदा तमसावृत्त रहने वाले स्थान भी उस प्रकाश से प्रकाशित हो उठे। पृथ्वी काँप उठी। बोधिसत्व की माता के गर्भ में रहते समय चार देवपुत्रों ने उनकी रक्षा की, जिससे कि कोई मनुष्य या अमनुष्य हानि न पहुँचा सके। उस समय बोधिसत्व की माता स्वभावतः सदाचारिणी थीं। उनका चित्त भोग की इच्छा से किसी पुरुष में नहीं लगा। उन्हें कोई रोग नहीं हुआ। वह सुखी एवं स्वस्थ रहीं।[3] यह भी कहा गया है कि बोधिसत्व जिस कुक्षि में वास करते हैं वह चैत्य के गर्भ के समान फिर दूसरे प्राणी के रहने या उपभोग करने के योग्य नहीं रहती, इसीलिए उनकी माता जन्म के एक सप्ताह के बाद ही मरकर तुषित लोक में जन्म ग्रहण करती हैं। जिस प्रकार दूसरी स्त्रियाँ दस मास से कम या अधिक में भी बैठी या लेटी प्रसव करती हैं, ऐसे बोधिसत्व की माता नहीं करतीं। वह दस मास बोधिसत्व को कुक्षि में धारण कर खड़ी ही प्रसव करती हैं। यह बोधिसत्व की माता की धर्मता (विशेषता) है।[4]

महामाया देवी को गर्भ धारण किये दस मास जब पूरे हो गये तब उनकी इच्छा अपने मातृ–गृह (मायके) जाने को हुई। उन्होंने महाराज शुद्धोदन से कहा। राजा ने कपिलवस्तु से देवदह जाने की सारी व्यवस्था कर उन्हें भेज दिया। कपिलवस्तु और देवदह के बीच में दोनों ही नगर वालों का लुम्बिनी वन नामक एक मंगल शाल वन था। वहाँ पहुँचने पर लुम्बिनी वन के प्राकृतिक सौन्दर्य को देखकर देवी के मन में शालवन में विचरण करने की इच्छा हुई। वह शाल वन में प्रविष्ट हुईं और एक सुन्दर शाल के नीचे जाकर उसकी डाल पकड़ना चाहीं। शाल की शाखा स्वतः झुक कर देवी के हाथ के पास आ गयीं। उन्होंने उसे पकड़ लिया। उस समय उन्हें प्रसव वेदना आरम्भ हुई। लोक कनात घेर स्वयं अलग हो गये। शाल की शाखा पकड़े ही खड़े प्रसव हुआ। उस समय चार महाब्रह्मा वहाँ आये और स्वर्ण–जाल में बोधिसत्व को लेकर माता के सम्मुख

---

१. वही पृष्ठ ६७। २. मज्झिमनिकाय, पृष्ठ ५०९–५११।

३. वही, पृष्ठ ५१०।

४. जातक भाग–१, पृष्ठ ६८ तथा बुद्धचर्या, पृष्ठ २।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

किया और कहा—"देवि, सन्तुष्ट हों आपको महाप्रतापी पुत्र उत्पन्न हुआ है।" तदुपरान्त चारों महाराजाओं ने और फिर मनुष्यों ने बोधिसत्व को ग्रहण किया। मनुष्यों के हाथ से छूटकर उन्होंने पृथ्वी पर खड़े हो पूर्व दिशा की ओर देखा। उन्होंने सभी दिशाओं का अवलोकन कर उत्तर की ओर सात पग गमन किया और यह महान् वाणी बोलते हुए कहा—"मैं लोक में अग्र हूँ। मैं लोक में श्रेष्ठ हूँ। मैं लोक में ज्येष्ठ हूँ। यह मेरा अन्तिम जन्म है। अब फिर जन्म नहीं होगा।"[1] जातक में कहा गया है कि जिस समय बोधिसत्व लुम्बिनी में उत्पन्न हुए उसी समय राहुल माता छन्न आमात्य, काल उदायी आमात्य, आजानीय हस्तिराज, अश्वराज कन्थक, महाबोधि वृक्ष और खजानों से भरे चार घड़े उत्पन्न हुए।[2]

बड़े समारोह के साथ दोनों नगरों के निवासी बोधिसत्व को लेकर कपिलवस्तु लौटे। जब देवताओं को यह ज्ञात हुआ कि बोधिसत्व का आविर्भाव मर्त्यलोक में हो गया है, तब वे प्रसन्नचित्त हो वस्त्रों को उछाल-उछाल कर क्रीड़ा करने लगे। महाराज शुद्धोदन के कुलमान्य गुरु कालदेवल[3] नाम तपस्वी मनोविनोद के लिए उस समय त्रयस्त्रिंश देवलोक में गये हुए थे। वे ध्यान और समाधि प्राप्त तपस्वी थे। उन्होंने देवताओं से प्रसन्न होने का कारण पूछा। देवताओं ने उत्तर दिया—"सौम्य शुद्धोदन राजा को पुत्र उत्पन्न हुआ है। वह बोधिवृक्ष के नीचे बैठ बुद्ध हो धर्मचक्र प्रवर्तन करेगा। हम उसकी अनन्त बुद्ध लीला देखेंगे और उसके धर्म को सुनेंगे। इसी कारण से हम लोग प्रसन्नचित्त हैं। उनकी बात सुनकर तपस्वी कालदेवल कपिलवस्तु आये और महाराज शुद्धोदन के राजभवन में प्रवेश कर बिछे आसन पर बैठ गये। राजा के प्रणाम करने पर कुशल मंगल पूछने के बाद उन्होंने कहा कि 'महाराज, आपको पुत्र उत्पन्न हुआ है, उसे मैं देखना चाहता हूँ। राजा ने कुमार को मंगाया और तपस्वी की वन्दना करना चाही। बोधिसत्व के चरण उठकर कालदेवल की जटा में जा लगे। तपस्वी ने आसन से उठकर बोधिसत्व को प्रणाम किया और उनके शरीर के लक्षणों को देखते हुए यह निश्चय कर लिया कि यह अवश्य बुद्ध होगा। यह

---

१. हमस्मि लोकस्स, सेट्ठो हमस्मि लोकस्स, जेट्ठो हमस्मि लोकस्स, अयं अन्तिमा जाति, नत्थिदानि पुनव्यवौ ति—मज्झिम निकाय ३, ३, ३, हिन्दी अनुवाद, पृष्ठ ५११।

२. जातक प्रथम भाग, पृष्ठ ७०।

३. बुद्धचरित में असितमुनि नाम आया हुआ है।
—बुद्धचरित १, ८०, पृष्ठ १६।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

अद्भुत पुरुष है और फिर मुस्करा उठा, किन्तु उसने यह भी विचार करते हुए जान लिया कि मैं इसे बुद्ध होने पर नहीं देख सकूँगा। मैं पहले ही मर गया रहूँगा। यह मेरा दुर्भाग्य है—सोचते हुए रो उठा। महाराज शुद्धोदन ने देखा कि हमारे कुलगुरु अभी हँसे और फिर रोने लग गये, तो उन्होंने पूछा—'क्या भन्ते। मेरे पुत्र पर कोई संकट तो नहीं पड़ेगा ?'

"नहीं, महाराज।"

"तो आप किसलिए रो रहे हैं ?"

"इस प्रकार के पुरुष को बुद्ध हुए नहीं देख सकूँगा। मेरा बड़ा दुर्भाग्य है। यही सोचकर अपने लिए रो रहा हूँ।"

पाँचवें दिन बोधिसत्व को नहलाकर समारोह पूर्वक नामकरण किया गया। उसका नाम सिद्धार्थ कुमार रखा गया। उस दिन राम, ध्वज, लक्ष्मण, मन्त्री, कौण्डिन्य, भोज, सुयाम और सुदन्त इन आठ ज्योतिषियों से बोधिसत्व का भविष्य पूछा गया। उनमें से सात ने भविष्य बतलाते हुए कहा—'सिद्धार्थकुमार ऐसे लक्षणों से युक्त हैं कि यदि वह गृहस्थ रहा तो चक्रवर्ती राजा होगा और यदि प्रव्रजित होगा तो बुद्ध।' उनमें सबसे कम आयु वाले कौण्डिल्य ने कहा—'इसके घर में रहने की सम्भावना कम है। यह अवश्य बुद्ध होगा।' राजा ने उनसे पूछा—'क्या देखकर मेरा पुत्र प्रव्रजित होगा ?'

'चार पूर्व लक्षण।'

'कौन-कौन से चार लक्षण ?

'वृद्ध, रोगी, मृत और प्रव्रजित।'

राजा ने आज्ञा दी—'अब से इस प्रकार के किसी लक्षण को मेरे पुत्र के पास मत आने दो। मैं नहीं चाहता कि मेरा पुत्र बुद्ध बने। मैं तो उसे चक्रवर्ती सम्राट् देखना चाहता हूँ।'

अभी राजकुमार सिद्धार्थ के उत्पन्न होने का उत्सव मनाया ही जा रहा था कि सातवें दिन महामाया देवी ने इस आनन्दित एवं उल्लसित कपिलवस्तु के समाज को असह्य शोकागार में डालकर इस क्षणभंगुर संसार को त्याग दिया। वह तुषित स्वर्ग में एक रूपवती देवी के रूप में उत्पन्न हुई।

महाराज शुद्धोदन ने राजकुमार सिद्धार्थ के पालन पोषण का भार अपनी दूसरी रानी महाप्रजापति गौतमी को सौंप दिया, जो महामाया की छोटी बहिन थी। कुछ उत्तम रूपवती धाइयाँ भी नियुक्त की गयीं। बोधिसत्व अनन्त परिवार, महती शोभा और श्री के साथ बढ़ने लगे।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

गृह-त्याग :

बोधिसत्व के कुछ बड़े होने पर उनकी शिक्षा की व्यवस्था की गयी। ललित-विस्तर में उनकी शिक्षा का विस्तृत वर्णन किया गया है। जब वे बहुत छोटे ही थे तभी उनका मन विरक्ति की ओर झुकता था। एक दिन एक जामुन के वृक्ष के नीचे बैठे ध्यानावस्थित हो गये थे, जिसे देखकर सभी लोगों को आश्चर्य हुआ। उनके सोलह वर्ष के होने पर महाराज शुद्धोदन ने उनका विवाह कौलिय नरेश दण्डपाणि की सुपुत्री यशोधरा[1] के साथ कर दिया। यह विवाह स्वयम्वर रीति से सम्पन्न हुआ। महाराज ने तीनों ऋतुओं के अनुकूल तीन प्रासाद बनवाये। दोनों का वैवाहिक जीवन उक्त प्रासादों में सुखपूर्वक व्यतीत होने लगा।

राजकुमार सिद्धार्थ सांसारिक भोगविलास में रहते हुए भी चिन्तित रहा करते थे। उन्हें सांसारिक भोगविलास आध्यात्मिक चिन्तन के सामने तुच्छ मालूम पड़ता था। वे विरक्ति-सुख के ही जीवन को सार समझते थे। एक दिन उन्होंने अपने रथ पर बैठकर सारथी के साथ उद्यान की ओर प्रस्थान किया। मार्ग में उन्होंने एक वृद्ध, रोगी, मृतक और अन्त में संन्यासी को देखकर निश्चय कर लिया कि मुझे भी संन्यास ग्रहण कर लेना चाहिए। अभी तो उद्यान में ही थे कि उन्हें समाचार मिला कि यशोधरा देवी ने पुत्र-रत्न को जन्म दिया है। इस समाचार से उन्हें प्रसन्नता नहीं हुई—प्रत्युत् उन्हें भय हो आया कि यह सांसारिक बन्धन मुक्ति के मार्ग में बाधक न हो। उनके मुख से निकल पड़ा—'राहुलो जातो।' अर्थात् विघ्न उत्पन्न हुआ। इस वचन को ही लेकर नवजात शिशु का नाम 'राहुल' रखा गया।

राजकुमार प्रासाद में जाकर सुन्दर शय्या पर लेट रहे। सुन्दर अलंकारों से विभूषित, नृत्य और संगीत में दक्ष नर्तकियों ने राजकुमार को प्रसन्न करने के लिए नृत्य, गीत और वाद्य को प्रारंभ किया। बोधिसत्व का मन विरक्त होने के कारण नृत्य आदि में नहीं लगा और वे थोड़ी ही देर में सो गये। नर्तकियों ने जब देखा कि बोधिसत्व सो गये, तब वे भी अपने बाजों को साथ लिये ही सो गयीं। उनके सो जाने पर बोधिसत्व की नींद खुली। उस समय सुगन्धित तेल-पूर्ण प्रदीप जल रहे थे। बोधिसत्व ने उन नर्तकियों को देखा। उनमें से किन्हीं के

---

१. सिद्धार्थ कुमार की पत्नी का नाम राहुल माता, यशोधरा (अपादान नाम ग्रन्थ में), गोपा (ललितविस्तर में), बिम्बादेवी (सुमंगल विलासिनी के महा अपादान के सुत्त की अट्ठकथा में), भद्दकच्चाना (महावंस, हिन्दी पृष्ठ १०) में मिलते हैं।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

मुख से कफ और लार बहने से उनका शरीर भींग गया था। कोई दाँत कटकटा रही थीं, कोई खाँस रही थीं। कोई बर्रा रही थीं। किन्हीं के मुख खुले हुए थे। किन्हीं के वस्त्र हटे हुए थे। उनके इन विकारों को देखकर बोधिसत्व के मन में और भी विरक्ति उत्पन्न हो आयी। उन्हें वह अपना भव्य प्रासाद-कक्ष सड़ती हुई लाशों से भरे कच्चे श्मशान की भाँति जान पड़ा। सारा संसार जलते हुए घर की तरह दिखायी पड़ा। उनके मुख से निकल पड़ा—'हा! कष्ट—हा, कष्ट।' उस समय उनका चित्त प्रव्रज्या के लिए अत्यन्त आतुर हो गया। 'आज ही मुझे महाभिनिष्क्रमण (गृहत्याग) करना चाहिए।' ऐसा निश्चय कर वे पलंग से उतरे और द्वार के पास जाकर पूछा—'कौन है?' द्वार के पास सोये हुए छन्दक (छन्न) ने कहा—'आर्यपुत्र, मैं छन्दक हूँ।'

'आज मैं महाभिनिष्क्रमण (गृहत्याग) करना चाहता हूँ। मेरे लिये एक घोड़ा तैयार करो।'

'अच्छा, देव!'

छन्दक ने घोड़सार में जाकर अश्वराज कन्थक को तैयार किया, उधर बोधिसत्व अपने नवजात पुत्र को देखने की इच्छा से यशोधरा के कक्ष में गये। उस समय घर के भीतर प्रदीप जल रहा था। यशोधरा बेला, चमेली आदि से सजी शैय्या पर पुत्र के मस्तक पर हाथ रखे सो रही थी। बोधिसत्व ने पुत्र को अपनी गोद में उठाना चाहा, किन्तु कहीं यशोधरा जाग न जाय, इस भय से चुपचाप खड़े होकर देखा और वहाँ से लौट आये।

बोधिसत्व कन्थक के पास गये और उस पर सवार हो सारथी छन्दक के पास नगर से बाहर निकल पड़े। आषाढ़ पूर्णिमा की रात्रि थी। चारों ओर कड़ा पहरा लगा हुआ था। नगर का सिंहद्वार भी बन्द था, किन्तु देवताओं ने अपने प्रताप से नगर के द्वार को खोल दिया और ऐसी माया फैलायी कि सभी रक्षक प्रगाढ़ निद्रा में सो गये।

बोधिसत्व आगे बढ़ चले। वे रात्रिभर चलते रहे। प्रायः तीन राज्यों[1] को पार कर तीस योजन की दूरी पर 'अनोमा' नामक नदी के तट पर पहुँचे। उन्होंने सोच लिया कि अब यहीं प्रव्रजित हो जाना चाहिए। घोड़े को उन्होंने एड़ी से संकेत किया। आठ ऋषभ[2] चौड़ी नदी को कन्थक एक छलांग में ही पार कर लिया। उस पार जाकर राजकुमार ने अपने रत्नाभरणों को छन्दक को

---

१. शाक्य, कौलिय और रामग्राम।

२. एक सौ चालीस हाथ का ऋषभ होता है।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

दे दिया और उसे कन्थक को लेकर कपिलवस्तु लौट जाने को कहा। उन्होंने अपने केश खड्ग से काटकर फेंक दिये, जिसे त्रयस्त्रिंश के देवताओं ने ग्रहण कर लिया। बोधिसत्व ने विचार किया कि मुझे प्रव्रजित होने के लिए श्रमण के उपयुक्त वस्त्रादि चाहिए। उस समय घटिकार महाब्रह्मा ने उनके चित्त को जान आठ परिष्कारों[1] को लाकर अर्पित किया। बोधिसत्व ने उन परिष्कारों को ग्रहण कर प्रव्रज्या ग्रहण की। उस समय बोधिसत्व की आयु २९ वर्ष थी। उधर छन्दक बोधिसत्व को प्रणाम कर कपिलवस्तु की ओर चल दिया। कन्थक को बोधिसत्व की आँखों से ओझल होते ही महान् दुःख हुआ। उन्होंने सोचा कि मुझे फिर अपने स्वामी का दर्शन नहीं होगा। उसका कलेजा फट गया और त्रयस्त्रिंश भवन में कन्थक नामक देवपुत्र होकर उत्पन्न हुआ। कन्थक की मृत्यु के पश्चात् छन्दक अकेला ही रोता–कलपता कपिलवस्तु गया।

दूसरे दिन प्रातःकाल कपिलवस्तु में राजप्रसाद की स्त्रियों ने राजकुमार को न देख राजा के पास इसकी सूचना भेजी। राजा घबड़ाये, दौड़े हुए आये और पूछताछ के पश्चात् ज्ञात हुआ कि राजकुमार प्रासाद छोड़कर चले गये हैं। सारा राजपरिवार दुःखी एवं बहुत सन्तप्त हो गया। इधर छन्दक ने भी राजकुमार के वस्त्राभूषणों के साथ आकर उनके प्रव्रजित होने का समाचार सुनाया। इस समाचार से सारा नगर शोक सागर में डूब गया। यशोधरा, महाराज शुद्धोदन और महाप्रजापति गौतमी की अन्तर्वेदना एवं मनोदशा का कहना ही क्या था?

बोधिसत्व ने प्रव्रजित हो अनोमा नदी के किनारे अवस्थित अनुपिया नामक कस्बे के आमों के बाग में एक सप्ताह तक सुखपूर्वक व्यतीत किया। फिर वहाँ से तीन योजन मार्ग पैदल चारिका करते हुए राजगृह पहुँचे। वहाँ भिक्षाटन हेतु जब वे नगर में गये तो दिव्य एवं सुन्दर रूप को देखकर नगरवासी आश्चर्यचकित हो गये। ललितविस्तर के अनुसार बोधिसत्व ने प्रव्रज्या ग्रहण करने के उपरान्त अनुपिया के शाक्या और पद्मा नामक ब्राह्मणियों के आश्रमों में कुछ दिनों तक व्यतीत करके ब्रह्मर्षि रेवत के आश्रम में गये और वहाँ से वैशाली। वैशाली में ही उन्हें आलार-कालाम से भेंट हुई थी। वहाँ से चलकर बोधिसत्व राजगृह

---

१. "तिचीवरञ्च पतञ्च वासी सूची च बन्धनं।
परिस्सावनेन अट्ठेते युत योगस्स भिक्खुनो।।"

(योग में युक्त भिक्षु के लिए तीन चीवर, पात्र, छुरा, सुई, कायबन्धन और पानी छानने का वस्त्र ये आठ परिष्कार हैं।)—जातकट्ठकथा, पृष्ठ ४९।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

पहुँचे थे।[१] राजगृह के राजा बिम्बिसार ने उन्हें राजपुरुष समझ अपने सभी ऐश्वर्य उनको अर्पित करने के लिए कहा और यह भी निवेदन किया कि आप संन्यास त्यागकर राज-ऐश्वर्य का अनुभव करें, परन्तु बोधिसत्व ने जब किसी भी प्रकार बिम्बिसार की प्रार्थना स्वीकार नहीं की, तब उसने यह अन्तिम निवेदन किया—'अच्छा, जब आप बुद्ध हो, तो पहले मेरे राज्य में आने की कृपा करें।' बोधिसत्व राजा को वचन देकर आलार—कालाम के आश्रम में गये और वहाँ उन्होंने ध्यान, समाधि की बातें सीखीं और अकिंचन्यायतन को प्राप्त कर लिया, किन्तु इतने से उन्हें सन्तोष नहीं हुआ। वे उद्रक रामपुत्र के पास गये और वहाँ उससे नैवसंज्ञानासंज्ञा का अभ्यास किया। फिर भी इस ध्यान समापत्ति के लाभ से उन्हें पूर्ण शान्ति प्राप्त नहीं हुई। वे राजगृह को त्यागकर मगध देश में विचरण करते उरुवेला नामक स्थान पर पहुँचे। कौण्डिन्य, भद्दिय, वप, महानाम और अस्सजी नामक पाँच परिव्राजक भी उनके साथी हो गये थे। वे भी वहीं विचरण करते पहुँचे।

बोधिसत्व ने वहाँ एक रमणीक सुन्दर भूमि भाग में एक नदी को बहते देखा, जिसका घाट रमणीय एवं श्वेत था। उन्होंने यह देखकर सोचा—मेरी साधना के लिए यह स्थान बहुत उपयोगी है,[२] और दृढ़ निश्चय होकर दुष्कर तपश्चर्या प्रारम्भ कर दी। पाँचों परिव्राजक (=पंचवर्गीय) "अब बुद्ध होंगे, अब बुद्ध होंगे, इस आशा से ६ वर्षों तक बोधिसत्व की सेवा में लगे रहे। कठिन तपश्चर्या एवं निराहार के कारण बोधिसत्व बहुत दुर्बल हो गये। उनके शरीर के बत्तीस महापुरुष—लक्षण छिप गये। एक बार श्वास—रहित ध्यान करते समय बोधिसत्व बहुत ही क्लेश से पीड़ित हुए और बेहोश होकर गिर पड़े। तदुपरान्त उन्होंने सोचा कि यह बुद्धत्व प्राप्ति करने का मार्ग नहीं है। उन्हें अपने बचपन में जामुन-वृक्ष के नीचे ध्यान लगाने की बात याद आई। उन्होंने सोचा शायद वही ज्ञान—मार्ग हो, किन्तु अत्यन्त कृश पतली काया से वह ध्यान—सुख मिलना सम्भव नहीं था।[3] अतः उन्होंने पुनः आसपास के ग्रामों में भिक्षाटन करके भोजन ग्रहण करना प्रारम्भ कर दिया। तब पंचवर्गीय भिक्षुओं ने बोधिसत्व को तप के मार्ग से भ्रष्ट समझ-कर उनका साथ छोड़कर वहाँ से अट्ठारह योजन दूर ऋषिपत्तन[४] को चले गये।

---

१. ललितविस्तर, पृष्ठ १७४-१७५।

२. मज्झिम निकाय, १, ३, ६ हिन्दी अनुवाद, पृष्ठ १०५।

३. वही २, ४, ५, हिन्दी अनुवाद, पृष्ठ ३४५।

४. वर्तमान सारनाथ, जिला वाराणसी, उत्तर प्रदेश।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

सुजाता की खीर

उस समय उरुवेला प्रदेश में सेनानी नामक ग्राम में एक सम्पन्न गृहस्थ की 'सुजाता' नामक पुत्री थी। सुजाता ने एक बरगद के वृक्ष पर देवता मानकर यह प्रार्थना की थी—'यदि मैं अच्छे घर में विवाहित होकर पहले गर्भ से ही पुत्र प्राप्त करूँगी, तो बहुत बड़ी पूजा करूँगी। उसकी वह प्रार्थना पूर्ण हुई। वह जब ससुराल से सेनानी ग्राम लौटी, तब बोधिसत्व की दुष्कर तपश्चर्या के ६ वर्ष व्यतीत हो चुके थे। सुजाता ने बरगद वृक्ष की पूजा के निमित्त आयोजन किया। वैशाख पूर्णिमा के प्रातः ही उसने शुद्ध गाय के दूध से खीर पकाकर बरगद के चबूतरे की सफाई करवाकर बरगद वृक्ष के नीचे पहुँची। उधर बोधिसत्व भी प्रातःकाल शौचादि करके भिक्षा काल की प्रतीक्षा करते हुए उसी वृक्ष के नीचे आकर बैठे। जब सुजाता की दासी पूर्णा ने उन्हें देखा तो समझा कि वृक्ष देवता स्वयं अपने हाथ से पूजा ग्रहण करने के लिए बैठे हैं। यह जब पूर्णा ने सुजाता को बताया तो वह बहुत प्रसन्न हो उठीं। वह खीर को स्वर्ण-थाल में रख कर दूसरे सोने के थाल से ढँक कपड़े से बाँध कर सब अलंकारों से अलंकृत हो, थाल को अपने सिर पर रख वृक्ष की ओर चल पड़ी और बोधिसत्व को उक्त स्थान पर देख कर सन्तुष्ट हुई। उन्हें वृक्ष-देवता समझ पहले देखने के स्थान से ही सम्मानपूर्वक सिर से थाल को उतारा और जल सहित बोधिसत्व के पास खड़ी हुई। घटिकार महाब्रह्मा द्वारा प्रदत्त मिट्टी का भिक्षा पात्र जो इतने समय तक सदा बोधिसत्व के पास रहा, किन्तु इस समय वह अदृश्य हो गया। बोधिसत्व ने भिक्षा पात्र को न देख कर दाहिने हाथ को फैलाकर जल ग्रहण किया। सुजाता ने पात्र सहित खीर को उन्हें अर्पण किया। बोधिसत्व ने सुजाता की ओर देखा। उसने कहा—'आर्य, मैंने आपको यह प्रदान किया है। इसे ग्रहण कर यथारुचि पधारिये, कह वन्दना की और फिर 'जैसे मेरा मनोरथ पूर्ण हुआ, वैसे ही आपका भी पूर्ण हो।' कहकर एक लाख मुद्रा के मूल्य के उस स्वर्णथाल को पुराने पत्तल की भाँति छोड़कर चल दिया।

बुद्धत्व-प्राप्ति

तदुपरान्त बोधिसत्व ने स्थिर चित्त हो, समाधि-प्राप्ति के लिए चित्त लगाया। वे कामों और अकुशल धर्मों से अलग होकर वितर्क-विचार सहित विवेक से उत्पन्न प्रीति और सुख वाले प्रथम ध्यान को प्राप्त होकर विहरने लगे। इस ध्यान से उठकर स्मृति और संप्रजन्य से युक्त हो वितर्क और विचार से रहित समाधि से उत्पन्न प्रीति-सुख वाले द्वितीय ध्यान को उन्होंने प्राप्त कर लिया। फिर वे द्वितीय ध्यान से भी उठकर प्रीति और विराग से उपेक्षक हो स्मृति और

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

संप्रजन्य से युक्त हो, शरीर से सुख का अनुभव करते हुए तृतीय ध्यान को प्राप्त हो गये। इस ध्यान से भी उठे। सुख और दुःख के प्रहाण से, सौमनस्य और दौर्मनस्य के पूर्व ही अस्त हो जाने से सुख–दुःख से रहित, उपेक्षा से उत्पन्न स्मृति की परिशुद्धि चतुर्थ ध्यान को प्राप्त कर लिये।[1]

इस प्रकार चतुर्थ ध्यान को प्राप्तकर स्थिर चित्त हो उन्होंने पूर्व-जन्मों के ज्ञान के लिए चित्त को लगाया और उन्हें रात्रि के प्रथम याम में पूर्वनिवासानुस्मृति ज्ञान (=पूर्व जन्मों को जानने का ज्ञान) प्राप्त हुआ और वे अपने अनेक पूर्व जन्मों की बातों को जानने लगे। उन्हें प्रथम विद्या प्राप्त हुई, फिर उन्होंने प्राणियों के जन्म-मरण के ज्ञान के लिए चित्त को झुकाया। तब वे दिव्य-चक्षु से कर्मानुसार सुगति-दुर्गति प्राप्त प्राणियों को देखने लगे। इस दिव्य चक्षु का ज्ञान उन्हें रात्रि के पिछले याम में हुआ। उन्हें यह द्वितीय विद्या प्राप्त हुई। अब बोधिसत्व ने चित्तमलों (आश्रवों) के क्षय के लिए ज्ञान को लगाया। तब उन्होंने यथार्थ रूप से जान लिया कि यह दुःख है, यह दुःख-समुदय है, यह दुखःनिरोध है और यह दुःख-निरोध-गामिनी प्रतिपदा है। इस प्रकार जानते ही उनका चित्त कामास्रव, भवास्रव और अविद्यास्रव से मुक्त हो गया। मुक्त हो जाने पर उन्हें ऐसा ज्ञान हुआ कि मैं मुक्त हो गया हूँ। जन्म समाप्त हो गया है। ब्रह्मचर्य पूरा हो गया है। जो करना था वह मैंने कर लिया है। अब यहाँ के लिए कुछ करना शेष नहीं है। रात्रि के पिछले याम में बोधिसत्व को यह तीसरी विद्या प्राप्त हुई।[2] वे त्रैविद्य हो गये। उन्हें प्रतीत्यसमुत्पाद का ज्ञान हो आया। उन्होंने देख लिया कि अविद्या के प्रत्यय से संस्कार होते हैं। संस्कार के प्रत्यय से विज्ञान, विज्ञान के प्रत्यय से नाम और रूप, नाम और रूप के प्रत्यय से छः आयतन, छः आयतन के प्रत्यय से स्पर्श, स्पर्श के प्रत्यय से वेदना, वेदना के प्रत्यय से तृष्णा, तृष्णा के प्रत्यय से उपादान, उपादान के प्रत्यय से भव, भव के प्रत्यय से जाति (=जन्म) जाति के प्रत्यय से बूढ़ा होना, मरना, शोक करना, रोना-पीटना, दुःख उठाना, बेचैनी और परेशानी होती है। इस प्रकार सारा दुःख-समुदाय उठ खड़ा होता है।[3]

प्रतीत्यसमुत्पाद का सीधे और उल्टे जब बोधिसत्व मनन करने लगे तो पृथ्वी काँप उठी और उन्हें अरुणोदय के समय बुद्धत्व का साक्षात्कार हो गया। अब

---

१. विशुद्धिमार्ग भाग १, पृष्ठ १२९, १४९। हिन्दी में–भिक्षुधर्मरक्षित द्वारा अनूदित और मज्झिम निकाय २, ४, ५, हिन्दी अनुवाद, पृष्ठ ३४९-३५०।

२. मज्झिम निकाय २, ४, ५, पृ० ३५०।

३. उदान-भिक्षु जगदीश काश्यप द्वारा हिन्दी में अनूदित, पृष्ठ १–२।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

वे भगवान् बुद्ध हो गये । बुद्धत्व को प्राप्त करते ही उनके मुख से ये गाथायें निकल पड़ीं :–

अनेक जाति संसारं सन्धाविस्सं अनिब्बिसं ।
गहकारकं गवेसन्तो दुक्खाजाति पुनप्पुनं ॥
गहकारकं दिट्ठोसि पुन गेहं न काहसि ।
सब्बा ते फासुका भग्गा गहकूटं विसंखितं ।
विसंखारगतं चित्तं तण्हानं खयमज्झगा ।

(बिना रुके अनेक जन्मों तक संसार में दौड़ता रहा (इस कायारूपी) गृह को बनाने वाले (तृष्णा) को खोजते हुए पुनः पुनः दुःख (मय) जन्म में पड़ता रहा । गृहकारक, (तृष्णे) मैंने तुझे देख लिया, अब फिर तू घर नहीं बना सकेगा । तेरी सभी कड़ियाँ भग्न हो गयीं, गृह का शिखर गिर गया । चित्त संस्कार-रहित हो गया । अर्हत्व (=तृष्णा-क्षय) प्राप्त हो गया ।[1] तत्पश्चात् चारिका करते हुए तथागत ऋषिपत्तन मृगदाय पहुँचे ।

धर्मचक्र-प्रवर्तन

पंचवर्गीय भिक्षुओं ने तथागत को आते हुए दूर से देखा । उन्होंने आपस में निश्चय किया कि यह श्रमण गौतम साधनाभ्रष्ठ है । हमें न तो इसको प्रणाम करना चाहिए और न तो सम्मान-सत्कार ही । बैठने के लिए केवल आसन दे देना चाहिए । यदि इच्छा होगी तो बैठेगा । जैसे-जैसे भगवान् उनके पास आते गये, वैसे-वैसे उनके पहले के विचार परिवर्तित होते गये । जब भगवान् उनके पास पहुँच गये तब एक ने उनका पात्र लिया, दूसरे ने आसन बिछाया और तीसरे ने पैर धोने के लिए जल और पीढ़ा लाकर रखा । भगवान् बैठकर पैर धोयें । भगवान् ने उन्हें उपदेश देना चाहा, तो पहले उन्होंने तथागत को साधना भ्रष्ट जानकर ध्यान ही नहीं दिया, तब शास्ता ने उनसे पूछा–'क्या पहले भी मैंने कभी ऐसा कहा था कि मैं 'अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध हूँ ! "नहीं, भन्ते ।"

बस, क्या था, पंचवर्गीय भिक्षु तथागत की बातों पर ध्यान देने लगे । तथागत ने धर्मचक्र प्रवर्तन सूत्र का उपदेश देते हुए कहा–'व्यक्ति को कामवासना में लिप्त रहने तथा अपने को कष्ट देने वाले इन दो अन्तों को त्यागकर मध्यम मार्ग (मज्झिमा पटिपदा) पर चलना चाहिए । इसी पर चलने से कल्याण तथा ज्ञान प्राप्ति सम्भव है । मध्यम मार्ग आर्य अष्टांगिक मार्ग का ही नाम है ।

---

१. धम्मपद–गाथा संख्या १५३, १५४ भिक्षु धर्मरक्षित द्वारा हिन्दी में अनूदित पृष्ठ ५४ ।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

चार आर्यसत्यों के बोध के उपरान्त व्यक्ति के सारे सांसारिक बन्धन कट जाते हैं। वह कृतकरणीय हो जाता है। परम शान्ति निर्वाण का साक्षात्कार कर लेता है।'

धर्मोपदेश में उन्होंने यह बताया कि काम भोगों में लिप्त रहना और तपस्या द्वारा शरीर को तपाना दोनों ही दो अन्तिम कोटियाँ हैं या दो अतियाँ हैं।[1] उनको त्यागकर मध्यम मार्ग (मज्झिम पटिपदा) का अनुसरण करना चाहिए। वह मध्यम मार्ग क्या है ? यह चार आर्य सत्य हैं–(१) दुःख आर्य-सत्य। (२) दुःख समुदय आर्यसत्य। (३) दुःख निरोध आर्यसत्य। (४) दुःख निरोध गामिनी प्रतिपदा आर्यसत्य। इनको ही मध्यम मार्ग कहते हैं। यह आठ भागों में विभक्त है–१. सम्यक् दृष्टि, २. सम्यक् संकल्प, ३. सम्यक् वाणी, ४. सम्यक् कर्म्मान्त, ५. सम्यक् आजीव, ६. सम्यक् व्यायाम, ७. सम्यक् स्मृति, ८. सम्यक् समाधि।[2]

आषाढ़ पूर्णिमा के दिन यह प्रथम उपदेश वाराणसी के ऋषिपत्तन मृग-दाय में हुआ। यही उपदेश धर्मचक्र प्रवर्तन सूत्र (धम्मचक्कप्पवत्तनसुत्त) के नाम से विख्यात है। इसलिए सारनाथ बौद्धों का तीर्थ स्थान हो गया। पंच-वर्गीय भिक्षु प्रथम शिष्य हुए।

वाराणसी का एक वणिक् पुत्र यश भी संसार से विरक्त होकर ऋषिपत्तन मृगदाव आया। वह भी भगवान् से उपदेश पाकर भिक्षु हो गया। यह संवाद पाकर उसके ५४ मित्र भी भिक्षु हो गये। इस प्रकार प्रारम्भ में बुद्ध शासन में ये साठ (६०) भिक्षु ही थे।[3]

धर्मप्रचार

धर्मप्रचार के लिए भिक्षुओं को दिशाओं में प्रेषित कर स्वयं तथागत उरुवेला की ओर चल दिये। रास्ते में तीस भद्रवर्गीय नामक तरुणों को उन्होंने प्रव्रजित किया। उरुवेला पहुँचने पर उरुवेल काश्यप, नदी काश्यप और गया काश्यप-ये तीन जटाधारी संन्यासी भी अपने सम्पूर्ण शिष्य समूह के साथ भगवान् के शिष्य हो गये। उरुवेला तथा गया में कुछ दिन व्यतीत कर तथागत विचरण करते राजगृह पहुँचे। जब मगध के राजा बिम्बिसार ने सुना कि शाक्य कुल से प्रव्रजित श्रमण गौतम राजगृह पहुँच गये हैं और उनकी ऐसी मंगल कीर्ति फैली

१. धर्मचक्र प्रवर्तन सुत्त, संयुक्त निकाय ५५, २, १।–बुद्धचर्या पृष्ठ २३।

२. विशुद्धिमार्ग–प्रथम भाग, प्रथम संस्करण, डा० भिक्षु धर्मरक्षित द्वारा अनूदित, पृष्ठ ३७।

३. बौद्ध धर्म दर्शन, आचार्य नरेन्द्र देव, पृष्ठ १८३।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

है 'कि वे भगवान् अर्हत् हैं, सम्यक् सम्बुद्ध हैं, देवताओं और मनुष्यों के शास्ता हैं।' तब वह बहुत बड़े मनुष्यों के समूह के साथ भगवान् के दर्शन के लिए गया और भगवान् के उपदेशों को सुनकर उसे भी विमल धर्म-चक्षु उत्पन्न हो गया। वह भी उनका उपासक बन गया।

बिम्बिसार ने अपने वेणुवन उद्यान को भगवान् तथा उनके संघ को अर्पित कर दिया। जो पीछे चलकर वेणुवन महाविहार नाम से प्रसिद्ध हुआ। भगवान् की कीर्ति धीरे-धीरे चारों ओर फैलने लगी। ज्ञान पिपासु लोग उनके पास आने लगे। उनके राजगृह में रहते हुए सारिपुत्र और मौद्गल्यायन भी आकर उनके पास भिक्षु बन गए थे। जो पीछे प्रधान शिष्य बन गए। महाकाश्यप ने भी वहीं प्रव्रज्या ली थी।

जिस समय तथागत वेणुवन उद्यान में विहार कर रहे थे, उस समय शुद्धोदन महाराज को पता लगा कि मेरा लड़का ज्ञान प्राप्त कर उपदेश कर रहा है और वह राजगृह में है। तब उन्होंने कपिलवस्तु आने के लिए अपने अमात्यों द्वारा निमन्त्रण भेजा। जितने अमात्य निमन्त्रण लेकर गये, वे भगवान् के पास जाकर प्रव्रजित हो गये और फिर लौटकर नहीं आये तब महाराज शुद्धोदन ने अपने सर्वार्थसाधक अमात्य (निजी सचिव) कालउदायी को भगवान् को लाने के लिए भेजा। कालउदायी द्वारा निमन्त्रित हो तथागत ने चैत्रमास के प्रारम्भ में राजगृह से कपिलवस्तु के लिए प्रस्थान किया। क्रमशः चलते हुए भगवान् भिक्षुसंघ के साथ कपिलवस्तु पहुँचे और वहाँ न्यग्रोधाराम नामक उद्यान में ठहरे। भगवान् के दर्शन के लिए सारा नगर उमड़ पड़ा। महाराज शुद्धोदन तथा सभी शाक्य राजकुमार एवं राजकुमारियाँ उनके दर्शनार्थ गये। एक बहुत बड़े सम्मेलन के समान कपिलवस्तुवासी लोगों की भीड़ एकत्र हुई थी। भगवान् ने उन्हें उपदेश दिया। वे भगवान् के उपदेश से संतुष्ट हो अपने-अपने घर लौट गये। किन्तु किसी ने भगवान् को भोजन के लिये निमन्त्रित नहीं किया।

दूसरे दिन भिक्षाटन के समय तथागत ने भिक्षुसंघ सहित नगर में प्रवेश किया। उनके भिक्षाटन करने की बात सुनकर आश्चर्यचकित हो सभी लोग देखने लगे। राहुल माता ने भी उन्हें भिक्षाटन करते हुए देखा। देखते ही महाराज शुद्धोदन को सूचित किया। राजा सुनते ही घबड़ाये हुए, धोती सम्हालते हुए, वेग से भगवान् के पास गये और बोले,—"हमें क्यों लजवाते हैं? क्यों भिक्षा माँग रहे हैं? क्या इतने भिक्षुओं के लिये मेरे यहाँ भोजन नहीं मिल सकता?"

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

"महाराज ! हमारे वंश का यही आचार है।"

"भन्ते, हमारा क्षत्रिय वंश कभी भिक्षाचारी नहीं रहा है"

"महाराज, वह तो आपका राजवंश है, हमारा वंश बुद्धों का वंश है और हम भिक्षाचार से ही जीविका चलाते हैं। वहीं पर सड़क में खड़े हो भगवान् ने संक्षेप में राजा को उपदेश दिया। जिसे सुनकर राजा ने अनागामी फल को प्राप्त कर लिया। उन्होंने भगवान् का पात्र अपने हाथ में ले लिया और भिक्षुओं सहित प्रासाद में ले जाकर भोजन कराया। भोजन के उपरान्त राहुल माता को छोड़ सभी रनिवास ने आ-आकर भगवान् की वन्दना की। जब राहुलमाता से कहा गया कि जाओ आर्यपुत्र की वन्दना करो, तो उन्होंने कहा—"यदि मेरे में गुण है तो आर्यपुत्र स्वयं मेरे पास आयेंगे। आने पर ही वन्दना करूंगी।"

भगवान् भी राजा को पात्र दे दोनों प्रधान शिष्यों के साथ यशोधरा के पास गये। यशोधरा ने उनके पैरों को पकड़कर सिर से लगा अपनी इच्छा के अनुसार वन्दना की। राजा ने यशोधरा के गुण सुनाते हुए कहा कि मेरी पुत्री आपके काषाय वस्त्र पहनने को सुनकर स्वयं भी काषायधारिणी हो गयी। वह एकाहारिणी है। माला-गन्ध तथा ऊँचे आसनादि से विरक्त है। तब तथागत ने भी चन्दकिन्नर[1] जातक कहकर यशोधरा के गुणों का वर्णन किया।

दूसरे दिन राजकुमार नन्द का अभिषेक, गृह प्रवेश एवं विवाह होने वाला था। उसी दिन भगवान् ने नन्द को भी प्रव्रजित कर दिया। सातवें दिन यशोधरा ने राहुल कुमार को अलंकृत कर भगवान् के पास भेजा और कहा कि वे तेरे पिता हैं। उनसे उत्तराधिकार मांग। जब भगवान् आसन से उठकर चले तब राहुलकुमार भी उनके पीछे-पीछे हो लिया। न्यग्रोधाराम में पहुँचने पर भगवान् ने सारिपुत्र से कहा-'सारिपुत्र, राहुल को प्रव्रजित करो' राहुल भी सात वर्ष की अवस्था में ही भिक्षु हो गया। जब महाराज शुद्धोदन को यह ज्ञात हुआ तो उन्होंने भगवान् के पास आकर निवेदन किया—'भन्ते ! भविष्य में माता-पिता की आज्ञा के बिना किसी को प्रव्रजित न किया जाय।' भगवान् ने उनकी बात स्वीकार कर ली।

भगवान् शाक्य जनपद से मल्लदेश की ओर चारिका के लिये चल दिये। उन्होंने अनुपिया नामक स्थान में भद्दिय, अनुरुद्ध, आनन्द, भृगु, किम्बिल और देवदत्त—इन छः शाक्य राजकुमारों को भिक्षु बनाया। उपालि नामक नाई भी वहीं प्रव्रजित हुआ। उपालि की प्रव्रज्या पहले हुई और शाक्य राजकुमारों की

१. जातक, ५८५।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

पीछे प्रव्रज्या हुई। वहाँ से भगवान् राजगृह गये। वहाँ पर श्रावस्ती के महाश्रेष्ठ अनाथपिण्डिक (=सुदत्त) ने भगवान् का दर्शन किया और श्रावस्ती आने के लिए निमंत्रित किया। उसने श्रावस्ती पहुँच कर अट्ठारह करोड़ मुद्रा से जेतवन की भूमि को क्रय कर ५४ करोड़ मुद्रा को व्यय कर जेतवनाराम नामक विहार बनवाया। जब भगवान् श्रावस्ती पहुँचे तब उसने उनका स्वागत किया और आगत-अनागत बुद्ध प्रमुख चातुर्दिश भिक्षु-संघ को अर्पित कर दिया। विशाखा नामक महाउपासिका ने भी पूर्वाराम नामक एक विहार श्रावस्ती में बनवाया। जिसके निर्माण में सत्ताईस करोड़ मुद्रा का व्यय हुआ। तथागत ने इन दोनों विहारों में कुल पच्चीस वर्ष वास किया था।

तदुपरान्त भगवान् पुनः राजगृह चले गये और वेणुवन महाविहार में ठहरे। पीछे उन्होंने शाक्य कोलियों के रोहिणी नदी के जल-विवाद को शान्त किया। महाप्रजापति गौतमी को प्रव्रजित कर महिलाओं के लिए भिक्षुणी बनाने का मार्ग प्रशस्त किया। उन्होंने श्रावस्ती में यमक प्रातिहार्य किया और शंकास्य में देवोरोहण प्रदर्शित किया। सुंसुमार गिरि[1], कौशाम्बी, कम्मासदंम्म आदि स्थानों में विचरण करते हुए उन्होंने उपदेश दिया। मगध, कौसल, वज्जी, वत्स, पंचाल, चेदि, अंग, अंगुतराय, सुम्भ, कुरु, शूरसेन, विदेह, शाक्य, कौलिय, काशी, मल्ल, कालाम, भर्ग आदि के जनपदों के निगमों एवं ग्रामों में तथागत के विचरण कर धर्मोपदेश करने का विवरण त्रिपिटक में मिलता है। उन्होंने निम्नलिखित स्थानों में अपने जीवन के महत्त्वपूर्ण वर्षावास किये थे।[2]

स्थान	वर्षावास का क्रम	संख्या
ऋषिपत्तन मृगदाय	१	१
राजगृह	२, ३, ४, १७, २०	५
वैशाली	५, ४६	२
मंकुल गिरि	६	१
तावतिंस लोक	७	१
सुंसुमार गिरि	८	१
कौशाम्बी	९	१
पारिलेय्यक वन	१०	१
नालाग्राम	११	१
वैरंजा	१२	१

१. वर्तमान चुनार, जिला मिर्जापुर, उत्तर प्रदेश।

२. अंगुत्तरनिकायट्ठकथा २, ४, ५,। द्रष्टव्य, बुद्धचर्या, पृष्ठ ७०-७१।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

चालियगिरि	१३, १८, १९	३
श्रावस्ती	१४, २१-४५	२६
कपिलवस्तु	१५	१
आलवी	१६	१
योग-	४६	४६

भगवान् ने अपने पूरे जीवन काल में मध्यमण्डल में पैदल घूम-घूम कर अपने धर्म का प्रचार किया। वे वर्षाकाल के तीन मास एक स्थान पर रहते थे और शेष समयों में विभिन्न दिशाओं में धर्म-प्रचारार्थ भिक्षुओं के साथ विचरण करते थे। सर्वाधिक वर्षावास श्रावस्ती में किया था। भगवान् जहाँ भी जाते थे उनके साथ भिक्षुओं का एक बड़ा समूह साथ रहता था—कहीं साढ़े बारह[1] सौ और कहीं उससे कम।[2] कभी तो भगवान् अपने उपस्थापक के साथ[3] और कभी अकेले ही[4] चारिका करते थे।

यद्यपि भगवान् का चारिका-क्षेत्र मध्यप्रदेश ही रहा, उनके शिष्य अवन्ती, सूनापरान्त, मद्र, बंग, उत्कल, पैठन, गोदावरी के प्रदेश एवं उत्तरापथ में विचरण कर सद्धर्म का उपदेश दिया। भगवान् बुद्ध के शासन का प्रसार भी किया दीपवंस और महावंस के वर्णन से ज्ञात होता है कि भगवान् तीन बार श्रीलंका भी गये थे।[5] सूनापरान्त प्रदेश में भगवान् ऋद्धिबल से गये थे।[6]

भगवान् बुद्ध ने अपने दीर्घकालीन चारिका जीवन में स्थान-स्थान पर जो उपदेश किये उनका प्रभाव जनता पर व्यापक रूप से पड़ा। भगवान् ने अपने जिस दुर्दृश्य धर्म के प्रचार के बारे में संशय किया था, उससे भिक्षुसंघ ने अपने सतत प्रयास एवं उद्योग, सहिष्णुता, शुद्ध आचरण, प्रज्ञा एवं समाधि भावना से ओतप्रोत हो, विश्व-कल्याण की ज्योति जगायी। भिक्षुसंघ में समाज के सभी वर्गों एवं कुलों से, विभिन्न परिस्थितियों में घर छोड़, प्रव्रजित होकर लोग सम्मिलित हुए थे। अतः ऐसे निःस्पृह लोगों का प्रभाव जनता पर पड़ना अवश्यम्भावी था और स्वाभाविक भी। इसका कारण यह था कि वे भी जनता के ही अंग थे। अतः उनके सुख-दुःखों से भी भलीभांति परिचित थे।

---

१. दीघनिकाय १, २, पृष्ठ १६।

२. दीघनिकाय पृष्ठ ३४, ४४, ४८, ८२, ८६, २८१, ३०२।

३. उदान, पृष्ठ ४७, ५१,।

४. वही, पृष्ठ ५६, ५८।

५. वही, पृष्ठ ७५।

६. महावंस, पृष्ठ १-७, द्रष्टव्य, भगवान् गौतम बुद्ध, पृष्ठ ५७।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

संघ-वृद्धि का एक अन्य प्रधान कारण यह भी था कि बुद्धधर्म में जाति-पाति, कुल, वर्ण-भेद को किसी प्रकार का प्रश्रय नहीं दिया गया था। बुद्धधर्म में सभी समान थे। अतः समानता के आधार पर ही आधृत एवं सम्मानित थे। यही उसकी विशेषता थी। कहा है- " जैसे समुद्र में मिल जाने के बाद सभी सरिताएँ अपना नाम, रूप एवं अस्तित्व खो देती हैं और केवल समुद्र के नाम से जानी जाती हैं, वैसे ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र चारों वर्गों के लोग संघ में सम्मिलित होकर शाक्य-पुत्र श्रमण, बौद्ध भिक्षु हो जाते थे, उनके पूर्व के नाम गोत्रादि समाप्त हो जाते थे।[1]

महापरिनिवाण

तथागत ने ४५ वर्षों तक अपने धर्म का प्रचार कर वैशाली में अन्तिम वर्षावास किया। भगवान् के श्रावस्ती में रहते हुए ही उनके प्रधान शिष्य सारिपुत्र और मौद्गल्यायन का परिनिर्वाण हो चुका था। यशोधरा और राहुल भी परनिर्वृत हो चुके थे। वैशाली में वर्षावास के समय ही भगवान् अत्यधिक रुग्ण हो गये थे। वहाँ से स्वस्थ होने के उपरान्त उन्होंने विभिन्न ग्रामों की यात्रा करते हुए कुशीनारा के लिए प्रस्थान किया। बीच में पावा में चुन्द कमरिपुत्र के यहाँ भोजन किया जिसमें उन्होंने सुकरमद्दव[2] का भोजन किया। उसके भोजनोपरान्त उन्हें अतिसार का रोग हो गया। उसी अवस्था में भगवान् वहाँ से चल कर वैशाखी पूर्णिमा के दिन कुशीनारा पहुँचे। मल्लों के शालवन उपवत्तन में जोड़े शाल वृक्षों के नीचे अन्तिम शय्या पर लेटे हुए उन्होंने यह अन्तिम उपदेश दिया--हन्ददानि भिक्खवे, अमन्तयामि वो, वयधम्मा सङ्खारा अप्पमादेन सम्पादेय (अर्थात् भिक्षुओं, अब मैं तुम्हें कहता हूँ--सभी संस्कार नाशवान् हैं। अप्रमाद के साथ जीवन के लक्ष्य को पूर्ण करो)।

महापरिनिर्वाण के पूर्व उन्होंने अपने अनुयायियों को उन चार स्थानों की तीर्थयात्रा करने का आदेश दिया जो भगवान् बुद्ध के जन्म, सम्बोधि, धर्मचक्र प्रवर्तन एवं परिनिर्वाण से पवित्र हो चुके थे। ये स्थान क्रमशः, कपिलवस्तु, बोधगया, सारनाथ एवं कुशीनारा हैं। भगवान् ने अपनी अन्त्येष्टि के बारे में भी अनुदेश दिये।

---

१. पपंचसूदनी, पुण्णोपाद–सुत्त की अट्ठकथा ३, ५३।
=संयुत्त, निकायट्ठकथा ३४, ४, ६,। द्रष्टव्य, भगवान् गौतम बुद्ध, पृष्ठ ५७।

२. भैषज्यविशेष अथवा सूअर का मांस। इसके सम्बन्ध में विभिन्न मत हैं. महापरिनिब्बानसुत्त, पृष्ठ २०९।

Ac. Gunratnasuri MS
Jin Gun Aradhak Trust

परम कारुणिक उन शास्ता का, जिन्होंने कि स्वयं ज्ञान प्राप्त करने के पश्चात् भी पैंतालीस वर्षों तक बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय, विचरण कर अमृत दुन्दुभी बजायी, ईस्वीपूर्व ५४३ की वैशाखी पूर्णिमा की रात्रि के अन्तिम प्रहर में महापरिनिर्वाण हो गया।[1] भगवान् ने आयुष्मान् आनन्द को, शिष्यों के लिए यह सन्देश दिया कि मेरे परिनिर्वाण के बाद मेरे उपदेश तथा विनय के नियम ही शास्ता होंगे क्षुद्रानुक्षुद्र (छोटे-छोटे) शिक्षा-पदों में परिवर्तन की अनुमति उन्होंने भिक्षु संघ को दे दी।

बौद्धधर्म के मूल सिद्धान्तों का संक्षिप्त परिचय

बौद्धधर्म एक महान् धर्म है। इसके दार्शनिक सिद्धान्त भी गम्भीर हैं। फिर भी इसके उपदेश जनसाधारण तथा सबके लिए सहज-बोध्य हैं। इसकी सार्वभौमिकता का मूल कारण मानव हृदय पर पड़ने वाला गम्भीर प्रभाव है। देखने में यह बहुत सरल एवं सुबोध जान पड़ते हुए भी गम्भीर हैं। एक समय आयुष्मान् आनन्द ने तथागत के पास जाकर कहा कि भन्ते, मुझे यह धर्म गम्भीर होते हुए भी सरल सा दीखता है। तब भगवान् ने उन्हें कहा था कि ऐसा मत कहो। वास्तव में यह गम्भीर है। बुद्धिमान् एवं ज्ञानी ही इसे समझ सकते हैं।[2] हम ऊपर कह आये हैं कि भगवान् को भी इस धर्म की गम्भीरता का विचार करते हुए धर्मोपदेश के प्रति अनुत्साह उत्पन्न हो आया था, तब सहम्पति ब्रह्मा ने उन्हें धर्मोपदेश करने के लिए प्रेरित किया था।

चार आर्य सत्य

बुद्ध धर्म के मूल उपादान चार आर्य सत्य हैं। वास्तव में सारा बुद्धधर्म उन्हीं में अन्तर्भूत है।[3] इसे बुद्धों का स्वयं उत्पादित एवं उत्कर्ष की ओर ले जाने वाला (बुद्धानं सामुकंसिका धम्मदेसना) धर्मोपदेश कहते हैं। जब तक इसका ज्ञान नहीं होता, तब तक कोई भी व्यक्ति बुद्ध नहीं हो सकता और न तो बिना इसके ज्ञान के मुक्ति ही प्राप्त हो सकती है। भगवान् बुद्ध ने कहा है—"भिक्षुओं, चार आर्यसत्यों को नहीं जानने के कारण मेरा तथा तुम्हारा चिर-काल तक संसार में घूमना लगा रहा। हमलोग चार आर्यसत्यों को ठीक से नहीं देखने के ही कारण आज तक चक्कर काटते फिरे, किन्तु अब उसे हम लोगों ने देख लिया, अब तृष्णा नष्ट हो गयी। दुःख का मूल कट गया। फिर जन्म लेना नहीं है।[4]

---

१. महापरिनिब्बान-सुत्तं—भिक्षु धर्मरक्षित द्वारा सम्पादित एवं अनूदित, पृष्ठ १७४।

२. दीघनिकाय २, २, हिन्दी अनुवाद, पृष्ठ ११०।

३. मज्झिम निकाय, १, ३, ८,। ४. महापरिनिब्बानसुत्तं, पृष्ठ ४४-४५।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

तथागत ने ऋषिपत्तन मृगदाय में जिस धर्म का सर्वप्रथम प्रवचन किया, जिसे धर्मचक्रप्रवर्तन कहते हैं, वह चार आर्यसत्यों का ही उपदेश था। उन्होंने पंचवर्गीय भिक्षुओं से कहा था कि जब तक मुझे आर्यसत्यों का यथार्थ ज्ञान नहीं प्राप्त हो गया, तब तक मैंने यह घोषणा नहीं की कि मैं सर्वोत्तम ज्ञान को प्राप्त कर लिया हूँ। इनके यथार्थ ज्ञान के उपरान्त ही मैंने अपने बुद्धत्व प्राप्त करने की घोषणा की।[1]

चार आर्यसत्यों को समस्त कुशल धर्मों का मूल भी कहा जाता है—जितने कुशल धर्म हैं, वे सभी आर्यसत्य में निहित हैं।[2]

चार आर्यसत्य ये हैं—(१) दुःख आर्यसत्य, (२) दुःख समुदय आर्यसत्य, (३) दुःख निरोध आर्यसत्य, (४) दुःख निरोध गामिनी प्रतिपदा आर्यसत्य। इन आर्यसत्यों का ज्ञान किन्हीं-किन्हीं को स्रोतापन्न अवस्था में आंशिक रूप में होता है। किन्हीं-किन्हीं को सकृदागामी और अनागामी अवस्था में। किन्तु, अर्हत् अवस्था में पूर्ण रूप से इनका ज्ञान होता है।[3]

आर्यसत्य का वास्तविक अर्थ यथार्थ सत्य है। कहा है—"यह तथ्य है, यह अवितथ है, यह अन्यथा नहीं है।[4] दुःख वास्तविक सत्य है। उसकी उत्पत्ति भी वास्तविक सत्य है। जब उत्पत्ति सत्य है तो उसका निरोध और निरोध का मार्ग भी अवश्यम्भावी है। दुःख की व्याख्या विस्तारपूर्वक करने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती" क्योंकि दुःख से सारा संसार पीड़ित एवं बंधा हुआ है, फिर भी तथागत के शब्दों में संक्षेप में इसकी व्याख्या इस प्रकार है—"संसार में पैदा होना दुःख है, बूढ़ा होना दुःख है, मरना दुःख है, शोक करना दुःख है, रोना-पीटना दुःख है, पीड़ित होना दुःख है, चिन्तित होना दुःख है, परेशान होना दुःख है, इच्छा की पूर्ति न होना भी दुःख है, प्रिय व्यक्तियों से वियोग और अप्रिय व्यक्तियों से संयोग दुःख है। संक्षेप में पाँच उपादान स्कन्ध भी दुःख हैं।[5] इसे ही दुःख आर्यसत्य कहते हैं।

समुदय शब्द का अर्थ उत्पन्न होना है। दुःख की उत्पत्ति को ही दुःख समुदय कहा जाता है। यह उत्पत्ति तृष्णा के कारण होती है। इच्छा और कामना का ही नाम तृष्णा है। जिस-जिस योनि में प्राणी उत्पन्न होते हैं, वहीं-वहीं तृष्णा के

---

१. बुद्धवचन, पृष्ठ १-२।

२. मज्झिमनिकाय १, ३, ८।

३. बौद्ध योगी के पत्र, पृष्ठ ११०-१११।

४. संयुत्तनिकाय, ५४, ४, १ विशुद्धिमार्ग, दूसरा भाग, पृष्ठ १०८।

५. संयुत्तनिकाय, ५४, २, १ हिन्दी अनुवाद, पृष्ठ ८०७।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

कारण आनन्द का अनुभव करते हैं और वहाँ से मरना नहीं चाहते। तृष्णा मायावी बनकर मानवमात्र को फँसाये रहती है। तृष्णा तीन प्रकार की होती है– (१) काम तृष्णा, (२) भवतृष्णा, (३) विभव तृष्णा। अतः इस तृष्णा को ही दुःख समुदय आर्यसत्य कहते हैं।

निरोध का अर्थ है रुक जाना, बन्द हो जाना अथवा नष्ट हो जाना। उसी तृष्णा से सम्पूर्ण रूप से मुक्ति पा जाना अर्थात् उस तृष्णा का नाश हो जाना ही दुःख निरोध आर्यसत्य है। विशुद्धिमार्ग में कहा गया है—परमार्थ से दुःख निरोध आर्यसत्य निर्वाण कहा जाता है। चूँकि उसे पाकर तृष्णा उदय होती है और निरुद्ध हो जाती है, इसलिए विराग और निरोध कहा जाता है।[1]

दुःख की शान्ति अर्थात् निर्वाण प्राप्ति की ओर ले जानेवाले मार्ग को दुःख निरोध गामिनी प्रतिपदा कहते हैं। मध्यम मार्ग (मज्झिमा पटिपदा) भी इसी का नाम है। इसके आठ अंग हैं। ये आठों प्रज्ञा, शील और समाधि के विभाग से इस प्रकार विभक्त हैं—

१. सम्यक् दृष्टि २. सम्यक् संकल्प	प्रज्ञा
३. सम्यक् कर्मान्त ४. सम्यक् आजीविका ५. सम्यक् वचन	शील
६. सम्यक् व्यायाम ७. सम्यक् स्मृति ८. सम्यक् समाधि	समाधि

दुःख के विनाश के लिए यह अकेला मार्ग है (एकायनोयं मग्गो)।

सम्यक् दृष्टि सच्ची धारणा को कहते हैं। कुशल एवं अकुशल को पहचानना इसका लक्षण है। बुरी दृष्टियों को त्यागकर कुशल कर्मों को अपनाना इसका प्रधान कार्य है। विशुद्धिमार्ग में कहा गया है—"चार आर्यसत्य के प्रतिवेध के लिए लगे हुए योगी का, निर्वाण के लिए आलम्बन वाला, और अविद्या के अनुशय को नाश करने वाला प्रज्ञाचक्षु, सम्यक् दृष्टि है।[2]

मिथ्या संकल्पों को त्यागकर कल्याणकारक संकल्पों में लगना ही सम्यक् संकल्प है। तीन प्रकार के संकल्पों को सम्यक् संकल्प कहते हैं। (१) नैष्क्रम्य

---

१. विशुद्धिमार्ग, भाग २, पृ० ११९।
२. वही भाग २, पृ० १२१।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

संकल्प, (२) अव्यापाद संकल्प, (३) अविहिंसा संकल्प। यह संकल्प मिथ्या संकल्प को नाश कर चित्त को निर्वाण में लगाने वाला है।[1]

अनुचित भाषण को त्याग कर उचित एवं प्रिय वचन बोलने को ही सम्यक् वचन कहते हैं। असत्य भाषण न करना, चुगली न खाना, कटु वचन न बोलना और बकवास न करना सम्यक् वचन है।

उचित कर्म करने को सम्यक् कर्मान्त कहते हैं। जीव हिंसा न करना, चोरी न करना, काम भोगों में मिथ्याचार न करना ही सम्यक् कर्मान्त है। विशुद्धिमार्ग में कहा गया है कि जीव हिंसा आदि से विरति ही सम्यक् कर्मान्त हैं।[2]

मिथ्या आजीविका (पेशा) को छोड़कर उचित काम धन्धे में लगने को सम्यक् आजीविका कहते हैं। ये पाँच प्रकार के व्यापार वर्जित हैं, जिन्हें उपासकों को नहीं करना चाहिए।

१. हथियारों का व्यापार। २. पशुओं का व्यापार। ३. मांस का व्यापार। ४. शराब का व्यापार। ५. विष का व्यापार।

भिक्षुओं को कुहन (ठगड़ेबाजी) आदि से उपार्जित मिथ्या जीव से, बचना चाहिए। आजीविका की पारशुद्धि इसका लक्षण है।

उचित प्रयत्न करने को सम्यक् व्यायाम कहते हैं। कहा है—"जो इस सम्यक् वचन, सम्यक् कर्मान्त और सम्यक् आजीव कहलाने वाले शील की भूमि पर प्रतिष्ठित हुए व्यक्ति का उसके अनुरूप आलस्य को नाश करने वाला प्रयत्न है। वह सम्यक् व्यायाम है।[3]

सम्यक् व्यायाम चार प्रकार का होता है—

१. शरीर, वचन और मन से संयम का प्रयत्न करना।

२. बुरे विचारों को त्यागने का प्रयत्न करना।

३. भावना करने में मन लगाने का प्रयत्न करना।

४. प्राप्त सद्गुणों की रक्षा तथा उसे बढ़ाने का प्रयत्न करना।

कुशल धर्मों के प्रति सदा सतर्क रहने को सम्यक् स्मृति कहते हैं। यह चार प्रकार से सम्भव है। जिस जिस अवस्था में उसका शरीर हो उस-उस अवस्था में उसे जानते रहना अर्थात् कायानुपश्यी होकर विहार करना। सभी

---

१. विशुद्धिमार्ग भाग २, पृष्ठ १२१।

२. वही, पृष्ठ १२२।

३. विशुद्धिमार्ग, भाग २, पृष्ठ १२२।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

सुख-दुःख तथा उपेक्षा के अनुभवों को जानते रहना अर्थात् वेदनानुपश्यी होकर विहार करना। चित्त की सभी अवस्थाओं को जानते रहना अर्थात् धर्मानुपश्यी होकर विहार करना। इन्हीं को चार स्मृति प्रस्थान कहते हैं।

कुशल चित्त की एकाग्रता को ही समाधि कहते हैं। चारों स्मृति-प्रस्थान समाधि के निमित्त हैं। चारों सम्यक् समाधि की सामग्री हैं। इन्हीं आठ बातों में मन लगाने को समाधि भावना कहते हैं। जब चित्त एकाग्र हो जाता है, तब ध्यान प्राप्त होते हैं और उसके बाद अभिज्ञाएँ तथा समापत्तियां प्राप्त होती हैं। आस्रवों के क्षय के उपरान्त निर्वाण का साक्षात्कार होता है। यही परम सुख है।

प्रतीत्य समुत्पाद

प्रतीत्य समुत्पाद बुद्ध-दर्शन का आधार है।[१] बौद्ध दर्शन को जानने के लिए इसका ज्ञान आवश्यक है। भगवान् ने स्वयं कहा है—"जो प्रतीत्य-समुत्पाद को देखता है, वह धर्म को देखता है, जो धर्म को देखता है, वह प्रतीत्य समुत्पाद को देखता है।[२] प्रतीत्यसमुत्पाद को कार्य-कारण का सिद्धान्त कहते हैं। "इसके होने से यह होता है और इसके उत्पन्न होने से वह उत्पन्न हो जाता है तथा इसके नहीं होने से यह नहीं होता है और इसके रुक जाने से यह रुक जाता है।[3] इसे जानना ही प्रतीत्य समुत्पाद है। तथागत ने कहा है—"भिक्षुओं, प्रतीत्यसमुत्पाद कौन-सा है ? भिक्षुओं, अविद्या के प्रत्यय से संस्कार, संस्कारों के प्रत्यय से विज्ञान, विज्ञान के प्रत्यय से नामरूप, नामरूप के प्रत्यय से छः आयतन, छः आयतन के प्रत्यय से स्पर्श, स्पर्श के प्रत्यय से वेदना, वेदना के प्रत्यय से तृष्णा, तृष्णा के प्रत्यय से उपादान, उपादान के प्रत्यय से भव, भव के प्रत्यय से जाति (जन्म), जाति के प्रत्यय से जरा, मरण, शोक, परिदेव, दुःख दौर्मनस्य, उपायास उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार इस सारे दुःख समूह का समुदय होता है। भिक्षुओं, यह प्रतीत्य समुत्पाद कहा जाता है।[४]

प्रतीत्य शब्द का अर्थ है कारण, और समुत्पाद का अर्थ है उत्पन्न होना। अनादि काल से व्यक्ति की उत्पत्ति हेतु फल के अनुसार हो रही है और जब तक हेतुफल बने रहेंगे, तब तक उसकी सन्तति अविच्छिन्न रूप से बनी रहेगी। इस सन्तति को अटूट बनाये रखने में किसी अदृश्य शक्ति का सम्बन्ध नहीं है, प्रत्युत् हेतुफल (कार्य-कारण) के कारण यह सम्भव सदा बना रहता है। एक के विनाश के

---

१. दर्शन-दिग्दर्शन, पृष्ठ ५१३।

२. मज्झिम निकाय १, ३, ८।

३. उदान, पृष्ठ १-३।

४. संयुत्तनिकाय १२, १, १, हिन्दी अनुवाद, पहला भाग, पृष्ठ १९२।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

पश्चात् उसी के कारण से दूसरे की उत्पत्ति होती है और यह क्रम उस समय तक बना रहता है जब तक कि हेतु का सर्वदा विनाश न हो जाय।

प्रतीत्य–समुत्पाद के बारह अंग हैं। ऊपर तथागत के शब्दों में उन्हें उद्धृत किया गया है। उन्हें इस प्रकार समझना चाहिये—

१. अविद्या	२. संस्कार	३. विज्ञान
४. नामरूप	५. छः आयतन	६. स्पर्श
७. वेदना	८. तृष्णा	९. उपादान
१०. भव	११. जाति	१२. जरा–मरण।

अविद्या ही आदि कारण है और इसके विनष्ट होते ही सारा चक्र समाप्त हो जाता है। अनुलोम तथा विलोम से ये चौबीस होते हैं। जिस प्रकार अविद्या के प्रत्यय से संस्कार होते हैं और सारा चक्र गतिमान् हो जाता है, उसी प्रकार अविद्या के निरोध से संस्कारों का निरोध हो जाता है[1] और सम्पूर्ण चक्र समाप्त हो जाता है। इन अंगों में एक से दूसरे के प्रत्यय होने के चौबीस प्रकार हैं। इन्हें भी "प्रत्यय" कहते हैं। पट्ठान नामक ग्रन्थ में इन प्रत्ययों की विशद व्याख्या की गयी है।[2] ये प्रत्यय हैं :—

(१) हेतु प्रत्यय, (२) आलम्बन प्रत्यय, (३) अधिपति प्रत्यय, (४) अनन्तर प्रत्यय, (५) समानातर प्रत्यय, (६) सहजात प्रत्यय, (७) अन्योन्य प्रत्यय, (८) निश्रेय प्रत्यय, (९) अपनिश्रय प्रत्यय, (१०) पुरोजात प्रत्यय, (११) पश्चात्-जात प्रत्यय, (१२) आसेवन प्रत्यय, (१३) कर्म प्रत्यय, (१४) त्रिपाक प्रत्यय, (१५) आहार प्रत्यय, (१६) इन्द्रिय प्रत्यय, (१७) ध्यान प्रत्यय, (१८) मार्ग प्रत्यय, (१९) सम्प्रयुक्त प्रत्यय, (२०) विप्रयुक्त, प्रत्यय, (२१) अस्तिप्रत्यय, (२२) नास्ति प्रत्यय, (२३) विगत प्रत्यय, (२४) अविगत प्रत्यय।

जिस प्रकार बीज से अंकुर होता है और अंकुर बढ़कर वृक्ष होता है, बीज को अंकुरित होने के लिए उपयुक्त भूमि, जल, वायु और वातावरण की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार अविद्या आदि हेतु उक्त प्रत्ययों के सहारे फलित होते हैं और भव-चक्र गतिशील हो जाता है। जिस प्रकार दग्ध बीज से अंकुर आदि की उत्पत्ति नहीं होती, उसी प्रकार राग, द्वेष और मोह के क्षय होने से नष्ट अविद्या और फिर पल्लवित नहीं होती और भवचक्र सदा के लिए निरुद्ध हो जाता है।

यह प्रतीत्य समुत्पाद बुद्ध दर्शन का प्रधान अंग होते हुए भी गम्भीर है। भगवान् ने इसकी गम्भीरता के विषय में कहा है—"आनन्द, यह प्रतीत्य समुत्पाद

---

१. उदान, पृष्ठ ३।   २. नवनीत टीका, पृष्ठ १८१–२३१।

Ac. Gunratnasuri MS   Jin Gun Aradhak Trust

गम्भीर है और गम्भीरता के रूप में दिखायी देने वाला है। आनन्द, इस धर्म के अज्ञान से, अवबोध न होने से, ऐसे यह प्रज्ञा (प्रार्ण) उलझे तांत सी हो गयी है। बँधी गाँठ सी हो गयी है। मूँज-भाभड़-सी हो गयी है। अपाय, दुर्गति, विनिपात, संसार का अतिक्रमण नहीं कर पाती[1]।

बोधिपक्षीय धर्म

भगवान् बुद्ध ने अपने सम्पूर्ण जीवन काल में जो धर्मोपदेश दिया था, वह सब बोधिपक्षीय धर्म में समाविष्ट है। बोधिपक्षीय धर्म समग्र बुद्धदर्शन का आधार है। इसलिए तथागत ने भिक्षुओं को बार-बार स्मरण दिलाया था कि उन्होंने जिन बोधिपक्षीय धर्मों का उपदेश दिया है, वे भली प्रकार उनका आचरण करेंगे, उनका अभ्यास करेंगे और उनके अभ्यास में ही विमुक्ति का साक्षात्कार होगा। यह बुद्ध शासन भी दीर्घकाल तक रहेगा। अपने महापरिनिर्वाण लाभ करने के समय तक भगवान् ने इन्हीं धर्मों की ओर भिक्षुओं का ध्यान आकर्षित किया था—"इसलिए भिक्षुओं, मैंने जो धर्म जानकर उपदेश किये हैं, तुम भली प्रकार सीखकर उनका सेवन करना, भावना करना, बढ़ाना, जिसमें कि यह ब्रह्मचारी चिरस्थायी हो, यह ब्रह्मचर्य बहुजन के हित-सुख तथा लोक पर अनुकम्पा करने के लिये हो। देव-मनुष्यों के अर्थ-हित-सुख के लिए हो। भिक्षुओं, मैंने कौन से धर्म, जानकर उपदेश दिये हैं? जैसा कि (१) चार स्मृति प्रस्थान, (२) चार सम्यक् प्रधान, (३) चार ऋद्धिपाद, (४) पाँच इन्द्रिय, (५) पाँच बल, (६) सात बोध्यंग, (७) आर्य अष्टांगिक मार्ग।[2] "इन्हें ही बोद्धिपक्षीय धर्म कहते हैं। ये सैंतीस हैं। इनके सम्बन्ध में किसी प्रकार का मतभेद अथवा विवाद नहीं था। सभी भिक्षु एक मत से इनका पालन एवं आचरण करते थे।[3]

"बोधि" शब्द का अर्थ है ज्ञान और "पक्षीय" पक्ष का द्योतक है। तात्पर्य वे धर्म बोधिपक्षीय धर्म हैं जो ज्ञान के पक्ष में रहने वाले हों जिनके पालन करने से ज्ञान की प्राप्ति हो सके। आचार्य बुद्धघोष ने इनकी व्याख्या इस प्रकार की है–"ये सैंतिस धर्म बूझने (जानने) के अर्थ से "बोध" नाम से पुकारे जाने वाले आर्य-मार्ग के पक्ष में होने से बोधिपक्षीय कहे जाते हैं। "पक्षीय" का अर्थ है उपकार करने वाले।[4]

स्मृति का उपस्थान ही स्मृति-प्रस्थान कहा जाता है। कायानुपश्यना,

---

१. दीघ निकाय २, २, विशुद्धिमार्ग भाग २, पृष्ठ १९२।

२. महापरिनिब्बान सुत्तं, पृष्ठ १०३।

३. मज्झिमनिकाय ३, १, ४, पृष्ठ ४४२।

४. विशुद्धिमार्ग, भाग २, पृष्ठ २६७।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

वेदनानुपश्यना, चित्तानुपश्यना तथा धर्मानुपश्यना—ये चार स्मृति प्रस्थान हैं। काया को उसकी स्थिति के अनुसार जानते रहने की स्मृति को कायानुपश्यना कहते हैं। सुख-दुःख आदि अनुभूतियों को जानते रहने की स्मृति का नाम वेदनानुपश्यना है। चित्त की सभी अवस्थाओं को जानते रहने की स्मृति चित्तानुपश्यना है। भव के सभी धर्मों को जानते रहने की स्मृति धर्मानुपश्यना है। इसकी विस्तृत व्याख्या दीघनिकाय के महासतिपट्ठान सुत्त में की गयी है।[1] इन चार स्मृति प्रस्थानों की इस प्रकार सात वर्ष भावना करे, उसके दो फलों में एक अवश्य होना चाहिए—इसी जन्म में आज्ञा (अर्हत्व) का साक्षात्कार या उपाधिशेष होने पर अनागामी भाव न रहने दो, भिक्षुओं, सात वर्ष, जो कोई इन चार स्मृति प्रस्थानों को इस प्रकार छः वर्ष भावना करें, पाँच वर्ष, चार वर्ष, तीन वर्ष, एक वर्ष, सात मास, छः मास, पाँच मास, चार मास, तीन मास, दो मास, एक मास, अर्ध मास, सप्ताह भर भावना करें। भिक्षुओं, ये जो चार स्मृति प्रस्थान हैं, वे प्राणियों की विशुद्धि के लिए, शोक-कष्ट के विनाश के लिए, दुःख-दौर्मनस्य के अतिक्रमण के लिए, सत्य (न्याय) की प्राप्ति के लिए, निर्वाण की प्राप्ति और साक्षात् करने के लिए, एकायन मार्ग है।[2] चार स्मृति प्रस्थानों का अभ्यास करते हुए विहरने को आत्मशरण होकर विहरना कहा गया है।[3] चित्त की एकाग्रता और समाधि प्राप्ति के लिए यह प्रधान साधन है।

'प्रधान' का अर्थ है प्रयत्न। 'शोभन प्रयत्न सम्यक् प्रधान है।[4] सम्यक् प्रधान से निर्वाण का साक्षात्कार होता है। यह चार प्रकार का होता है। (१) अनुत्पन्न पाप या अकुशल धर्मों को न उत्पन्न होने देने के लिए प्रयत्न करना। (२) उत्पन्न पाप या अकुशल धर्मों के विनाश के लिए प्रयत्न करना। (३) अनुत्पन्न कुशल धर्मों की उत्पत्ति के लिए प्रयत्न करना। (४) उत्पन्न कुशल धर्मों की वृद्धि के लिए प्रयत्न करना[5]।

'ऋद्धि' का अर्थ है सिद्ध होना।[6] ऋद्धि का पाद ही ऋद्धिपाद है। यह चार प्रकार का होता है—(१) छन्द ऋद्धिपाद, (२) वीर्य ऋद्धिपाद, (३) चित्त ऋद्धिपाद, (४) मीमांसा ऋद्धिपाद। भगवान् ने कहा है—'उदायी, मैंने श्रावकों को प्रतिपदा बतला दी है, जिस पर आरूढ़ हो मेरे श्रावक

---

१. दीघनिकाय २, ९, पृष्ठ १९०-१९८।

२. दीघनिकाय २, ९, पृ० १९८। ३. महापरिनिब्बान सुत्त, पृ० ६५।

४. विशुद्धिमार्ग भाग २, पृ० २६७।

५. मज्झिम निकाय २, ३, ७, पृ० ३०८।

६. विशुद्धिमार्ग, भाग २, पृ० ४।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

चारों ऋद्धिपादों की भावना करते हैं और बहुत से मेरे श्रावक इनकी भावना कर अर्हत् पद प्राप्त हो विहरते हैं।'[1]

इन्हीं चार ऋद्धिपादों के सम्बन्ध में भगवान् ने अन्तिम समय में कहा था—'आनन्द, जिसने चार ऋद्धिपाद साधे हैं, बढ़ा लिये हैं, रास्ता कर लिये हैं, घर कर लिये हैं। अनुपस्थित, परिचित और सुसमारब्ध कर लिये हैं। यदि वह चाहे तो कल्पभर ठहर सकता है या कल्प के बचे काल तक। तथागत ने भी आनन्द, चार ऋद्धिपाद साधे हैं, यदि तथागत चाहें तो कल्प भर ठहर सकते हैं या कल्प के बचे काल तक।[2]

इन्द्रिय पाँच हैं—(१) श्रद्धा, (२) वीर्य, (३) स्मृति, (४) समाधि, (५) प्रज्ञा। ये उपशम अर्थात् निर्वाण (सम्बोधि) की ओर ले जानेवाले हैं।[3] विशुद्धिमार्ग में कहा गया है—अश्रद्धा, आलस्य, प्रमाद, विक्षेप, संमोह को पछाड़ने से, पछाड़ना कहलाने वाले अधिपति के अर्थ से इन्द्रिय हैं।[4]

बल भी पाँच हैं—(१) श्रद्धा, (२) वीर्य, (३) स्मृति, (४) समाधि, (५) प्रज्ञा। ये भी अ–श्रद्धा आदि से नहीं पछाड़े जाने से अविचलित होने के अर्थ से बल हैं।[5]

'बोधि' (ज्ञान) प्राप्त करने वाले व्यक्ति के अंग होने से ही बोध्यंग कहा जाता है।[6] इनसे युक्त व्यक्ति ही सम्बोधि प्राप्त करता है। ये सात हैं—(१) स्मृति सम्बोध्यंग, (२) धर्म विचय सम्बोध्यंग, (३) वीर्य सम्बोध्यंग, (४) प्रीति सम्बोध्यंग, (५) प्रश्रब्धि सम्बोध्यंग, (६) समाधि सम्बोध्यंग, (७) उपेक्षा सम्बोध्यंग। तथागत ने इन सात बोध्यंगों की भावना के सात फल बतलायें हैं—'भिक्षुओं, इस प्रकार सात बोध्यंगों के भक्ति और अभ्यास हो जाने पर इसके सात अच्छे परिणाम होते हैं। कौन से सात अच्छे परिणाम ?

(१) अपने देखते ही देखते परम ज्ञान को पैठ कर देख लेना है।

(२) यदि नहीं तो मरने के समय उसका लाभ करता है।

(३) यदि वह भी नहीं, तो पाँच नीचे वाले संयोजनों के क्षीण हो जाने से अपने भीतर ही भीतर निर्वाण पा लेता है।

---

१. मज्झिम निकाय २, ३, ७, पृ० ३०८।

२. महापरिनिब्बानसुत्तं, पृष्ठ ६७।

३. मज्झिम निकाय २, ३, ७, पृष्ठ ३०८ तथा ३०९।

४. विशुद्धिमार्ग भाग २, पृष्ठ २६८। ५. विशुद्धिमार्ग भाग २, पृष्ठ २६८।

६. वही, पृष्ठ २६८।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

(४) यदि वह भी नहीं, तो पाँच नीचे वाले संयोजनों के क्षीण हो जाने से आगे चल कर निर्वाण प्राप्त कर लेता है।

(५) यदि वह भी नहीं, तो असंस्कार निर्वाण को प्राप्त करता है।

(६) यदि वह भी नहीं, तो संस्कार निर्वाण को प्राप्त करता है।

(७) यदि वह भी नहीं, तो ऊपर उठने वाला (उर्ध्व स्रोत), श्रेष्ठ मार्ग पर जाने वाला (अकनिष्ठगामी) होता है।

भिक्षुओं, सात बोध्यंगों के भक्ति और अभ्यास हो जाने पर यही उसके सात अच्छे परिणाम होते हैं।[1] भगवान् ने यह भी कहा है कि सात बोध्यंगों क भावना करने से विद्या और विमुक्ति पूर्ण होती है।[2] जो इनका अभ्यास करता है वह निर्वाण की ओर झुका होता है।[3]

आर्य अष्टांगिक मार्ग का चार आर्यसत्यों के अन्तर्गत वर्णन किया जा चुका है।

ये सैंतीस बोधिपक्षीय धर्म असंस्कृतगामी निर्वाण की ओर ले जाने वाले कहे गये हैं।[4] भगवान् ने इन सैंतिस बोधिपक्षीय धर्मों का उपदेश देने के पश्चात् कहा है—'भिक्षुओं, ये वृक्ष-मूल हैं, ये शून्य-गृह हैं, ध्यान करो, मत प्रमाद करो, ऐसा नहीं कि पीछे पश्चाताप करना पड़े। तुम्हारे लिए मेरा यही उपदेश है।'[5]

अनित्य–दुःख–अनात्म : त्रिलक्षण

बुद्ध दर्शन संसार को अनित्य, दुःख और अनात्म इन तीन दृष्टियों से देखता है। इन्हीं दृष्टियों को त्रिलक्षण कहते हैं। बिना इनको जाने बुद्धदर्शन को समझा नहीं जा सकता है। इन्हें जानकर और भली प्रकार इनका मनन करके ही त्रिपश्यना द्वारा निर्वाण का साक्षात्कार किया जा सकता है। धम्पपद में इन तीनों का महत्व इस प्रकार बतलाया गया है—

सब्बे सङ्खारा अनिच्चा 'ति यदा पञ्ञाय पस्सति।
अथ निब्बिन्दति दुक्खे, एस मग्गो विसुद्धिया[6]॥

(सभी संस्कार अनित्य हैं—ऐसा जब प्रज्ञा से देखता है, तब सभी दुःखों से निर्वेद (विराग) को प्राप्त होता है, यही विशुद्धि (निर्वाण) का मार्ग है।)

सब्बे सङ्खारा दुक्खा'ति यक्ष पञ्ञाय पस्सति।
अथ निब्बिन्दति दुक्खे, एस मग्गो विसुद्धिया[7]॥

---

१. संयुक्तनिकाय भाग २, पृष्ठ ६५२। २. वही, पृष्ठ ६५३।
३. वही, पृष्ठ ६५४। ४. वही, पृष्ठ ६०१।
५. वही, पृष्ठ ६०१। ६. धम्मपद गाथा, संख्या २७७।
७. वही, संख्या २७८।

Ac. Gunratnasuri MS   Jin Gun Aradhak Trust

(सभी संस्कार दुःख है—ऐसा जब प्रज्ञा से देखता है, तब सभी दुःखों से निर्वेद की प्राप्ति होती है, यही विशुद्धि का मार्ग है ।)

सब्बे धम्मा अनत्ता'ति यदा पञ्ञाय पस्सति ।
अथ निब्बिन्दति दुक्खे, एस मग्गो विसुद्धिया[१] ॥

संसार में जो कुछ भी है, वह सब अनित्य है । सदा एक समान रहने वाला नहीं है । सभी उत्पत्ति, स्थिति और नाश होने के तीन क्षणों में विभक्त हैं । रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान सभी अनित्य हैं ।[२] इसीलिए विशुद्धिमार्ग में अनित्य पंच स्कन्ध को कहा गया है ।[3] जो अनित्य लक्षणवाला है, वह दुःख है और जो दुःख है वह अनात्मा है, इसीलिए बुद्ध दर्शन अनित्य, दुःख, अनात्म इन तीनों लक्षणों को प्रधान रूप से मानता है—'भिक्षुओं, रूप अनित्य है । जो अनित्य है वह दुःख है । जो दुःख है वह अनात्म है । जो अनात्म है वह न तो मेरा, न तो मैं, न तो मेरी आत्मा है । इसे यथार्थतः प्रज्ञापूर्वक देखना चाहिए ।[४] 'जिन हेतु और प्रत्ययों से पञ्चस्कन्ध की उत्पत्ति होती है वे भी अनित्य दुःख, अनात्म है ।[५] ऋषिपत्तन मृगदाय में भगवान् ने पंचवर्गीय भिक्षुओं को उपदेश देते हुए अनित्य, दुःख और अनात्म को इस प्रकार समझाया था—'भिक्षुओं रूप अनात्म हैं ।' 'यदि रूप आत्मा होता तो वह दुःख का कारण नहीं बनता और तब कोई ऐसा कह सकता—'मेरा रूप ऐसा होवे, मेरा रूप ऐसा नहीं होवे', क्योंकि रूप अनात्मा है, इसलिए यह दुःख का कारण होता है और कोई ऐसा नहीं कह सकता 'मेरा रूप ऐसा होवे, मेरा रूप ऐसा नहीं होवे । भिक्षुओं, वेदना संज्ञा, संस्कार, विज्ञान अनात्म है, तो भिक्षुओं, क्या समझते हो रूप नित्य है या अनित्य ।'

'अनित्य भन्ते ।'

'जो नित्य है वह दुःख है या सुख ।'

'दुःख भन्ते ।'

'जो अनित्य, दुःख और विपरिणामधर्म है । क्या उसे ऐसा समझना ठीक है कि यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरी आत्मा है ?

'नहीं भन्ते ।'

---

१. वही, संख्या २७९ ।

२. संयुत्तनिकाय २१, १, २, १ दूसरा भाग, पृष्ठ ३३० ।

३. विशुद्धिमार्ग, भाग १, पृष्ठ २५८ ।

४. संयुत्त निकाय २१, १, २, ४, पृष्ठ ३३० (दूसरा भाग)

५. वही, २१, १, २, ७–९ (दूसरा भाग) पृष्ठ ३३१ ।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

'भिक्षुओं, इसीलिए जो भी रूप अतीत, अनागत, वर्तमान, भातरी, बाहरी, स्थूल, सूक्ष्म, हीन, प्रणीत, दूर में या निकट में है, सभी को यथार्थतः प्रज्ञापूर्वक ऐसा समझना चाहिए कि यह मेरा नहीं है। यह मैं नहीं हूँ। मेरी आत्मा नहीं है।'[1]

भगवान् बुद्ध के ये दार्शनिक क्रान्तिकारी विचार थे। दुःख कहने और मानने पर भी अनित्य और अनात्म के विचार भारतीय दर्शन में उनसे पूर्व नहीं प्रवेश पा सके थे। दुःख की व्याख्या भी अन्य दार्शनिकों से भिन्न थी। व्यक्ति की उत्पत्ति से लेकर मृत्यु पर्यन्त चित्त सन्तति के रूप में परिवर्तनशील जीवन उत्पत्ति, स्थिति और लय इन क्षणत्रय के अनुसार क्षणिक है। वह शाश्वत, ध्रुव, चिरस्थायी, सदा एक-सा रहने वाला नहीं है। वह विकृत होने वाला है। इसी प्रकार वह दुःखमय है। सुखानुभूति तृणाग्र से ओस की बूँद चाटने के समाना कल्पना मात्र है। किसी को अपने ऊपर वशता प्राप्त नहीं है। कोई भी ईश्वर, परमात्मा या अलौकिक शक्ति ऐसी नहीं है, जो उसे निर्मित करे या अपनी इच्छा के अनुसार उसका संचालन करे। बुद्ध धर्म की यह सबसे बड़ी विशेषता है कि यह अनित्य, दुःख और अनात्म को मानते हुए आत्मा, परमात्मा को नहीं मानता, किन्तु जीवन को इसी जन्म तक सीमित नहीं मानता। कर्म–विपाक के अनुसार व्यक्ति का पुनर्जन्म तब तक होता रहता है, जब तक कि वह निर्वाण का साक्षात्कार न कर ले।[2]

कर्म और पुनर्जन्म

भगवान् बुद्ध कर्मवादी थे, वे कर्मों का विभाजन कर बतलाने के कारण विभज्जवादी (विभक्तिवादी) भी थे।[3] वे अक्रियावाद के निन्दक एवं कर्मवाद के प्रशंसक थे। बुद्ध धर्म के अनुसार कर्म और उसका विपाक (फल) ये दो ही विद्यमान हैं, कर्म से विपाक होता है और विपाक से कर्म और फिर कर्म से पुनर्जन्म, इस प्रकार यह संसार चल रहा है––

कम्मा विपाका वत्तन्ति, विपाको कम्म सम्भवो।
कम्मा पुनब्भवो होति एवं लोको पवत्तति[4]॥

जब कर्म रुक जाता है तब विपाक रुक जाता है और फिर पुनर्जन्म नहीं होता। कर्म के ही कारण प्राणियों में विभिन्न प्रकार के भेद दिखायी पड़ते हैं।

१. संयुत्तनिकाय २१, २, १, ७; (दूसरा भाग) पृष्ठ ३५१–५२।
२. बौद्ध धर्म के मूल सिद्धान्त–भिक्षुधर्मरक्षित द्वारा लिखित।
३. मज्झिम निकाय २, ५, ९; पृष्ठ ४१४।
४. विशुद्धिमार्ग, भाग २, पृष्ठ २०५।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

एक बार शुभ नामक एक ब्राह्मण वरुण ने भगवान् से पूछा था' हे गौतम, क्या हेतु है, क्या कारण है कि मनुष्य ही होते मनुष्य रूप वालों में हीनता और उत्तमता दिखायी पड़ती है ? हे गौतम, यहाँ मनुष्य अल्पायु देखने में आते हैं और दीर्घायु भी, बहु-रोगी–अल्परोगी. कुरूप–रूपवान्, असमर्थ–समर्थ, दरिद्र–धनवान्, निर्बुद्ध–प्रज्ञावान् मनुष्य यहाँ दिखायी पड़ते हैं। हे गौतम, क्या कारण है कि यहाँ प्राणियों में इतनी हीनता और उत्तमता दिखायी पड़ती है ?

माणवक, प्राणी कर्मस्वक् (कर्म ही है अपना जिनका) है, कर्म–दायाद, कर्म–योनि, कर्म–बन्धु और कर्मप्रतिशरण है। कर्म ही प्राणियों को इस हीनता और उत्तमता में विभक्त करता है।[1]

इस उद्धरण से कर्म के प्रति बुद्ध धर्म का मन्तव्य स्पष्ट ज्ञात हो जाता है। अच्छे–बुरे कर्म के कारण ही व्यक्ति अच्छा बुरा होता है और उसी से उसकी उत्पत्ति में विषमता दिखायी देती है। इसीलिए तथागत ने कहा है—'सारे पापों का न करना, पुण्यों का संचय करना, अपने चित्त को परिशुद्ध करना–यह बुद्धों की शिक्षा है।'[2] इसलिए व्यक्ति को काया, वाणी और मन से सदा कुशल (पुण्य) कर्म करने चाहिए तथा अकुशल (पाप) कर्म छोड़ देना चाहिए। कर्म से ही कोई ऊँच-नीच होता है। कर्म ही किसी को ब्राह्मण बनाता है और कर्म से ही नीच (वसल)। जन्म से कोई नीच और जन्म से ब्राह्मण नहीं होता।[3]

कर्मों का विभाजन अनेक प्रकार से किया गया है। विशुद्धि मार्ग में कर्मों के कर्मान्तर और विपाकान्तर बारह प्रकार से समझाये गये हैं।[4] दृष्ट–धर्म वेदनीय, उपपद्य वेदनीय, अपरापर्य वेदनीय, और अहोसि कर्म के चार प्रकार के कर्म विभाजन हैं। दृष्ट–कर्म–वेदनीय उस कर्म को कहते हैं जिसका कि फल इसी जन्म में मिल जाता है। मरने के बाद ठीक दूसरे जन्म में उपपद्य वेदनीय का फल प्राप्त होता है। अपरापर्य वेदनीय कर्म जब अवसर पाता है तब अपना फल देता है, किन्तु जो कर्म अपना फल कभी भी नहीं दे सकते उन्हें अहोसि कर्म कहते हैं।

दूसरे भी चार प्रकार के कर्म होते हैं—यद्गुरुक, यद्बहुल, यदासन्न और कृतत्वात्। जो कर्म सबसे महान् होता है, वह शीघ्र फल देता है उसे यद्गुरुक कर्म कहते हैं। जो प्रायः किया गया होता है, उसे यद्बहुल कर्म कहते हैं। जो

१. मज्झिम निकाय ३, ४, ५; पृष्ठ ५५२। २. धम्मपद १८३; पृष्ठ ६५।
३. सुत्त निपात, वसलसुत्त, गाथा २७। ४. विशुद्धिमार्ग, भाग २; पृष्ठ २०४।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

कर्म मृत्यु के समीप किया गया रहता है उसे यदासन्न कहते हैं और इनसे रहित बार बार किया गया कर्म कृतत्वात् कहा जाता है।

इसी प्रकार अन्य भी चार कर्म-भेद हैं-जनक, उपस्तम्भक, उपपीड़क और उपघातक। जिस कर्म के कारण प्रतिसन्धि होती है उसे जनक कहते हैं। जिस कर्म के कारण बहुत दिनों तक जीवन बना रहता है, उसे अपस्तम्भक कहते हैं। जो कर्म बाधा उत्पन्न करता है उसे उपपीड़क कहते हैं और उपघातक कर्म वह है जो सभी प्रकार के कर्म विपाक को हटाकर स्वयं अपना फल देने लगता है।

बुद्ध-धर्म आत्मा को न मानते हुए भी कर्म और पुनर्जन्म को मानता है। कहा है---कर्म का कर्ता नहीं है और न विपाक को भोगने वाला। शुद्ध कर्म (संस्कार) मात्र प्रवर्तित होते हैं---इस प्रकार जानना सम्यक् दर्शन है।[1] भगवान् बुद्ध ने स्वयं अपने ५५० पूर्व जन्मों की चर्यायें बतलायी हैं। जातक-कथा ऐसी ही चर्यायों का संग्रह है। जब व्यक्ति की मृत्यु होती है तब इस शरीर से निकल कर दूसरा जन्म धारण करने वाली कोई आत्मा जैसी वस्तु नहीं है। जब मृत्यु होती है तब यहाँ के पञ्चस्कन्ध यहीं रह जाते हैं और कर्म के कारण दूसरी प्रतिसन्धि हो जाती है। मिलिन्द प्रश्न में इसे इस प्रकार समझाया गया है---'भन्ते, ऐसा कोई जीव है जो इस शरीर से निकल कर दूसरे में प्रवेश करता है' ?

'नहीं महाराज।'

'भन्ते---यदि इस शरीर से निकल कर दूसरे शरीर में जाने वाला कोई नहीं है तब तो वह अपने पाप कर्मों से मुक्त हो गया' ?

'हाँ, महाराज, यदि उसका फिर भी जन्म नहीं हो तो अवश्य वह अपने पाप-कर्मों से मुक्त हो गया और यदि फिर भी वह जन्म ग्रहण करे तो मुक्त नहीं हुआ। जैसे महाराज, यदि कोई आदमी किसी दूसरे का आम चुरा ले तो दण्ड का भागी होगा या नहीं' ?

'हाँ भन्ते होगा।'

'महाराज, उस आम को तो उसने रोपा नहीं था जिसे उसने लिया, फिर दण्ड का भागी कैसे होगा ?'

'भन्ते, उसके रोपे हुए आम से ही यह भी उत्पन्न हुआ, इसलिए वह दण्ड का भागी होगा।'

'महाराज, इसी प्रकार एक पुरुष इस शरीर से अच्छे और बुरे कर्मों को

---

१. विशुद्धिमार्ग भाग २; पृष्ठ २०५।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

करता है। उन कर्मों के प्रभाव से दूसरा शरीर जन्म लेता है, इसलिये वह अपने पाप–कर्मों से मुक्त नहीं हुआ। जैसे महाराज, कोई एक बत्ती से दूसरी बत्ती जला ले तो क्या यहाँ एक बत्ती दूसरी से संक्रमण करती है।'

'नहीं भन्ते।'

'महाराज, इसी तरह बिना एक शरीर से दूसरे शरीर में कुछ गये हुए ही पुनर्जन्म होता है।

'महाराज, क्या आपको कोई श्लोक याद है, जिसे आपने अपने गुरु के मुख से सीखा था ?'

'हाँ याद है।'

'महाराज, क्या वह श्लोक आचार्य के मुख से निकलकर आपमें घुस गया है ?'

'नहीं भन्ते।'

'महाराज, इसी तरह बिना एक शरीर से दूसरे शरीर में कुछ गये हुए पुनर्जन्म होता है।[१]

कर्म और पुनर्जन्म का तारतम्य तब तक बना रहता है, जब तक कि निर्वाण का साक्षात्कार न हो जाय, किन्तु जब निर्वाण का साक्षात्कार हो जाता है तब कर्म और पुनर्जन्म रुक जाते हैं, अविद्या के कारण ही व्यक्ति कर्म करता रहता है और उन्हीं के कर्मों से संसार बनते रहते हैं और सम्पूर्ण भव-चक्र जारी रहता है, किन्तु जब अविद्या नष्ट हो जाती है, विद्या प्राप्त होती है, तब कर्म का क्षय हो जाता है और संस्कारों का होना बन्द हो जाता है और फिर पुनर्जन्म नहीं होता।

निर्वाण

निर्वाण बौद्ध धर्म का अन्तिम लक्ष्य है। इसे इसी जीवन में अनुभव किया जा सकता है। जिस प्रकार भगवान् बुद्ध ने बोधि-वृक्ष के नीचे निर्वाण का साक्षात्कार किया था। वह गम्भीर, दुर्बोध्य, शान्त, उत्तम एवं तर्क-रहित है। वह ज्ञानियों द्वारा अपने भीतर अनुभव करने की वस्तु है। वह न उत्पन्न होता है और न विनष्ट होता है। वह एक स्थिति है जो परम शान्त और रोग-शोक से रहित है।[२] वह परम सुख है।[३] उसे प्राप्त कर परम शान्ति प्राप्त होती है।[४] इसीलिए निर्वाण को उत्तम शान्ति अथवा शान्तपद भी कहते हैं। वह निर्वाण विमुक्ति रस वाला है।[५] इसका ज्ञान राग, द्वेष, मोह के क्षय होने पर होता

१. मिलिन्द प्रश्न; पृष्ठ ८९-९०। २. इतिवृत्तक; पृष्ठ ३६।
३. धम्मपद, १५, ८ (निब्बनं परमं सुखं)। ४. थेरी गाथा, १५।
५. विनयपिटक, चुल्लवग्ग।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

है। यह बुद्ध धर्म का सार है। यहाँ न तो पृथ्वी है, न जल है, न वायु है, न प्रकाश है, न अन्धकार है। निर्वाण का समझना आसान नहीं।[1] निर्वाण की स्थिति के सम्बन्ध में प्रकाश डालते हुए भगवान् ने कहा है—'भिक्षुओं, वह एक आयतन है, जहाँ न तो पृथ्वी, न जल, न तेज, न वायु, न आकाशानन्त्यायतन, न विज्ञानानत्यायतन, न अकिंचन्यायतन, न नैवसंज्ञानासंज्ञायतन है, वहाँ न तो यह लोक है, न परलोक है और न चन्द्रमा–सूर्य है। भिक्षुओं, न तो मैं उसे अगति और न गति कहता हूँ, न स्थिति और न च्युति कहता हूँ। उसे उत्पत्ति भी नहीं कहता हूँ। वह न तो कहीं ठहरा है, न प्रवर्तित होता है और न उसका कोई आधार है। यही दुःखों का अन्त है।[2] निर्वाण अजात, अभूत, अकृत और असंस्कृत है।[3] निर्वाण प्राप्त कर लेने से आवागमन रुक जाता है और जन्म–मृत्यु नहीं होते। तब यह लोक और परलोक भी नहीं होता है। यही दुःखों का अन्त है।[4] निर्वाण के सम्बन्ध में उपदेश देते हुए भगवान् बुद्ध ने कहा है—'यह शरीर जात, भूत, उत्पन्न, कृत, संस्कृत, अध्रुव, बुढ़ापा और मृत्यु से पीड़ित रोगों का घर, क्षणभंगुर तथा आहार और तृष्णा से होने वाला है, उसमें प्रेम करना ठीक नहीं, उसका निस्तार (निर्वाण) शान्त है। वह तर्क से नहीं जाना जा सकता, वह ध्रुव, अजात, न उत्पन्न होने वाला तथा शोक और रोग रहित है सभी दुःखों का वहाँ निरोध हो जाता है। वह संस्कारों की शान्ति एवं परम सुख है'[5]।

निर्वाण को अमृत पद भी कहा जाता है और वह अमृत इसलिए है कि जरा, जन्म, व्याधि से रहित अच्युत पद है। वह परम योगक्षेम है। उसे प्राप्त कर लेने के पश्चात् कुछ करना शेष नहीं रहता, इसलिए वह भव का विरोध भी है। एक यही वस्तु है, जो नित्य है। व्यक्ति को इसका अनुभव सर्वप्रथम स्रोतापत्ति फल की प्राप्ति के समय किंचितमात्र होता है। उसके पश्चात् सकृदागामी और अनागामी में क्रमशः अधिक, अर्हत् फल की प्राप्ति के साथ इसका पूर्ण साक्षात्कार हो जाता है। अर्हत्व भी इसे ही कहते हैं। ध्यान प्राप्त भिक्षुओं का इस जीवन में इसके सुख की अनुभूति संज्ञावेदयित निरोध समापत्ति के समय पूर्ण से होती है, किन्तु यह केवल ध्यान से प्राप्य नहीं है।

निर्वाण प्राप्त व्यक्ति जब परिनिर्वाण को प्राप्त होता है, तब उसकी अवस्था उसी प्रकार होती है, जिस प्रकार की लोहे की घन की चोट पड़ने पर जो चिनगारियाँ उठती हैं वह तुरन्त ही बुझ जाती हैं। कहाँ गयी, कुछ पता नहीं

---

१. उदान; पृष्ठ ११०।
२. वही; पृष्ठ १०९।
३. वही; पृष्ठ ११०–१११।
४. वही; पृष्ठ १११।
५. वही, पृष्ठ १२१।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

चलता। इसी प्रकार काम-बन्धन से मुक्त हो, निर्वाण पाये हुए, अचल सुख प्राप्ति किये हुए व्यक्ति की गति का कोई भी पता नहीं लगा सकता।[1] उसकी निर्वाण प्राप्ति प्रदीप के बुझ जाने के समान होती है।[2]

बुद्धकालीन धार्मिक परिस्थितियाँ

भगवान् बुद्ध के समय में नाना मत वादों तथा दार्शनिक ऊहापोहों का बोलबाला था। पालि साहित्य से हम जानते हैं कि उस समय बासठ प्रकार के मत-वादे प्रचलित थे।[3] और जैन आगमों में यह संख्या तीन सौ तिरसठ दी हुई है।[4] सुत्तानिपात[5] से हम यह भी जानते हैं कि बौद्ध मत के अतिरिक्त बासठ और मत प्रचलित थे[6] और बौद्ध मत इन मत-वादों के अन्तर्गत नहीं आता था। इनमें से कुछ लोग आत्मा और परमात्मा दोनों को शाश्वत मानते थे। कुछ लोग आत्मा और लोक को अंशतः नित्य मानते थे। इसी प्रकार कतिपय विद्वान् लोक को सान्ति भी और अनन्त भी मानते थे। कितने लोग सत्व की उत्पत्ति बिना किसी कारण के मानते थे। प्रारम्भ को लेकर अट्ठारह प्रकार की धारणायें थीं और अन्त को लेकर चौवालिस प्रकार की।

भगवान् बुद्ध के समय में छः शास्ता, संघी, गणी, गणाचार्य और तीर्थङ्कर थे। उनके अपने अपने अलग अलग सिद्धान्त थे। इन्हीं में जैन धर्म के संस्थापक भगवान् महावीर भी एक थे। भगवान् बुद्ध अपने युग के एक महान् विभूति थे परन्तु उनके समय में उक्त जो छः तीर्थङ्कर विद्यमान थे उनके नाम इस प्रकार हैं—

१. पूर्ण काश्यप।
२. अजितकेश कम्बल।
३. प्रक्रुधकात्यायन।
४. मक्खलिगौसाल।
५. संजयवेलट्ठिपुत्र।
६. निगंठ नाथपुत्र (महावीर जैन[7])।

धर्माचार्य भगवान् बुद्ध की अपेक्षा अवस्था में अधिक थे और भगवान् बुद्ध

१. उदान; पृष्ठ १२७। २. रतन सुत्त, सुत्तानिपात गाथा १४।

३. ब्रह्मजाल सुत्त, दीघ निकाय १ पृष्ठ।

४. भगवान् बुद्ध, आचार्य धर्मानन्द कौशाम्बी, पृष्ठ १८।

५. सुत्तनिपात। ६. द्वेसट्ठिरिट्ठिगतानि, सुत्तनिपात।

७. दीघनिकाय; पृष्ठ ६–१०।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

की आयु इन सबसे कम थी। भगवान् बुद्ध तरुण और काले केश, श्मश्रु वाले थे, जबकि अन्य तीर्थङ्कर वृद्ध और अधिक सयाने थे।[१] इनमें पूर्णकाश्यप का कहना था कि करते कराते, छेदन करते छेदन कराते, पकते पकवाते, शौक करते, परेशान होते परेशान कराते, चलते चलाते, प्राण मारते, बिना दिये लेते, सेंध मारते, गाँव लूटते, चोरी बटमारी करते, पर-स्त्री-गमन करते, झूठ बोलते पाप नहीं किया जाता है। छूरे के तेज चक्र द्वारा जो पृथ्वी को माँस का खलिहान बना दे तो इसके कारण उसे पाप नहीं, पाप का आगम नहीं। दान देते दिलाते, यज्ञ करते, यज्ञ कराते, यदि गंगा के उत्तर तीर भी जायें तो इसके कारण उसे पुण्य नहीं होता। पुण्य का आगम नहीं होता। दान, दया संयम से न पुण्य होता है और न पुण्य का आगम होता है।[२] 'पुण्य' काश्यप का यह मत अक्रियावादी था। उनका विश्वास था कि कुछ भी करने पर पाप या पुण्य नहीं होता।

अजितकेशकम्बल उच्छेदवादी थे। उन्हें विशुद्ध भौतिकवादी भी कह सकते हैं। उनका कहना था कि पृथ्वी, जल, तेज, वायु इन चार महाभूतों से शरीर निर्मित है और मृत्यु के उपरान्त ये चारों अपने मूल तत्वों में विलीन हो जाते हैं। कुछ शेष नहीं बचता। परलोक भी असत्य है। स्वर्ग—नर्क केवल कल्पना मात्र है।

प्रक्रुद्ध—कात्यायन अकृततावादी थे। वे इस जगत् में सात पदार्थों की सत्ता मानते थे। इनमें से चार तो वे ही महाभूत हैं जिन्हें नास्तिकवादी अजितकेशकम्बल ने माना है। अन्य तीन अदृष्य तत्व हैं। उनका कहना था कि यहाँ न हंता है न घातइता (मार डालने वाला), न सुनने वाला, न सुनाने वाला, न जानने वाला न जतलाने वाला। तेज हथियार से मार डालने पर भी कोई प्राणी नहीं मरता। सात कार्यों से अलग विवर (रिक्त स्थान) में हथियार गिरता है।[३] इस प्रकार यह सिद्धान्त अक्रियावादी था तथा सामाजिक व्यवस्था को उच्छृंखल बनाने वाला था। मक्खलिगोसाल नियतिवादी थे। वे भाग्य को मानते थे। उनका कहना था कि भाग्य के ही प्रभाव से सब प्राणी सुख—दुःख झेलते हैं। कर्म की क्रिया व्यर्थ है। नियति पर स्वयं को छोड़कर सुख की नींद सोना ही व्यक्ति का कर्तव्य है। ये बुद्ध और महावीर दोनों के पूर्ववर्ती आचार्य थे। जैन और बौद्ध ग्रन्थों में इनका विस्तारपूर्वक वर्णन मिलता है। इनका कहना था कि सुख और दुःख नये नहीं हुए हैं। संसार में घटना—

१. सयुत्त निकाय, ३,१,३। २. दीघ निकाय १—२; पृष्ठ १९—२२।
३. दीघ निकाय, पृष्ठ २१।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

बढ़ना, उत्कर्ष और अपकर्ष नहीं होता। जैसे सूत की गोली फैंन पर उछलती हुई गिरती है वैसे ही बुद्धिमान् और मूर्ख आवागमन के चक्कर में पड़कर पूरी दौड़ लगाकर ही दुःख का अन्त करेंगे।[1]

कुछ विद्वानों ने यह माना है कि आचार्य गोसाल, प्राचीन गोसाल आजीवक सम्प्रदाय के प्रमुख उपदेष्टा थे।[2]

संजय बैलट्ठिपुत्त अनेकान्त वादी थे। ये किसी भी तत्व अथवा लोक-परलोक, देवी-देवता आदि के सम्बन्ध में निश्चिन्त मत रखने वाले नहीं थे। इनका कहना था कि यदि आप पूछें कि परलोक है ? यदि मैं जानूँ कि परलोक है तब मैं बतलाऊँ कि परलोक है। मैं ऐसा नहीं कहता, मैं वैसा भी नहीं कहता। मैं दूसरी तरह से भी नहीं कहता।[3] निगंठ्ठनाथपुत्त का ही दूसरा नाम भगवान् महावीर था और जैन धर्मावलम्बी इसी नाम से उन्हें जानते हैं। यद्यपि ये भगवान् बुद्ध के समकालीन थे और जैसा कि हमने ऊपर देखा हे, ये बुद्ध से अवस्था में बड़े थे। ऐसे धर्मों की ग्रन्थों में एक दूसरे के विरुद्ध बहुत-सी बातें कहीं गयी हैं, किन्तु ये दोनों महापुरुष कभी मिले नहीं थे। जैन और बौद्ध ग्रन्थों में ऐसा कोई वर्णन नहीं मिलता जिससे यह स्पष्ट हो कि इन दोनों में कभी कोई वार्ता हुई थी। इनके शिष्यों में अवश्य वार्ताएँ हुई थीं और धार्मिक वाद-विवाद भी। भगवान् महाबीर द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों का वर्णन जैन ग्रन्थों में आया हुआ है। वे स्याद्वाद को मानने वाले थे। दीघनिकाय के ब्रह्मजाल सुत्त में तथा पालि साहित्य के अन्य विभिन्न ग्रन्थों में उनके मत को 'चातुर्यामसम्बर' कहा गया है। चातुर्यामसम्बर में चार बातें निम्नलिखित हैं—

१. जीवहिंसा के भय से जल के व्यवहार का संयम करना।

२. सभी पापों का वारण करना।

३. सभी पापों के वारण में लगे रहना।

४. पापों के वारण से ही व्यक्ति धुत-पाप (पाप रहित) होता है।[4]

निगंठनाथपुत्त कायिक कर्मों पर विशेष बल देते थे। तपस्या द्वारा शरीर को तपाकर पूर्व जन्मों के पापों का क्षय करना और भविष्य में पापों को न होने

---

१. दीघ निकाय, पृष्ठ २०।

२. ओरिजिन्स आव बुद्धिज्म; पृष्ठ ३४२-४६, जर्नल आफ डिपार्टमेन्ट आफ लेटर्स, बरुआ, हिस्ट्री एण्ड डाक्ट्रिन आफ आजिविकाज एण्ड वैश्यास, प्रोबुद्धिस्ट इण्डियन फिलासफी।

३. दीघ निकाय, पृष्ठ २२।

४. दीघ निकाय, पृष्ठ २१।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

देना उनका सिद्धान्त था। वे सदा स्वयं तप साधना में लगे रहते थे और अपने को सर्वज्ञ मानते थे।[1]

बुद्ध काल में धर्मों के संगठन के रूप में केवल बुद्ध धर्मावलम्बी तथा जैन ही मिलते हैं। ब्राह्मण धर्म की प्रमुखता अब जाती रही थी। बहुत से ब्राह्मण पण्डित बौद्ध तथा जैन हो गये थे। उनकी सर्वोच्चता को बहुत ठेस पहुँची थी। भगवान् बुद्ध ने ब्राह्मण धर्म द्वारा आयोजित यज्ञ, याग आदि को हीन और अकरणीय बताया था। गोमेध, गजमेध, अश्वमेध और वाजपेयमेध की तुच्छता बतलाते हुए अनेक अवसरों पर भगवान् बुद्ध ने उसके आयोजकों को फटकारा था। बाह्य शुद्धि के उपदेशक, जटाधारी, आजीवक आदि धार्मिक नेताओं की उन्होंने गर्हणा की थी और आध्यात्मिक तपःसाधना के पवित्र जल के स्नान को ही उन्होंने सर्वोच्च बतलाया था। आध्यात्म की पवित्र ज्योति को ही जीवन में जगाने का उन्होंने उपदेश दिया था।

उन दिनों भी कुछ लोग प्रकृति के पुजारी थे। वे वृक्ष, पर्वत, वन, उद्यान और चैत्यों (चौरा) की पूजा करने में ही अपना कल्याण मानते थे।[2] जिन दिनों भगवान् बुद्ध वैशाली पधारे थे, वहाँ चैत्यों की पूजा प्रचलित थी। वैशाली में सात चैत्य थे।[3] कुशीनारा में भी मुकुट बन्धन नामक चैत्य था।[4]

इस काल में बागों की भी पूजा होती थी।[5] यक्षों और गन्धर्वों की भी पूजा प्रचलित थी। मथुरा तथा आलवी में अनेक यज्ञों के प्रमुख स्थान थे। यक्ष तथा यक्षणियों की अनेक रूपों में कल्पना करके इनकी पूजा की जाती थी। यक्ष-यक्षणियाँ प्रभूत सम्पत्ति के स्वामी माने जाते थे। इनका स्वरूप अलौकिक माना जाता था।[6]

यक्ष शब्द से प्रायः देवत्व का ही आभास होता था। यक्षणियों की पूजा प्रायः उनके कल्याणप्रद, सुन्दर और मोहक रूप में की जाती थी। कभी-कभी उनका क्रोधित रूप भी पाया जाता था। यह अलौकिक माने जाते थे। उनका

---

१. मज्झिम निकाय १, २, ४ हिन्दी अनुवाद; पृष्ठ ५९, महावीर के सिद्धान्तों के लिए—देखिये भारतीय दर्शन; पृष्ठ १५४–१७८ पण्डित बलदेव उपाध्याय।

२. धम्मपदगाथा, संख्या १८८-१८९।

३. महापरिनिब्बान सुत्त, दीघ निकाय, पृष्ठ १३४।

४. वही, पृष्ठ १३५।

५. उत्तर भारत में बौद्ध धर्म का विकास; पृष्ठ १६।

६. बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास; पृष्ठ २३।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

निवासस्थान प्रायः वृक्ष होता था। यदि वह पूजा से प्रसन्न हो जाते थे तो विभिन्न सांसारिक कामनाओं को क्षणमात्र में पूर्ण कर देते थे। इनको अनेक स्थानों पर लोग कुलदेवता के रूप में प्रतिष्ठित कर देते थे। यही 'बरम' कहे जाते थे। 'बरम' ब्रह्म शब्द का अपभ्रंश है। ब्रह्म का अर्थ वैदिक साहित्य में यक्ष का ही सूचक हैं।[१] प्राचीन साहित्य जैसे महाभारत में यक्ष युधिष्ठिर से अनेक प्रश्न पूछता है। इन प्रश्नों की वैदिक संज्ञा 'ब्रह्मौघ' थी।[२] बौद्ध और जैन साहित्य से भी भारत में यक्ष की पूजा के प्रसार का ज्ञान होता है।

यक्षों में मुख्य उम्बरदत्त, सुरम्बर, शूलपाणि, मणिभद्र, भण्डीर घंटिक, पूर्णभद्र, आदि अनेक पराक्रमी यक्षों के नाम हैं। इसी प्रकार यक्षणियों में कुन्ती, रेवती, तमसुरी, मेखला, अन्तिका, बेन्दा, मघा, निमिक्षिका आदि अनेक नाम प्राप्त होते हैं।[३] इनमें अन्तिम चार यक्षणियाँ मथुरा की मानी जाती हैं। मथुरा का गर्दभ यक्ष बहुत ही शक्तिशाली माना जाता था।[४]

अनेक प्रकार के जादू टोना, बलि, भूत-प्रेत पूजा, वशीकरण अन्य इन्द्र-जालिक विधाएँ भी इस काल में प्रचलित थीं। जिनका विस्तृत वर्णन दीघ निकाय में सामञ्जफलसुत्त[५] में आया हुआ है। उन दिनों ब्राह्मण ग्रन्थों का भी प्रचार था। वृहदारण्य, तैत्रिय, छन्दोग्य आदि ब्राह्मण ग्रन्थों का पठन-पाठन और उनके अनुसार आचरण पर भी कुछ ब्राह्मण वर्ग जोर देता था।[६] देवी-देवताओं में विश्वास, स्वर्ग, मुक्ति और निर्वाण की कल्पना, दान, उपादान, सार्वजनिक कार्यों का निर्वाण, प्याऊ, बाग-वन आदि का रोपण पुण्य कार्य माना जाता था तथा यह माना जाता था कि इन कार्यों के सम्पादन से अहर्निष पुण्य की वृद्धि होती है।[७] जटा रखना, नग्न रहना, शरीर में भभूत रमाना, सुन्दर से सुन्दर वस्त्र धारण करना, कथरी पहनना, बाल नोचना, चन्द्रायण व्रत रखना, कुक्कुर तथा

---

१. उत्तर प्रदेश में बौद्ध धर्म का विकास; पृष्ठ १६।

२. आयुर्वेद, ३, २, ९, ४५। यक्ष के लिए वैदिक साहित्य में बृहद् वर्णन मिलता है। इनकी पूजा बरम या बरमदेव नाम से गाँवों में प्रचलित है।

३. सम एस्पेक्ट आफ यक्ष कल्ट, बुलेटिन आफ दि प्रिन्स आफ वेल्स म्युजियम; पृष्ठ ४३, बम्बई १९१४।

४. गिलगिट मैन्युस्क्रप्ट जिल्द ३, भाग १; पृष्ठ १४–१७।

५. दीघ निकाय १, २ हिन्दी अनुवाद; पृष्ठ १६–३३।

६. वही, १, १३, हिन्दी अनुवाद; पृष्ठ ८७।

७. संयुत्तनिकाय, बनरोपड़सुत्त; पृष्ठ १, ५, ७ हिन्दी अनुवाद पहला भाग, पृष्ठ ३३।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

गोव्रत का पालन करना, अपने शरीर को पंचाग्नि से तपाना, निराहार रखना आदि उन दिनों शुद्ध आचरण के मानदण्ड के रूप में भी एक वर्ग स्वीकार करता था। धर्मों के इस उहापोह के युग में भगवान् बुद्ध ने अपने उपदेशों द्वारा एक संगठित बौद्ध समाज का निर्माण किया और भिक्षु-भिक्षुणियों के सतत प्रयत्न तथा उनके सदाचार का प्रभाव, जन–समाज पर किस प्रकार पड़ा और भारतीय जन-समाज किस प्रकार उससे आकर्षित हुआ, आगे हम इसका अध्ययन करेंगे। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि बुद्धोत्पत्ति से पूर्व धर्म का कोई एक संघठित रूप नहीं था। इसे भगवान् बुद्ध ने प्रजातन्त्रात्मक स्वरूप प्रदान किया जिसने भविष्य में न केवल भारतवर्ष का ही प्रत्युत् सम्पूर्ण एशिया भूखण्ड को अपने आदर्शों से प्रभावित किया।

भिक्षु-भिक्षुणियों का जन-सम्पर्क

भगवान् बुद्ध ने बौद्ध धर्म में संघ को एक प्रमुख इकाई बना दी। सभी निर्वाण आकांक्षी व्यक्ति (स्त्री-पुरुष) भिक्षु भिक्षुणी बनकर इस संघ में सम्मिलित हो सकते थे। संघ के सामने व्यक्ति तुच्छ था। यहाँ तक कि संघ बुद्ध से भी महान् था।[1] इस संघ के माध्यम से ही भगवान् बुद्ध ने अपने धर्म का प्रचार किया था। सर्वप्रथम ऋषिपत्तन मृगदाय (सारनाथ) धर्मचक्रप्रवर्तन और वर्षावास के उपरान्त उन्होंने अपने ६० भिक्षुओं को विभिन्न दिशाओं में, बहुजन हिताय तथा बहुजन कल्याण हेतु, भेजा था और यहीं से भिक्षुओं को एक मार्ग निर्देशन प्राप्त हुआ। पीछे महाप्रजापति गौतमी की प्रवज्या के साथ भिक्षुणी संघ की स्थापना हुई थी। और भिक्षुणी संघ भी भिक्षुसंघ का एक सहायक संघ बन गया था। वर्गीकरण के अनुसार यद्यपि बौद्ध धर्म भिक्षु–भिक्षुणी, उपासक, उपासिका इन चार वर्गों में विभक्त है और इन चारों का अपना अलग–अलग महत्व है। फिर भी प्रथम दो गृह त्यागी वर्ग है और अन्तिम दो गृहवासी। एक दूसरे का पारस्परिक घनिष्ठ सम्बन्ध है। यही कारण है कि भिक्षु भिक्षुणी संघ का जनसम्पर्क सदा से कल्याणकारी माना गया है और उनका सत्संग अहोभाग्य से ही प्राप्त समझा जाता है। इन भिक्षु भिक्षुणी संघों के सदस्य सभी जाति, कुल, वर्ग, श्रेणी से आए हुए थे। इनमें कोई राजपरिवार का था, कोई पुक्कुस (हेला), कोई नाई, कोई ब्राह्मण, कोई नीच से नीच कहलाने वाले मतांगादि भी थे। सबकी अपनी-अपनी और अलग-अलग परिस्थितियाँ थीं। प्रायः सभी ने अपने-अपने परिवार का परित्याग कर मुक्ति की कामना से प्रव्रज्या ग्रहण की थी और उसका लक्ष्य और प्राप्तव्य एक था। सभी भारतीय कुल पुत्र–

१. मज्झिम निकाय २, ४, १२; पृष्ठ ५७९।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

पुत्रियाँ थीं और सबकी सुहृदों के प्रति सद्भावना थी और उनके संसर्ग में आने वाले सभी उनसे सद्उपदेश की कामना करते थे। उन्हें पूर्ण क्षेत्र अह्वानी तथा पाहुन बनाने के योग्य मानते थे। उनकी सेवा कर वे कृत-कृत्य होते थे। कभी-कभी उनका अनादर भी होता था, कभी-कभी उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा भी होती थी। उनका विरोध यद्यपि बहुत क्षणिक था। इनका जनता से प्रगाढ़ सम्बन्ध था और जनता पर उनका प्रभाव पड़ना अनिवार्य था।

एक समय जब हम देखते हैं कि मगध के बड़े-बड़े कुल-पुत्र प्रव्रजित हो गये तब लोगों ने भगवान् बुद्ध तक को फटकारना शुरू कर दिया—'अपुत्र बनाने को श्रमण गौतम आया है, विधवा बनाने को श्रमण गौतम आया है। कुछ नाश के लिए श्रमण गौतम आया है। अभी उसने एक सहस्र जटिलों को प्रव्रजित किया। इन ढाई सौ संजय के परिव्राजकों को भी प्रव्रजित किया। अब मगध के प्रसिद्ध प्रसिद्ध कुल-पुत्र भी श्रमण गौतम के पास प्रव्रजित हो रहे हैं। वे भिक्षुओं को देखकर इस प्रकार कहते थे—'महाश्रमण मगधों के गिरि व्रज में आया है। संजय के सभी चेलों को तो ले लिया, अब किसको लेने वाला है।'[1]

अनेक अवसरों पर भिक्षुसंघ का स्वागत भी किया गया और यही कारण था कि राजा बिम्बिसार प्रसेनजित आदि बुद्ध भक्त हो गये। भिक्षु भिक्षुणियों के लिए स्थान-स्थान पर विहारों का निर्माण हो गया। अनाथपिण्डक, विशाखा, घोषित आदि धनवानों ने उनके लिए अपना सर्वस्व न्योछावर भी किया। उनका घर भिक्षु-भिक्षुणियों के लिए सदा खुला रहता था। इस संघ में प्रविष्ट लोगों में कोई किसी का भाई तो कोई पिता, कोई पुत्र तो कोई भांजा, कोई मां थी तो कोई पुत्री। कोई बहन थी तो कोई भाई। सभी श्रद्धा से वशीभूत हो प्रव्रजित हुए थे। अतः उनका स्वागत होना स्वाभाविक था। यही कारण था कि थोड़े ही दिनों में भिक्षु-भिक्षुणियों के संघ के सदस्यों की संख्या पर्याप्त मात्रा में बढ़ गयी थी और सम्पूर्ण देश में काषाय वस्त्रधारी विचरण करने लगे थे। भगवान् बुद्ध का यह संघ विश्व का एक अनुपम आदर्श था। इन संघों ने लोगों के हित सुख के लिए अपने कष्टों की ओर ध्यान नहीं दिया। अकाल पड़ने पर भी उनकी सहिष्णुता बनी रही। वे कष्टों को आनन्दपूर्वक भोगने के लिए तत्पर थे। जनता का हित उनके सामने था। उन्होंने भारतीय समाज का जो कल्याण किया और उनके प्रभाव से भारतीय समाज ने जिस प्रकार उन्नति का पथ अपनाया, वह भारतीय इतिहास में अविस्मरणीय है।

---

१. विनय पिटक; पृष्ठ १००।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

समाज में इनका स्थान

समाज में भिक्षु-भिक्षुणियों का एक सम्पूज्य स्थान था। क्योंकि उनका ध्येय जन-कल्याण एवं जनहित था। हम ऊपर देख आये हैं कि प्रत्येक वर्ग एवं कुल से निकलकर भिक्षु–भिक्षुणियों ने प्रव्रज्या ग्रहण की थी और उनका सम्बन्ध इस भारत के सभी कुलों से था। भिक्षु–भिक्षुणियों का यह समूह स्वयं सदाचार का पालन करता था और जनसाधारण को सदाचार के पालन का उपदेश देता था। इनमें भिक्षुओं के दो सौ सत्ताईस परिपालनीय नियम थे और भिक्षुणियों के तीन सौ ग्यारह। उपसम्पदा लेने वाले भिक्षु की अवस्था कम से कम बीस वर्ष की होती थी और वह भिक्षु होकर निर्वाण की प्राप्ति की कामना करता था। इसी प्रकार भिक्षुणियों के लिए भी परमलक्ष्य निर्वाण ही था। यह दोनों भगवान् बुद्ध के सन्देश वाहक थे। देश–देशान्तर में यही धर्म प्रचारक थे। यही सांस्कृतिक दिग्विजयी धर्मदूत थे। मानव के हृदय में अहिंसा, मैत्री, सत्य एवं शील का बीजारोपण कर समाधि और भावना से उसमें निर्वाण के अमृत फल को प्रकट करने वाले थे।[1] जिस प्रकार भिक्षु पवित्र नाम है उसी प्रकार भिक्षुणी भी एक पवित्र परम्परा है और ऐसी परम्परा जो गृहत्यागिनी और भिक्षु आचरणी ललनाओं की है। इन दोनों का अपना-अपना विशेष महत्व है। भारतीय समाज में इनका उच्च स्थान था और ये बहुत ही सम्मान की दृष्टि से देखे जाते थे, क्योंकि इन्हें संसार की असारता का ज्ञान था। इन्होंने लोक की तुच्छता और मायावी स्वरूप को देखा था और ध्यान भावना करके परम सुख निर्वाण का साक्षात्कार कर लिया था। थेर गाथा और थेरी गाथा तथा थेर अपदान और थेरी अपदान नामक पालिग्रन्थों में बुद्धकालीन कुछ विशेष भिक्षु भिक्षुणियों के जीवन वृतान्त, उपदेश और अनुभव संकलित हैं, जिनसे इनकी उदात्त भावना, ज्ञान की परिपूर्णता और परम मंगल की प्राप्ति जानी जाती है।

भगवान् बुद्ध ने सदा यह प्रयत्न किया था कि भिक्षु भिक्षुणियों के संघ में कभी भेद पैदा न हो। सब मिल-जुलकर रहें।[2] धम्मपद में कहा गया है कि संघ में एकता का होना और एकता युक्त होकर तप करना सुखदायक होता है।[3] इन भिक्षु-भिक्षुणी सघों का जनमानस में अपने कल्याणकारी व्यक्तित्व के रूप में स्थान था और एक दीर्घकाल तक भगवान् के ये संघ परम पूजनीय बने रहे,

---

१. बोधि के पत्र––डा० भिक्षु धर्मरक्षित।

२. विनय पिटक; पृष्ठ १२-१३।

३. धम्मपद; गाथा संख्या, १९४।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

जिसकी पूजा प्रत्येक बौद्ध इस प्रकार करता है—'भगवान् का यह संघ सीधे मार्ग पर लगा है। यह संघ अह्वानीय पाहुन तथा हाथ जोड़ने लायक है। डॉ० काशी-प्रसाद जायसवाल के शब्दों में 'बौद्ध संघ के जन्म का इतिहास सारे संसार के त्यागियों के, सम्प्रदायों के जन्म का इतिहास है। इसलिए भारतीय प्रजातन्त्र के संघटनात्मक गर्भ से बुद्ध के धार्मिक संघ के जन्म का इतिहास केवल इस देश वालों के लिए ही नहीं, बल्कि शेष सारे संसार के लिए भी विशेष मनोरंजक होगा।[1]' हम इस विचार से पूर्ण रूप से सहमत हैं और यह मानते हैं कि हमारे भारतीय समाज के साथ एशिया भूखण्ड के अधिकांश क्षेत्र की जनता का कल्याण इनसे हुआ है।

---

१. हिन्दू राजतन्त्र, पहला खण्ड; पृष्ठ ७२।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

द्वितीय अध्याय

भिक्षु संघ का गठन

भिक्षुओं के लिए प्रज्ञप्त शिक्षा पद

भगवान् बुद्ध का भिक्षु संघ समय-समय पर बने शिक्षा-पदों (नियमों) से आबद्ध था। भिक्षुओं के लिए प्रज्ञप्त शिक्षापद किसी एक समय पर एक स्थान पर प्रज्ञप्त नहीं हुए थे, प्रत्युत् आवश्यकतानुसार जैसे–जैसे उनकी उपयोगिता दृष्टिगत हुई वे तथागत द्वारा प्रज्ञप्त किये गये थे। यही बात भिक्षुणियों के शिक्षा पदों के लिए भी है। आरम्भ में भिक्षुसंघ बहुत छोटा था और वह केवल ६० भिक्षुओं का ही था। भगवान् बुद्ध ने बुद्धत्व प्राप्त करने के उपरान्त सर्वप्रथम वाराणसी के पार्श्ववर्ती भूभाग में स्थित वरुणा के अंचल में सुशोभायमान ऋषिपत्तन मृगदाय में धर्मचक्र प्रवर्तन किया था। उस समय केवल पंचवर्गीय भिक्षुओं ने ही उनका शिष्यत्व ग्रहण किया था और वे ही (१) आयुष्मान् अज्ञात कौण्डिन्य, (२) आयुष्मान् वप्प, (३) आयुष्मान् भद्दिय, (४) आयुष्मान् महानाम और (५) आयुष्मान् अश्वजित्। परम सौभाग्यशाली महाभाग भिक्षुसंघ के प्रथम संघटक थे।[1] धीरे-धीरे भिक्षुसंघ में परिवर्तन होने लगा और उनके लिए शिक्षापदों में भी अभिवृद्धि होने लगी। भिक्षुओं के लिए प्रज्ञप्त शिक्षापदों की संख्या भगवान् के परिनिर्वाण के समय तक दो सौ सत्ताइस थी और भिक्षुणियों के लिए तीन सौ ग्यारह।[2] यद्यपि यह संख्या स्थविरवाद के विनय की है। मूल सर्वास्तिवादी विनय पिटक में भिक्षु-शिक्षापदों की संख्या दो सौ बासठ और भिक्षुणियों की तीन सौ एकहत्तर है।[3] इन शिक्षापदों का तुलनात्मक विवरण निम्नलिखित प्रकार से समझना चाहिए––

स्थविरवादी विनय–परम्परा

	भिक्षु प्रातिमोक्ष	भिक्षुणीप्रातिमोक्ष
१. पाराजिका	४	८
२. संघादिशेष	१३	१७
३. अनियत	२	—

१. विनय पिटक, महावग्ग १, १, ७; पृष्ठ ८२–८३।

२. भिक्षु प्रातिमोक्ष–डॉ० भिक्षुधर्मरक्षित; पृष्ठ ४।

३. विनय पिटक, राहुलसांकृत्यायन, भूमिका; पृष्ठ ४–५।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

४. विस्सग्गिय पाचित्तिय	३०	३०
५. पाचित्तिय	९२	१६६
६. पाटिदेसनीय	४	८
७. सेखिय	७५	७५
८. अधिकरण समथ	७	७
	२२७	३११

मूलसर्वास्तिवादी परम्परा

	भिक्षु प्रातिमोक्ष	भिक्षुणीप्रातिमोक्ष
१. पाराजिका	४	८
२. संघादिशेष	१३	२०
३. अनियत	२	—
४. निस्सग्गिय पाचित्तिय	३०	३३
५. पाचित्तिय	९०	१८०
६. पाटिदेसनीय	४	११
७. सेखिय	११२	११२
८. अधिकरण समथ	७	७
	२६२	३७१

ये शिक्षापद भिक्षु-भिक्षुणी संघ के लिए आचार संहिता हैं, जो विनय पिटक नामक पालिग्रन्थ में अपने सन्दर्भों सहित संकलित हैं। वास्तव में विनय बुद्ध-शासन का मूल है और ये शिक्षापद उसका मेरुदण्ड हैं। विनय में स्थित भिक्षुसंघ ही बुद्ध शासन को जीवित रख सकता है। इसी विनय पिटक का सार भिक्षु और भिक्षुणी प्रातिमोक्ष है। इन्हें मातृका भी कहते हैं। इनकी महत्ता बतलाते हुए कहा गया है—

पाराजिकानि चत्तारि गरुकानि च तेरस।
अनियता च द्वे वुत्ता तिंस निस्सग्गियानि च ॥
खुद्दका नवुति द्वे च चत्तारो पाटिदेसका।
निप्पपञ्चेन निद्दिट्ठा पञ्चसत्तति सेखिया ॥
द्वे सतानि च वीसञ्च वसा भिक्खूनमेव च।
सिक्खापदानि उद्देसमागच्छन्ति उपोसथे ॥

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

पाराजिकानि अट्ठेव गरुका दससत्त च।
निस्सग्गियानि तिंसेव छसट्ठि च सतम्पि च॥
खुद्दकानट्ठ गारम्हा पञ्चसत्तति सेखिया।
सब्बानि पन चत्तारि तथा तीणिसतानि च॥
भवन्तेव पनेतानि भिक्खुनीनं वसा पन।
सिक्खापदानि उद्देसमागच्छन्ति उपोसथे'ति॥[1]

इन शिक्षापदों का पाठ प्रति पूर्णिमा और आमवस्या के दिन भिक्षुसंघ सीमागृह में एकत्र होकर किया करता था और अपने को परिशुद्ध घोषित करके भविष्य में संयमित रहने और शिक्षापदों के पालन करने की प्रतिज्ञा के उपरान्त ही कोई भिक्षु प्रातिमोक्ष देशना में सम्मिमित हो सकता था। इसलिए एक भिक्षु समय, स्थान परिष्कार आदि बातों की घोषणा करता था और वर्जनीय भिक्षुओं से शुद्ध भिक्षु पारिशुद्धि देशना करके प्रातिमोक्ष का पाठ करते थे। यह परम्परा अद्यावधि बौद्ध देशों में चली आ रही है। इनका पाठ क्रमशः उक्त क्रम से ही होता था। उसका व्यवधान कदापि नहीं किया जाता था। शिक्षापदों के प्रति गौरव, उनका ज्ञान तथा परिपालन सबसे महत्वपूर्ण माना जाता था। कहा गया है :—

"यो गवं न विजानाति न सो रक्खति गोणकं।
एवं सीलं अजानन्तो किं सो रक्खेय्य संवरं॥"[2]

अर्थात् जो गौ को नहीं जानता है वह गौ की रक्षा नहीं करता है, ऐसे ही शील को न जानने वाला भला क्या संयम करेगा ?

ऐसे ही यह भी कहा गया है :—

"वत्तं न परिपूरेन्तो सीलं न परिपूरति।
असुद्धसीलो दुप्पञ्ञो दुक्खा न परिमुच्चति॥"

अर्थात् जो व्रत को नहीं करता, वह शील को भी पूर्ण नहीं करता है। वह अशुद्ध शील वाला मूर्ख दुःख से नहीं छूटता है।[3]

इन शिक्षापदों में चार पाराजिका बड़े ही महत्वपूर्ण शिक्षापद हैं। इन शिक्षापदों से जो भिक्षु च्युत हो जाता है, वह भिक्षु संघ से बहिष्कृत कर दिया जाता है और वह फिर भिक्षु रहने योग्य नहीं रहता। जिस प्रकार कि मस्तक-हीन ताड़ का वृक्ष फिर बढ़ नहीं सकता। ये चार पाराजिकाएँ हैं—(१) मैथुन,

१. भिक्षु प्रातिमोक्ष—डॉ० भिक्षुधर्मरक्षित; पृष्ठ ३।

२. श्रामणेरविनय, पृष्ठ २।

३. वही; पृष्ठ २।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

(२) चोरी (३) मनुष्य हत्या (४) न होते हुए भी दिव्य शक्ति का प्रदर्शन। संघादिसेष आपत्ति को प्राप्त करके भिक्षु उससे उठ सकता है। ऐसे ही अनियत धर्म, निस्सग्गिय परिचत्तिय, पाचित्तिय, पाटिदेसनीय, अधिकरण, समय शिक्षापदों के सम्बन्ध में भी जानना चाहिए। पचहत्तर सेखिया अभ्यास करने के लिए परिपालिनीय नियम हैं। कैसे पहनना चाहिए, कैसे चलना चाहिए, कैसे गृहस्थों के घर जाना चाहिए, कैसे भोजन करना चाहिए, कैसे खाने के समय हाथ, शब्द, जिह्वादि पर संयम रखना चाहिए। कैसे खड़ाऊं या चप्पल पहनना चाहिए; इत्यादि पचहत्तर शिक्षापदों का सात भागों में विभाजन किया गया है। भिक्षु से यह अपेक्षा की जाती है कि इन शिक्षापदों का यह मनोयोगपूर्वक पालन करेगा और किसी भी प्रकार से इनका व्यतिक्रम न होने देगा। ये शिक्षापद देखने में बड़े सरल और लघु ज्ञात होते हैं किन्तु विनय सम्बन्धी सम्पूर्ण व्रतादि अनुल्लंघनीय होने के कारण बहुत ही महत्वपूर्ण हैं। इन शिक्षापदों का प्रज्ञापन भी इनके महत्व को देखकर ही हुआ है। जैसा कि हमने ऊपर देखा है। आवश्यकतानुसार ही तथागत ने इनको प्रज्ञप्त किया था और कठोरता के साथ इन्हें पालन करने का निर्देश दिया था। हम यह भी जानते हैं कि जो भिक्षु इन नियमों का पालन नहीं करते थे वे संघ से बहिष्कृत कर दिये जाते थे। ऐसा भी हमने देखा है कि अनेक अवसरों पर उपोसथ के दिन सीमागृह में जाने पर और अपरिशुद्ध भिक्षु बाहों से पकड़कर बाहर कर दिए गए थे। इन्हीं शिक्षापदों में व्यतिरेक होने के कारण अनेक प्रकार के भिक्षु निकाय बने और नाना प्रकार के वादों का सृजन हुआ। हम अगले अध्यायों में विस्तारपूर्वक इसका अध्ययन करेंगे।

यद्यपि विनय पिटक में आये सम्पूर्ण शिक्षापद उतने ही हैं जितने कि ऊपर हम लिख आये हैं, किन्तु भगवान् बुद्ध के परिनिर्वाण के बाद कुछ ऐसे भी भिक्षु थे जो उस रूप में इन्हें मानने के लिए प्रस्तुत नहीं थे। भगवान् बुद्ध ने स्वयं महापरिनिर्वाण के समय कहा था कि यदि भिक्षु संघ चाहे तो मेरे उपरान्त क्षुद्रानुक्षुद्रक शिक्षापदों को छोड़ सकता है[1]। किन्तु पीछे संघ ने यह निर्णय लिया था कि किसी भी शिक्षापद को छोड़ना सम्भव नहीं है। अतः तथागत द्वारा प्रज्ञप्त शिक्षापद अद्यावधि परिपालिनीय धर्म माने जाते हैं और भले ही परिपूर्ण न हों जैसा कि हमने मूल सर्वास्तिवादी विनय परम्परा और स्थविरवादी विनय परम्परा में इन शिक्षापदों में विषमता देखी है, फिर

१. महापरिनिब्बानसुत्तं, पृष्ठ १७०

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

भी स्थविरवादियों के लिए अथवा मूल सर्वास्तिवादियों के लिए आज उतने ही शिक्षापद उनके महानतम धरोहर हैं जितने कि आज इन परम्पराओं में विद्यमान हैं। इन शिक्षापदों के परिपालन अथवा न्यूनाधिक होने के सम्बन्ध में विचार वैषम्य हो सकता है किन्तु इनका उद्देश्य केवल एकमात्र भिक्षु संघ को संयमित, एकाबद्ध लक्ष्य पूर्ति की ओर उन्मुख होना और बौद्धधर्म का प्रचार करना था। तथागत के पूर्व किसी भी शास्ता या गणाचार्य ने अपने शिष्यों के लिए इस प्रकार के शिक्षापद प्रज्ञप्त नहीं किए थे और न तो अपने शिष्य संघ को संगठित करने का कोई ठोस उपाय ही किया था। श्रमण संघ के इतिहास में भगवान् बुद्ध की यह एक महान् देन है जिससे कि वे विश्व के सभी शास्ताओं में सर्वश्रेष्ठ उतरते हैं। उनके शिक्षापद मानव जीवन के स्तर को ऊपर उठाने वाले मैत्री, करुणा, मुदिता आदि उत्तम गुणधर्मों से युक्त मानव मात्र के कल्याण की भावना से प्रेरित होकर प्रज्ञप्त हुए हैं। यह आदर्श नियम यद्यपि भिक्षु-भिक्षुणियों के लिए ही प्रज्ञप्त हैं, किन्तु यह मनुष्य मात्र के लिए सर्वोत्तम जीवन-आदर्श हैं। यदि इनका जीवन में पालन किया जाए और इन प्रज्ञप्त नियमों पर चलने का प्रयत्न किया जाए तो व्यक्ति इस भौतिक संसार में ही इस पृथ्वी पर स्वर्ग ही क्या निर्वाण सुख को भी प्राप्त कर कृतकृत्य हो सकता है। अत: ये शिक्षापद सदा सम्माननीय, परिपालनीय और जीवन के उच्चादर्शों के रूप में परिप्रेक्ष्य हैं।

शिक्षापदों का क्रमिक-विकास

भगवान् बुद्ध द्वारा भिक्षु संघ के लिए प्रज्ञप्त शिक्षापदों की अभिवृद्धि क्रमशः हुई। ये शिक्षापद किसी एक स्थान में बैठकर प्रज्ञप्त नहीं किए गए थे, प्रत्युत समय-समय पर, आवश्यकता पड़ने पर इनका प्रज्ञापन हुआ था, जैसे प्रथम पाराजिका की प्रज्ञप्ति मैथुनधर्म के सम्बन्ध में वज्जि देश में आयुष्मान् सुदिन्न के सम्बन्ध में हुई थी। विनय पिटक में पाराजिका स्कन्धक में कहा गया है कि उस समय वज्जि देश में दुर्भिक्ष पड़ा हुआ था। आयुष्मान् सुदिन्न घर के धनी व्यक्ति थे। वे भिक्षा न मिलने में कठिनाई होने के कारण वैशाली गए और अपने पिता के घर भिक्षाटन हेतु पहुँचे। उस समय उनके घर की दासी, बासी दाल फेंकने जा रही थी। आयुष्मान् सुदिन्न ने दासी से कहा—"भगिनि, यदि वह फेंकने को है तो उसे मेरे पात्र में डाल दे।" दासी ने उनके शब्द को सुनकर उन्हें पहचाना और घर के भीतर जाकर उनकी मां को बताया। माता और पिता ने भोजन करने के लिए आग्रह किया, लेकिन तब तक वे दाल पी चुके थे और पुनः भोजन करने से इनकार

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

कर दिया। माता-पिता ने उन्हें भोजन करने के लिए पुनः दूसरे दिन निमंत्रित किया। वे दूसरे दिन भोजन के लिए गये। भोजनोपरान्त उनकी पूर्व पत्नी ने उनसे आग्रह किया कि घर में इतनी धन-सम्पत्ति है और कोई सन्तान नहीं है। अतः आप एक सन्तान दे दें ताकि लिच्छवी इस परिवार की धन-सम्पत्ति को न ले ले। माता पिता और पत्नी के आग्रह पर उन्होंने ऐसा करना बुरा नहीं माना और स्त्री के साथ तीन बार मैथुन-धर्म सेवन किया, जिससे वह गर्भवती हुई और बीजक नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। पीछे मां-पुत्र दोनों प्रव्रजित अर्हत् पद को प्राप्त हुए।

इसी घटना के सम्बन्ध में जब भगवान् को ज्ञात हुआ तो भगवान् ने सुदिन्न को अनेक प्रकार से धिक्कारा और यह शिक्षापद प्रज्ञप्त करते हुए उन्होंने कहा—"अच्छा तो भिक्षुओं, इन बातों का ध्यान कर भिक्षुओं के लिए शिक्षापद ज्ञापन करता हूँ" :

(१) संघ की अच्छाई के लिए (२) संघ की सरलता के लिए (३) उच्छृङ्खल पुरुषों के निग्रह के लिए (४) अच्छे भिक्षुओं के सुखपूर्वक विहार करने के लिए (५) इस जन्म के आस्रवों के निवारण के लिए (६) जन्मान्तरों के आस्रवों के नाश के लिए (७) अप्रसन्नों को प्रसन्न होने के लिए (८) प्रसन्नों की और बढती के लिए (९) सद्धर्म की चिरस्थिति के लिए (१०) विश्व की सहायता के लिए[१]।"

और इस प्रकार दस बातों का लाभ प्रदर्शित करते हुए उन्होंने प्रथम पाराजिका की शिक्षा को प्रज्ञप्त किया था। इससे पूर्व शिक्षापद के प्रज्ञापन के लिए कोई आवश्यकता नहीं पड़ी थी। इसी प्रकार भगवान् बुद्ध का प्रज्ञप्त शिक्षापदों के क्रमिक विकास का अपना इतिहास है। जैसे-जैसे आवश्यकता पड़ती गई, शिक्षापदों की वृद्धि होती गई। हम देखते हैं कि पहले भिक्षु हर समय जब उनकी इच्छा हो भोजन कर सकते थे, विकाल भोजन का निषेध नहीं था किन्तु एक समय एक भिक्षु रात्रि में भिक्षाटन करने गए और एक घर के द्वार पर खड़े हो गए। उसी समय घर की एक महिला बाहर निकली। उसके द्वार पर अन्धेरी रात्रि में खड़े हुए भिक्षु को भूत समझ कर वह महिला चिल्ला पड़ी। भिक्षु ने कहा कि बहन! मैं भिक्षु हूँ और भिक्षाटन के लिए आया हूँ। इस पर उस महिला ने भिक्षु को बहुत धिक्कारा और गाली दिया। वह भिक्षु भिक्षाटन किए बिना भगवान् के पास

---

१. विनय पिटक पाराजिका —१ तथा देखिये बुद्धचर्या, पृष्ठ २९३—२९६

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

लौटा और उन्हें उक्त घटना से अवगत कराया। उसी दिन इसी प्रकरण को लेकर भगवान् बुद्ध ने सभी भिक्षुओं के लिए विकाल भोजन निषिद्ध कर दिया।

जब-जब उक्त प्रकार की कोई घटना घटती थी' तब-तब आवश्यकता पड़ने पर भगवान् बुद्ध भिक्षुओं के लिए नियम प्रज्ञप्त करते थे। इसी प्रकार भिक्षुणी संघ बनने पर उनके लिए भी शिक्षापदों का प्रज्ञापन किया गया। ये शिक्षापद आचरण, साधना, रीति-रिवाज, चाल-चलन, सांघिक प्रतिबन्ध, दण्ड, उत्क्षेपण, निर्वासन, परिशुद्धि, अधिकरण, उपसम्पदा, प्रव्रज्या, उपोसथ, वर्षावास आदि अनेक विविध बातों से सम्बन्धित हैं, जिनका प्रारम्भ भगवान् बुद्ध के धर्मचक्र प्रवर्तन से लेकर हुआ था और उनके ४५ वर्षों के जीवन में समय-समय पर प्रज्ञप्त हुए थे। इस प्रकार उनकी संख्या प्रारम्भ से लेकर अन्त तक अर्थात् धर्मचक्र प्रवर्तन से लेकर महापरिनिर्वाण तक भिक्षुओं के लिए दो सौ सत्ताईस और भिक्षुणियों के लिए तीन सौ ग्यारह हो गयी थी। महापरिनिर्वाण मंच पर लेटे हुए तथागत ने भिक्षुओं से कहा था कि मेरे न रहने पर मेरे द्वारा प्रज्ञप्त धर्म और विनय ही तुम्हारा शास्ता होगा। साथ ही उन्होंने यह भी कहा था कि मेरे न रहने पर यदि भिक्षु संघ चाहे तो छोटे-छोटे (क्षुद्रानुक्षुद्रक) शिक्षापदों को त्याग सकता है। तात्पर्य यह है कि भगवान् बुद्ध ने भिक्षु-भिक्षुणियों के लिए जिन शिक्षापदों का प्रज्ञापन किया था उनका कड़ाई से पालन करने का आदेश देते हुए भी उनका आवश्यक होने पर उन्हें छोड़ देने का भी निर्देश दिया था। इन शिक्षापदों के क्रमिक विकास का इतिहास बड़ा ही मनोरंजक है। प्रत्येक शिक्षापद के साथ उसका प्रसंग और सारगर्भित कथा भी संलग्न है, किन्तु विस्तार-भय के कारण उन्हें यहाँ दे सकना सम्भव नहीं है। बौद्ध शासन के विकास के इतिहास में इनका महत्वपूर्ण स्थान है। इन शिक्षणपदों के क्रमिक विकास का इतिहास वास्तव में बौद्ध शासन के क्रमिक विकास का इतिहास है, जिनके साथ सम्पूर्ण बुद्ध कालीन मध्यदेश का इतिहास, संस्कृति, भूगोल, आचार, साधना आदि सम्बद्ध है, क्योंकि भगवान् बुद्ध ने बुद्धत्व प्राप्ति के उपरान्त अपने पैंतालिस वर्ष के चारिका-काल में सम्पूर्ण मध्यदेश में विचरण करके अपने धर्म का प्रचार किया था और इसी क्षेत्र में समयानुकूल अपने शिक्षापदों को प्रज्ञप्त भी किया था। इसीलिए कोई शिक्षापद वाराणसी में प्रज्ञप्त हुआ था तो कोई राजगिरि में, कोई वैशाली में प्रज्ञप्त हुआ था तो कोई कुशीनारा में, कोई श्रावस्ती में प्रज्ञप्त हुआ था तो कोई कौशाम्बी में। ये शिक्षापद विभिन्न

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

स्थानों में और विभिन्न भागों में प्रज्ञप्त हुए थे, जिनका विभिन्न प्रसंगों से सम्बन्ध था।

भिक्षुसंघ को एकाबद्ध करने का उपाय

भगवान् बुद्ध ने अपने भिक्षुओं को एक संगठित, सुनियंत्रित एवं संयमित श्रमण संघ के रूप में एकाबद्ध किया था। उनका उद्देश्य निर्वाण संदर्शी उन लोगों का एक समुदाय विशेष बनाना था जो अपने हित के साथ ही बहुजन हित और बहुजन सुख को सर्वोपरि मानते थे। जिनके समक्ष मानव का दुःख, अन्तर्वेदना, पीड़ा, उद्वेलन एवं कष्ट मिटाना और सब प्रकार के सुखों से उसे समंगीभूत करना था। वे सुख विशेषकर भौतिक न होकर आध्यात्मिक थे। उनमें नाना परिस्थितियों से निकले व्यक्ति थे। कोई भौतिक सुख से ऊबकर, कोई भौतिक उपभोग से ऊबकर, कोई भौतिक अभावों से पीड़ित होकर और कोई भौतिकता की उपेक्षा कर गृह त्यागी बना था, तो कोई परिस्थिति से बाध्य होकर भाई-बन्धुओं एवं कुल के विनाश के उपरान्त गृह त्यागी बना था, तो कोई तथागत के व्यक्तित्व तथा प्रवचन से प्रभावित होकर उनका अनुगामी बन गया था। इन सब प्रकार की परिस्थितियों से निकले हुए श्रमण समुदाय का यद्यपि लक्ष्य एक था किन्तु विभिन्न कुलों, जातियों, परिस्थितियों के आचरणों तथा देश काल से आने के कारण उनमें अनेक प्रकार की विषमता हो सकती थी और उनके आचरण पर, उनके साधना-पद्धति पर, उनके रहन-सहन, देश काल आदि का प्रभाव पड़ना सम्भव था। इसीलिए कभी-कभी हम भगवान् के साथ उन्हें तर्क-वितर्क भी करते देखते हैं। भगवान् कभी उन्हें फटकारते हैं, 'मोघ पुरुष' कहकर उन्हें धिक्कारते हैं और सन्मार्ग पर लाने का प्रयत्न करते हैं। उन्हीं गृहत्यागी, निर्वाण आकांक्षी, सर्वभूतहितानुकम्पी, महानुभाव भिक्षुओं के लिए ही उनके मार्ग निर्देशन के लिए ही भगवान् ने शिक्षापदों को प्रज्ञप्त किया था और उन्हें उपदेश देते हुए कहा था—"भिक्षुओं, तम्हारे माता-पिता नहीं हैं। तुमने सभी का त्याग किया है। तुम बेघरबारी हो। अतः तुम सब लोग मिलजुल कर रहो। पारस्परिक कलह, मतभेद, आदि विषमताओं का त्याग करो। जिस प्रकार दूध और पानी मिल जाते हैं, उसी प्रकार तुम एक दूसरे से मिलकर रहो। स्नेह पूर्ण नेत्र से एक दूसरे को देखो और प्रेमपूर्ण बातचीत तथा स्नेहपूर्ण व्यवहार करने का अभ्यास करो। उसी में तुम्हारा और तुम्हारे सहयोगी भिक्षु दोनों का कल्याण है। तुम्हारे सम्पर्क में जो लोग भी आयेंगे, तुम्हारे उत्तम आचरण से प्रभावित होंगे और उससे उनका कल्याण होगा।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

भगवान् बुद्ध का संघ एक अद्भुत संघ था जो मानव जगत् के लिए एक आदर्श संघ था। वास्तव में यह संघ उसी प्रकार का था जिस प्रकार कि हम इस संघ का गुण वर्णन उसकी पूजा हेतु करते हैं–

सुपटिपन्नो भगवतो सावक संघो, उजुपटिपन्नो भगवतो भगवतो सावकसंघो, ञायपटिपन्नो भगवतो सावकसंघो, समीचिपटिपन्नो भगवतो सावकसंघो, यदिदं चत्तारि पुरिसयुगानि अट्ठ पुरिस पुग्गला – एस भगवतो सावकसंघो, आहुनेय्यो, पाहुनेय्यो दक्खिनेय्यो, अञ्जलिकरणीयो, अनुत्तरं पुञ्ञक्खेत्तं लोकस्सा'ति।

अर्थ–भगवान् का श्रावक संघ सुमार्ग पर चल रहा है, भगवान् का श्रावक संघ न्याय पर चल रहा है, भगवान् का श्रावक संघ उचित मार्ग पर चल रहा है, जो कि यह चार युगल और – पुरुष = पुद्गल है – यही भगवान् का श्रावक संघ है, वह आह्वान करने योग्य है, हाथ जोड़ने योग्य है और लोक के लिए सर्वोत्तम पुण्य क्षेत्र है।

भगवान् बुद्ध ने सभी भिक्षुओं को एकाबद्ध करने का बहुत ही कठिन प्रयत्न किया था और उन्होंने बतलाया था कि किन किन बातों का अभ्यास करना चाहिए और उन अभ्यासों में लगे रहना चाहिए[१]। फिर भी देवदत्त, कोकलिक आदि भिक्षुओं ने उनकी बात नहीं मानी थी और उनका साथ छोड़ दिया था। उन्होंने अलग से अपना संघ बनाने का प्रयत्न किया था[२]। मेघीय जैसे भिक्षुओं ने भगवान् के मना करने पर भी उनका साथ छोड़ दिया था[३]। कौशाम्बी के भिक्षुओं ने दो गिरोहों में होकर संघ भेद तक कर दिया था और भगवान् की बात तक नहीं मानी थी[४]। वग्गुदा[५] नदी के तीर पर रहने वाले भिक्षुओं को भगवान् को भगा तक देना पड़ा था[६]। सुनक्खत्त जैसे भिक्षुओं ने बौद्ध धर्म का त्याग कर दिया[७]। वृद्ध प्रव्रजित सुभद्र ने तो बुद्ध महापरिनिर्वाण के उपरान्त प्रसन्नताद्योतक उद्‌गार व्यक्त किये थे[८]। किन्तु इतना

१. उदान ४, १
२. सुत्तनिपात—कोकालिक सुत्त
३. उदान ४, १
४. उदान ४, ५
५. आधुनिक बागमती नदी
६. उदान ३, ३
७. दीघ निकाय ३, १
८. दीघ निकाय २, ३

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

होने पर भी भगवान् ने भिक्षु संघ को उसी प्रकार एकाबद्ध कर दिया था जिस प्रकार सभी सरिताएं समुद्र से मिलकर अपने नाम – गोत्र को छोड़ एक हो जाती हैं। समुद्रमय हो जाती हैं। उसी प्रकार नाना प्रकार से निकले हुए कुल पुत्र, कुल-पुत्रियां बुद्ध शासन में प्रव्रजित होकर और तथागत द्वारा अनुशासित हो पूर्ण रूपेण एकाबद्ध हो गयीं थीं। उनके आदर्श जीवन, प्रवचन, साधुता आदि से प्रभावित होकर असंख्य नर तथा नारियों ने अपना जीवन सुधारा और भगवान् बुद्ध का यह आदर्श संघ सदा अपने तथागत द्वारा प्रवेदित मार्ग का अनुसरण करने का प्रयत्न करता रहा।

भिक्षुओं में प्रथम मतभेद

भगवान् बुद्ध द्वारा भिक्षु संघ की स्थापना से लेकर एक दीर्घकाल तक संघ में किसी प्रकार का मतभेद नहीं हुआ। संघ व्यक्ति से सर्वोपरि था। यहां तक कि संघ के समक्ष भगवान् बुद्ध का व्यक्तित्व भी नगण्य था[1]। संघ में पारस्परिक सौहार्द्र, मैत्री और करुणा जनित अनुकम्पा भाव उल्लेखनीय था। संघ की प्रत्येक इकाई जन-कल्याण एवं आत्मोद्धार की भावना से अोतप्रोत थी[2]। जहां सबके प्रति माता-हृदय के समान करुणा और वात्सल्य का भाव था[3]। जहाँ पिता-पुत्र का ममत्व स्फुरित था। जहाँ भाई तुल्य भाई, पिता तुल्य पिता, माता तुल्य माता, भगिनी तथा पुत्री तुल्य भगिनी तथा पुत्री मान्य थे[4]। जहाँ सहनशीलता और क्षमाशीलता सबसे बड़ा तप था[5]। कटुवचनों को शान्तिपूर्वक सह लेना जिनके शास्ता का परम निर्देश था[6]। वहां संघ भेद की कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। फिर भी कालान्तर में देवदत्त और उसके कुछ शिष्यों की स्वार्थान्धता के कारण संघ में भेद उत्पन्न होने की परिस्थितियाँ दृष्टिगोचर होने लगीं।[7] देवदत्त यद्यपि भगवान् बुद्ध का गृहस्थ जीवन का सम्बन्धी था और अन्य राजकुमारों के साथ अनूपिया में वह भी प्रव्रजित हो गया था[8] और भगवान् के शिष्यों में प्रिय

---

१. मज्झिम निकाय ३, ४, १२
२. धम्मपद, १२, २
३. सुत्त निपात १, ८
४. अंगुत्तर निकाय
५. धम्मपद, १४, ६
६. धम्मपद, २३, १–२
७. चूलवग्ग, ७
८. अंगुत्तर निकाय—अट्ठकथा १, १, ५

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

शिष्य सा रहा, किन्तु पीछे उसने अजातशत्रु को प्रभावित करके स्वयं उसकी सहायता से संघ का नेता बनना चाहा[१] और भगवान् बुद्ध को जान से मार डालने के लिए अनेक उपक्रम किये। उसमें सफल न होकर एक दिन स्वयं भगवान् बुद्ध को जान से मार डालने की इच्छा से गृध्रकूट पर्वत से एक शिलाखण्ड नीचे सरकाया जहाँ कि भगवान् बुद्ध पर्वत की छाया में टहल रहे थे। शिलाखण्ड नीचे लुढ़कता हुआ जाकर ऊपर ही फंस गया, पर उसकी एक पपड़ी भगवान् बुद्ध के पैरों में लगी और रुधिर बह निकला[२]। फिर उसने नालागिरि हाथी को भगवान् के ऊपर छुड़वाया, पर वह भी भगवान् के मैत्री प्रभाव से प्रभावित होकर उनकी चरण-धूलि को अपने सिर पर डाल लिया। सभी प्रकार से विफल होने के पश्चात् देवदत्त ने कुछ भिक्षुओं को अपनी ओर मिलाया और भगवान् के पास जाकर इन पांच बातों की मांग की–

१– भिक्षु जीवन भर आरण्यक रहें, जो गांव में बसे उन्हें दोष हो।

२– जीवन भर पिण्डपातिक अर्थात् भिक्षु मांग कर खाने वाले रहें, जो निमंत्रण खायें उन्हें शेष हो।

३– जीवन भर पांसुकूलिक अर्थात् फेंके गए चीथड़ों को सीकर पहनने वाले रहें, जो गृहस्थ के दिये चीवर का उपयोग करें उन्हें दोष हो।

४– जीवन भर वृक्षमूलिक अर्थात् वृक्ष के नीचे रहने वाले हों, जो छाण के नीचे जाए वे दोषी हों।

५– जीवन भर मछली-मांस न खाएं, जो मछली-मांस खायें उन्हें दोष हो।

देवदत्त की ये सभी बातें जब तथागत द्वारा अस्वीकार कर दी गयीं तब उसने पांच सौ भिक्षुओं को भिक्षु संघ से फोड़ लिया और उन्हें साथ लेकर गयाशीर्ष पर्वत की ओर चल दिया, किन्तु भगवान् के प्रधान शिष्य सारिपुत्र और मौद्गल्यायन उन भिक्षुओं के पास गये और समझा बुझा कर उन्हें पुनः भिक्षु संघ में लौटा लाये। इस विकट परिस्थिति को देखकर देवदत्त अवाक् रह गया और उसके मुख से गर्म खून निकल पड़ा और वह अधिक दिनों तक जीवित नहीं रह सका[३]।

---

१. संयुत्त निकाय, १६, ४, ६ तथा चुल्लवग्ग, ७

२. संयुत्त निकाय १, ४, ८ और चुल्लवग्ग, ७

३. चुल्लवग्ग, ७

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

इस प्रकार संघ में उत्पन्न यह प्रथम मतभेद अल्पकाल में ही समाप्त हो गया।

पुनः कौशाम्बी में, भिक्षुओं के विनयधर और सुत्तधर दो भिक्षु गिरोहों में एक छोटी-सी आपत्ति को लेकर संघ भेद उत्पन्न हो गया था। उस समय कौशाम्बी में भिक्षु मंडन करते, कलह करते, विवाद करते, एक दूसरे को मुखरूपी बर्छी (शक्ति) से बेंधते फिरते थे[1]। जब भगवान् को इस बात का पता चला तब वे कौशाम्बी गये और उन भिक्षुओं को बहुत समझाया, किन्तु उन्होंने भगवान् की बात को भी अनसुनी कर दी और अपने कलह-विवाद को नहीं त्यागा। विवश होकर भगवान् ने कौशाम्बी को त्याग दिया और अकेले पारलेय्यक वन में जाकर निवास किया[2]। वहाँ से भगवान् श्रावस्ती गये और कौशाम्बी के कलह-कारक भिक्षु उनसे क्षमायाचना करने के लिए श्रावस्ती पहुँचे। फिर भगवान् से उन्होंने क्षमा मांगी और परस्पर मिलकर रहने की प्रतिज्ञा की। इस प्रकार संघ में उत्पन्न यह द्वितीय मतभेद भी समाप्त हो गया[3]।

इस प्रकार से देखा जाये तो भिक्षुओं में उत्पन्न द्वितीय मतभेद ही प्रथम मतभेद था, क्योंकि प्रथम, देवदत्त द्वारा बहकाया जाना सांघिक मतभेद न होकर व्यक्तिगत प्रलोभन जनित एक षड्यंत्र मात्र था, किन्तु कौशाम्बी में उत्पन्न भिक्षुओं का मतभेद सांघिक मतभेद था, वह विनय और सुत्तपिटक के पारस्परिक भिक्षुओं में उत्पन्न आचरण सम्बन्धी बातों को लेकर उत्पन्न हुआ था और यह धर्म-बुद्धि से प्रेरित मतभेद था। वास्तव में यह विनय और सुत्तन्तपिटक के माणकों के आचरण सम्बन्धी बातों पर आधारित मतभेद था। किन्तु यह भी मतभेद तीन मास के भीतर ही स्वतः समाप्त हो गया था और भगवान् के जीवित रहने तक पुनः अन्य किसी प्रकार का मतभेद भिक्षु संघ में उत्पन्न नहीं हुआ। छोटी मोटी व्यक्तिगत बातों में मतभेद सम्भव हो सकता था किन्तु सांघिक मतभेद का किसी प्रकार का विवरण बुद्ध-महापरिनिर्वाण तक पुनः दृष्टिगोचर नहीं हुआ।

तथागत द्वारा भिक्षुओं को सतर्क करना

भगवान् ने कौशाम्बी में हुए धर्म-विवाद को शान्त करने के लिए बहुत कुछ उपदेश दिया था और भिक्षुओं को संघ भेद से दूर रहने का निर्देश दिया

१. मज्झिम निकाय ३, २, ८ २. उदान ४, ५
३. संयुत्त निकाय २१, ८, ९

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

था किन्तु जिस समय कि भगवान् मल्लों के नगर पावा में विहार कर रहे थे उस समय निगंठनाथ पुत्र (तीर्थंकर महावीर) का पावा में ही देहान्त हो गया था। उनके देहान्त के पश्चात् जैन दो भागों में होकर परस्पर वाद-विवाद कर रहे थे– "तू इस धर्म विनय को नहीं जानता। मैं इस धर्म विनय को जानता हूँ, तू क्या इस धर्म को जानेगा ? तू मिथ्यारूढ़ है, मैं सत्यारूढ़ हूँ, मेरा कथन साथक है, तेरा निरर्थक। तूने पहले कही जाने वाली बात को पीछे कहा और पीछे कही जाने वाली बात को पहले। तेरा वाद बिना विचार का उल्टा है। तूने वाद रोपा, किन्तु निग्रह स्थान में आ गया। जा ! वाद से छूटने के लिए फिरता फिर। यदि सकता है तो समेट[1]।" उस समय भगवान् ने भिक्षुओं को परस्पर मिलकर उपदेश देते हुए उन्हें समझाया कि विवाद नहीं करना चाहिए, जिससे कि यह धर्म चिरस्थायी हो और बहुजन हितार्थ, बहुजन सुखार्थ लोक अनुकम्पा के लिए, देव मनुष्यों के अर्थ हित सुख के लिए हो। उन्होंने इसी अवसर पर संघ-भेद की निन्दा करते हुए कहा–भिक्षुओं ! लोक में एक बात पैदा होती हुई बहुत से लोगों के अहित, दुःख और अनर्थ के लिए पैदा होत है, उससे देव – मनुष्यों का अहित होता है, दुःख मिलता है – कौन सी एक बात ? संघ की फूट।

भिक्षुओं ! संघ की फूट पर परस्पर झगड़े होते हैं, परस्पर डाँटना और गाली देनी होती है तथा परस्पर बिलगाव करने होते हैं। ऐसा होने पर अश्रद्धालु लोग श्रद्धा नहीं करते और श्रद्धालु लोगों में से भी किसी-किसी का मन फिर जाता है।

"संघ की फूट कराने वाला कल्प भर नरक में रहने वाला होता है। फूट डालने में लीन, अधार्मिक व्यक्ति निर्वाण की प्राप्ति से वंचित होता है। वह मिलकर रहने वाले संघ को फोड़कर कल्प भर नरक में पड़ता है[2]।"

ऐसे ही तथागत ने संघ के मेल के महत्त्व को बतलाते हुए कहा– "संघ का मिलकर रहना सुखदायक है। मेल बढ़ाने वाला, मेल करने में लीन, धार्मिक व्यक्ति निर्वाण से वंचित नहीं होता। वह संघ को मिलाकर कल्प भर स्वर्ग में आनन्द कर ा है[3]।"

---

१. दीघ निकाय ३, १०

२. इतिवुत्तक—डा० भिक्षुधर्मरक्षित; १, २, ८, पृष्ठ ७–८

३. वही, १, २, ९, पृष्ठ ९

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

सुखो बुद्धानं उत्पादो, सुखा सद्धम्मदेसना।
सुखा संघस्स सामग्गी, समग्गानं तपो सुखो॥[1]

अर्थ—"सुखदायक है बुद्धों का जन्म, सुखदायक है सद्धर्म का उपदेश, संघ में एकता सुखदायक है और सुखदायक है एकतायुक्त होकर तप करना।"

बौद्ध मन्तव्यों का सूचीकरण

भगवान् बुद्ध ने जिन धर्मों का उपदेश दिया था पीछे उनका सूचीकरण किया गया। तात्पर्य ये सभी धर्म संक्षिप्त रूप में संकलित कर लिए गये। लेकिन बुद्ध-काल में भी इन धर्मों का एक सक्षिप्त वर्गीकरण था, जिन्हें सैंतिस बोधिपक्षीय धर्म कहा जाता है। भगवान् ने इन्हें अभिज्ञा द्वारा प्राप्त धर्म बतलाया था और कहा था कि भिक्षुओं को बड़े ही मनोयोग से इसका पालन करना चाहिए। क्योंकि इनके पालन से बौद्ध धर्म चिरस्थायी होगा और वह बहुजन हितार्थ, बहुजन सुखार्थ, लोकानुकम्पार्थ भी होगा। वे सैंतिस बोधिपक्षीय धर्म हैं:— (१) चार स्मृति प्रस्थान, (२) चार सम्यक् प्रधान, (३) चार ऋद्धिपाद, (४) पाँच इन्द्रिय, (५) पाँच बल (६) सात बोध्यंग, (७) आठ आर्य अष्टांगिक मार्ग।[2]

जब भगवान् का महापरिनिर्वाण निकट आया और धर्मावलम्बियों में धार्मिक वाद-विवाद उठ खड़ा हुआ, तब बौद्ध मन्तव्यों का विशेष रूप से सूचीकरण किया गया। दीघ निकाय के संगीतिपरियायसुत्त और दसुत्तर सुत्त इसी प्रकार के बौद्ध मन्तव्यों के सूचीकरण से सम्बन्धित सुत्त हैं। यहां मैं उनका संक्षिप्त परिचय दे रहा हूँ।

प्रथम सुत्त में आये हुए बौद्ध मन्तव्यों का विभाजन एकक से लेकर दशक तक में किया गया है। एकक में एक धर्म, द्विक में दो धर्म, त्रिक में तीन धर्म, उसी क्रम से दशक में दस धर्मों के विवरण दिये गये हैं। इन्हें संक्षेप में इस प्रकार जानना चाहिए। प्रारम्भ में कहा गया है कि इन धर्मों में अविरोध वचन वाला होना चाहिए, विवाद न करना चाहिए, जिससे कि यह ब्रह्मचर्य चिरस्थायी हो[3]। इन धर्मों के विवरण को संक्षेप में इस प्रकार जानना चाहिए—

१. धम्मपद, १४, १६
२. महापरिनिब्बानसुत्तं, पृष्ठ १०३, दीघ निकाय २, ३
३. दीघ निकाय ३, १०, पृष्ठ २८२

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

एकक के अन्तर्गत सभी प्राणी आहार पर रहने वाले हैं। इसे एकक धर्म कहा गया है। द्विक के अन्तर्गत नाम और रूप, अविद्या और भवतृष्णा, भवदृष्टि और विभव दृष्टि, शमथ निमित्त और विपश्यना निमित्त, विद्या बिमुक्ति और निर्वाण आदि बत्तीस जोड़े धर्म बतलाये गये हैं। त्रिक में तीन प्रकार के धर्मों की गणना करते हुए ५९ × ३ = १७७ धर्म बतलाये गये हैं। चतुष्क में चार प्रकार के धर्मों को बतलाते हुए ४ स्मृति प्रस्थान, ४ ऋद्धिपाद, ४ ध्यान, ४ समाधि-भावना, ४ आर्यवंस, ४ ज्ञान, ४ प्रतिपद, ४ योनि, ४ दक्षिणा-विशुद्धि, ४ पुद्गल आदि ४९×४ = १९६ धर्म बतलाए गए हैं।

पंचक में पाँच उपादान स्कन्ध, ५ नीवरण, ५ शिक्षापद आदि २६×५ = १३० धर्म बतलाये गये हैं।

षष्ठक में ६ धर्मों के अन्तर्गत ६ विज्ञान काय, ६ विवाद मूल, ६ अनुत्तरीय आदि २२×६ = १३२ धर्म बतलाये गये हैं।

सप्तक में ७ आर्यधन, ७ बोध्यंग, ७ सद्धर्म, ७ संज्ञा, ७ संयोजन, ७ अधिकरण शमथ आदि १४×७ = ९८ धर्म बतलाये गये हैं।

अष्टक में ८ दाक्षिणेय पुद्गल, ८ दान वस्तु ८ विमोक्ष आदि १०×८ = ८० धर्म बतलाये गये हैं।

नवक में ९ सत्वावास, ९ अक्षण आदि ६×९ = ५४ धर्म बतलाये गये हैं।

दशक में १० नाथकरण धर्म, १० कुशल-कर्मपथ, १० आर्यवास आदि ६×१० = ६० धर्म बतलाये गये हैं[1]।

इसी प्रकार दसुत्तर सुत्त में भी १० विभागों में बौद्ध मन्तव्यों का विवरण प्रस्तुत किया गया है। इन्हें दसुत्तर धर्म भी कहते हैं। यहाँ एकक के अन्तर्गत दस धर्मों को बतलाते हुए कहा गया है कि यह धर्म बहुत उपकारक है। भावना करने योग्य हैं। इसी प्रकार द्विक के अन्तर्गत दस धर्मों को बतलाया गया है। त्रिक के अन्तर्गत १० धर्म ही आये हुए हैं। चतुष्क में भी, पञ्चक, षष्ठक, सप्तक, अष्टक, नवक और दशक में भी १० धर्मों को ही निर्दिष्ट किया गया है और अन्त में कहा गया है 'इस प्रकार यह सौ धर्म, भूत, तथ्य, अवितथ, अन् = अन्यथा, सम्यक् और तथागत द्वारा ठीक से अभिसम्बद्ध हैं[2]।

इस प्रकार तुलनात्मक दृष्टि से संगीतिपरियायसुत्त में कुल ९९२ धर्मों का विवरण आया हुआ है और दस्सुत्तरसुत्त में ५५० धर्मों का, ४२ धर्म

१. दीघ निकाय ३, १० २. दीघ निकाय ३, ११, पृष्ठ ३१४

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

संगीतिपरियायसुत्त दसुत्तरसुत्त की अपेक्षा अधिक हैं। किन्तु यह न समझना चाहिए कि दोनों बौद्ध मन्तव्यों की सूची समान धर्मों की ही तालिका है। दोनों बौद्ध मन्तव्यों से सम्बन्धित सूचियां हैं फिर भी दोनों का वर्गीकरण भिन्न भिन्न है और इन दोनों का उद्देश्य बुद्ध वचनों, सिद्धान्तों तथा मन्तव्यों का अनुकरण माना गया है। इन मन्तव्यों से उत्पन्न धार्मिक विवाद का निराकरण किया जा सकता है और धार्मिक मतभेदों को इनके आधार पर समाप्त किया जा सकता है। ये मन्तव्य बड़े ही महत्वपूर्ण हैं। यही कारण है कि इनका संकलन दीघनिकाय जैसे महान् ग्रन्थ के अन्तर्गत किया गया है। भगवान् बुद्ध बड़े दूरदर्शी थे, उन्होंने अपने शिष्यों में धार्मिक विवाद न उत्पन्न होने देने के लिए इन मन्तव्यों का सूचीकरण कराया था। इनमें से प्रथम तथा द्वितीय दोनों ही मन्तव्य भगवान् बुद्ध के प्रधान शिष्य सारिपुत्र द्वारा सूचीबद्ध किये गये थे। पहले मन्तव्य के सूचीकरण में महावीर जैन की मृत्यु के बाद उत्पन्न विवाद का समाचार मुख्य था और भगवान् के इस आदेश पर उन्होंने इसका उपदेश दिया था "सारिपुत्र! भिक्षु संघ स्त्यानमृद्ध रहित है, सारिपुत्र! भिक्षुओं को धर्म कहो। मेरी पीठ अगिया रही है, मैं लेटूँगा[1]।

दसुत्तरसुत्त का उपदेश चम्पा में गागरा पुष्करणी के किनारे विहार करते हुए आयुष्मान् सारिपुत्र ने इस प्रकार कहते हुए दिया था– "निर्वाण प्राप्ति और दुःख के अन्त करने के लिए, सारी गांठों के खोलने वाले दशोत्तर धर्म कहता हूँ[2]।

यद्यपि ये दोनों सुत सारिपुत्र द्वारा उपदिष्ट हैं किन्तु बुद्धानुमोदित होने के कारण ये भी बुद्ध वचन माने जाते हैं और इनका बुद्ध वचनों की ही भाँति त्रिपिटक में महत्वपूर्ण स्थान है।

चार महाप्रदेशों की देशना

उपर्युक्त बौद्ध मन्तव्यों के सूचीकरण के साथ ही भगवान् बुद्ध ने अपने शिष्यों को अनेक प्रकार से सतर्क किया और धर्म की कुछ ऐसी कसौटियों को

---

१. दीघ निकाय ३, १०, पृष्ठ २८२

२. दीघ निकाय, पृष्ठ ३०२

"दसुत्तरं पवक्खामि धम्मं निब्बानपत्तिया।
दुक्खस्यन्तकिरियाय सब्बागन्थप्पमोचनं ॥"

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

बतलाया जिससे कि अपने भीतर उत्पन्न धार्मिक सन्देहों को उन पर कसकर उनकी परीक्षा कर सकें। इन्हीं कसौटियों को "महाप्रदेश" नाम से अभिहित किया गया है।

एक समय भगवान् भोग नगर के आनन्द चैत्य में विहार कर रहे थे। वहाँ पर उन्होंने भिक्षुओं को इन चार महाप्रदेशों का उपदेश दिया। भगवान् ने कहा--

(१) "भिक्षुओ ! यदि (कोई) भिक्षु ऐसा कहे– आवुसो ! मैंने इसे भगवान् के मुख से सुना, मुख से ग्रहण किया है; यह "धर्म" है, यह 'विनय' है, यह 'शास्ता' का उपदेश है। तो भिक्षुओ ! उस भिक्षु के भाषण का न अभिनन्दन करना, न निन्दा करना। अभिनन्दन न कर, निन्दा न कर, उन पद-व्यंजनों को अच्छी तरह सीखकर, 'सूत्र' से तुलना करना, 'विनय' में देखना। यदि वह सूत्र से तुलना करने पर, विनय में देखने पर, न सूत्र में उतरते हैं, न विनय में दिखाई देते हैं, तो निश्चित कर लेना कि अवश्य यह भगवान् का वचन नहीं है। इस भिक्षु द्वारा ही दुर्गृहीत है। ऐसा (होने पर) भिक्षुओ ! उसको छोड़ देना। यदि वह सूत्र से तुलना करने पर, विनय में देखने पर, सूत्र में भी उतरता है, विनय में भी दिखाई देता है, तो निश्चित कर लेना – अवश्य यह भगवान् का वचन है, इस भिक्षु द्वारा यह सुगृहीत है। भिक्षुओ ! इसे प्रथम महाप्रदेश धारण करना।

(२) "और फिर भिक्षुओ ! यदि (कोई) भिक्षु ऐसा कहे – आवुसो ! अमुक आवास में स्थविर-युक्त प्रमुख-युक्त (भिक्षु) संघ विहार करता है। मैंने उस संघ के मुख से सुना, मुख से ग्रहण किया है – यह धर्म है, यह विनय है, यह शास्ता का धर्म है।........ तो निश्चित कर लेना कि अवश्य यह भगवान् का वचन है। इसे संघ ने सुगृहीत किया है। भिक्षुओ ! यह दूसरा महाप्रदेश धारण करना।

(३) ....भिक्षु ऐसा कहे– "आवुसो ! अमुक आवास में बहुत से बहुश्रुत, आगत – आगम – (= आगमज्ञ), धर्मधर, विनयधर, "मात्रिकाधर" स्थविर भिक्षु विहार करते हैं। पर मैंने उन स्थविरों के मुख से सुना, मुख से ग्रहण किया। यह धर्म है।........।

(४) भिक्षुओ ! (यदि) भिक्षु ऐसा कहे– अमुक आवास में एक बहुश्रुत.... ....स्थविर भिक्षु विहार करता है। यह मैंने उस स्थविर के मुख से सुना, मुख से ग्रहण किया। यह धर्म है, यह विनय........। भिक्षुओ ! इसे चतुर्थ

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

महाप्रदेश धारण करना। भिक्षुओ! इन चार "महाप्रदेशों" को धारण करना[1]।"

यह महाप्रदेश वास्तव में धर्म और विनय की यथार्थ जानकारी के लिए एक उत्तम कसौटी है। तथागत ने जिस तरह अपने लिए इन महाप्रदेशों की कसौटी के रूप में प्रस्तुत किया, उसी प्रकार उन्होंने यह भी कहा था—

तापाच् छेदाच् च निकषात् सुवर्णमिव पण्डितैः।
परीक्ष्य मद्वचो ग्राह्यं भिक्षवो न तु गौरवात्॥[2]

अर्थ—"जैसे पण्डित जन सोने को तपाकर, काटकर, कसौटी पर कसकर परखते हैं और फिर उसे ग्रहण करते हैं वैसे ही भिक्षुओ! मेरे वचनों को परख कर ग्रहण करो। मेरे गौरव से उन्हें ग्रहण न करो।"

ऐसे ही एक समय भगवान् ने केशपुत्र के कालायों को भी कहा था—"आओ कालामो! तुम लोग किसी मत को श्रुति में आने के कारण मत ग्रहण करो, मत ग्रहण करो परम्परागत होने से, मत ग्रहण करो कि ऐसा ही करते आये हैं, मत ग्रहण करो कि यह धर्म ग्रन्थों से मेल खाता है, तर्क से भी मत ग्रहण करो, न्याय से भी मत ग्रहण करो, आकार-प्रकार से सुन्दर होने से भी मत ग्रहण करो, पसन्द आने से भी मत ग्रहण करो, आकर्षक व्यक्तित्व होने के कारण भी मत ग्रहण करो और मत ग्रहण करो कि ये श्रमण हमारे पूज्य हैं। जब कालामो' तुम लोग स्वयं ही जान लो कि ये बातें अकुशल (बुरी) हैं, ये बातें दोष वाली हैं, ये बातें जानकारों द्वारा निन्दित हैं, ये बातें सम्पूर्ण रूप से ग्रहण करने से अहितकर और दुःखदायी होती हैं तो कालामो! तुम लोग उन्हें छोड़ दो[3]।"

इस प्रकार हमने देखा कि भगवान् बुद्ध ने अपने शिष्यों को बुद्धि-स्वातन्त्र्य के उपदेश के साथ ही अपने वचनों की कसौटी भी प्रस्तुत की। जहाँ महानुकम्पक उन सम्यक् सम्बुद्ध ने महाप्रदेशों का उपदेश दिया, वहीं जनकल्याण की भावना से प्रेरित होकर उन्होंने अन्ध-श्रद्धा और अन्ध-भक्ति, परम्परानुगमन आदि से मनुष्य मात्र को छुटकारा दिलाते हुए वैचारिक स्वतन्त्रता का भी पाठ पढ़ाया। महाकारुणिक तथागत ने जिस प्रकार भिक्षु संघ में उत्पन्न

१. दीघ निकाय २, ३, पृष्ठ १३५–१३६
२. तत्व संग्रह टीका, पृष्ठ १२ पर उद्धृत
३. कालाम सुत्त, पृष्ठ ३३

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

मतभेदों को दूर करके भिक्षुओं के पारस्परिक सौहार्द को बढ़ाया, संघ में मिलजुल कर रहने के महत्त्व को बतलाते हुए मैत्रीपूर्वक साधना में जुट जाने के सुख को बतलाया, भविष्य के सांघिक मतभेदों को न उत्पन्न होने देने के लिए उसकी रोकथाम के निमित बौद्ध मन्तव्यों का सूचीकरण कराया और भिक्षुओं को सतर्क करते हुए, कसौटी स्वरूप चार महाप्रदेशों का उपदेश दिया। उसी प्रकार उन्होंने बुद्ध शासन की चिरस्थिति के लिए भिक्षुओं को निर्देश करते हुए यह अपना अनुशासन प्रशस्त किया था– "भिक्षुओ ! हितैषी, अनुकम्पक शास्ता को अनुकम्पा करके श्रावकों के लिए जैसा करना चाहिए वैसा तुम लोगों के लिए कर दिया। भिक्षुओ ! ये वृक्ष-मूल हैं, ये शून्यघर हैं, ध्यान करो, मत प्रमाद करो। पीछे अफसोस मत करना। यह तुम्हारे लिए हमारे अनुशासन हैं[1]।

१. मज्झिम निकाय ३, ५, १०, पृष्ठ ६११

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

तृतीय अध्याय

बौद्ध-निकायों का प्रारम्भिक युग

बुद्धकाल में भिक्षुनिकायों का स्वरूप

भगवान् के समय में सभी भिक्षु मिल-जुल कर रहते थे। वे धर्मदायाद बनना चाहते थे[1]। प्रातिमोक्ष और शिक्षापदों के नियमों के पालन करने में अपना गौरव समझते थे[2]। वे चीवर, पिण्डपात, शयनासन, ग्लानप्रत्यय, भैषज्य और परिष्कार से ही सन्तुष्ट रहते थे[3]। तैर्थिकों के बीच सिंहनाद करते थे[4], किन्तु तथागत-बल, तथागत-वैशारद्य आदि में पूर्ण विश्वास था[5]। उनमें से कोई आरण्यक था, तो कोई पांसुसूलिक, कोई त्रैचीवरिक था, तो कोई श्मशानिक। वे श्रद्धापूर्वक तेरह धुतांगों और चार आर्यवंशों का पालन करते थे[6]। वे विनय के नियमों का जीवन हेतु भी उल्लंघन नहीं करते थे। वे शील, समाधि और प्रज्ञा का अभ्यास करते थे[7]। उनकी प्रव्रज्या और उपसम्पदा केवल निर्वाण के साक्षात्कार के लिए थी[8]। वे तप में मन लगाते थे और व्यर्थ कथा-वार्ता से दूर रहा करते थे[9]। वे जातिवाद और वर्ण-व्यवस्था को नहीं मानने वाले, केवल शाक्यपुत्रीय श्रमण कहलाते थे[10]। कर्म ही उनके लिए प्रधान था जन्म नहीं[11]। कभी-कभी कोई भिक्षु, शीलों का पालन न कर सकने के कारण गृहस्थ भी बन जाया करता था, किन्तु प्रायः भिक्षु जीवनपर्यन्त परम लक्ष्य की प्राप्ति के लिए ही प्रयत्न करते रहते थे। कोई जंगलों में रहता था

---

१. मज्झिमनिकाय १, १, ३।
२. वही, १, १, ६।
३. वही, १, १, ६।
४. वही, १, २, १।
५. वही, १, २, २।
६. विशुद्धिमार्ग, पहला भाग पृष्ठ ६०।
७. दीघनिकाय, १, ५।
८. वही, १. ६।
९. वही, १, ९।
१०. वही, ३, ४।
११. वही, ३, ४।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

तो कोई विहारों में, कोई नदियों के किनारे रहता था तो कोई वृक्षों के नीचे। सभी समयानुसार भिक्षाटन करते थे और भिक्षा से ही जीवन-निर्वाह होता था। उनके पास अपनी कोई चल-अचल सम्पत्ति नहीं होती थी। केवल चीवर, पात्रादि आठ परिष्कारों से ही वे युक्त होते थे। जिस प्रकार पक्षी जहाँ जाता है, अपने पंखों के साथ ही उड़ता जाता है, उसी प्रकार भिक्षु जहाँ भी जाते थे, अपने चीवर और पात्र के साथ जाते थे। वे अल्पेच्छ और सन्तोषी होते थे। उनके लिए घर-द्वार, खेती, गृहस्थी आदि की आवश्यकता नहीं थी। उन्हें परती, मैदान, गिरि-गुहा, वृक्षमूल, पुवाल-गंज आदि ही रहने के लिए यथासुलभ योग्य स्थान थे। उनके पूज्य तथा गौरवार्ह केवल तथागत सम्यक्सम्बुद्ध थे। वही उनके परम शास्ता थे और उन्हीं का उन्हें आसरा था, फिर भी उनके शास्ता उन्हें स्वयं कार्य करने का आदेश देते थे[१]। उनका यह भी कथन था कि यदि तुम पाप-कर्म करोगे और नरक में पड़ोगे या बुरी गति को प्राप्त होगे तो मैं तुम्हें छुड़ाने नहीं जाऊँगा[२]। तुम्हें अपनी मुक्ति के लिए स्वयं प्रयत्न करना है। तथागत के इन शिष्यों में से कोई ब्राह्मण-कुल से आया था तो कोई क्षत्रिय, कोई वैश्य और शूद्रकुल से, कोई चाण्डाल और मातंग-कुल से आया था तो कोई पुक्कुस और चिड़ोमार-कुल से। कोई मोची था तो कोई नाई, कोई अनपढ़ था तो कोई त्रिवेदपारंगत, कोई शिक्षित था तो कोई आशु कवि, कोई पुरुष था तो कोई महिला, कोई कृषक था तो कोई वणिक्, कोई राजपरिवार का सदस्य था तो कोई निर्धन और रंक, कोई महायज्ञ कराने वाला पुरोहित था तो कोई तप में लीन जटाधारी संन्यासी, कोई निर्ग्रन्थि था तो कोई आजीवक। किन्तु सबका लक्ष्य एक था। सभी मानव थे, सभी बुद्धशासन के अंग थे। सभी ने 'तुवं बुद्धो तुवं सत्था'[३] कहते हुए बुद्ध की शरण ली थी। सबके लिए बुद्ध ज्योतिष्मान्, मूर्तिमान् और महाप्रज्ञ थे। यही नहीं, वे अनुत्तर वैद्य और सम्यक् सम्बुद्ध थे। वे ब्रह्मभूत और स्तुत्य थे[४]। वे संघ के सदस्य थे फिर भी संघ उनके लिए महान् था। संघ पुण्य का क्षेत्र था और वे पुण्यों की वर्षा करने वाले पुण्यात्मा सन्त थे[५]। प्रव्रज्या और उपसम्पदा से ही उनकी आयु आँकी जाती थी, जन्म से नहीं। भिक्षुओं का यह समूह परम संयत, परिशुद्ध और एकान्त

१. धम्मपद २५, २१।

२. सुत्तनिपात ६०, ४, पृष्ठ २२४ (नाहं गमिस्सामि पमोचनाय)।

३. सुत्तनिपात, समियसुत्त, पृष्ठ ११२।

४. सुत्तनिपात, पृष्ठ १२२।

५. वही, पृष्ठ १२५।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

जीवन व्यतीत करने वाला, सन्तों का एक आदर्श समाज था। जिस प्रकार भौंरा पुष्प से मधु लेकर उड़ जाता है[1], उसी प्रकार ये गृहस्थों के यहाँ भिक्षाटन करते थे और सदा दूज के चन्द्रमा की भाँति बने रहते थे अर्थात् एक घर में ही नित्य भिक्षाहेतु नहीं जाते थे। इन भिक्षुओं में कोई कौशेय वस्त्र धारण करता था तो कोई कपास का, कोई चीथड़ों को इकट्ठा करके धोकर तथा रंगकर बने हुए चीवर को पहनता था तो कोई नये मूल्यवान् वस्त्र को भी धारण करता था। एक दूसरे की सेवा करना इनका आदर्श था। पर-सेवा में ही ये पुण्य की कामना करते थे। रोगी की सेवा बुद्ध की सेवा मानते थे[2]। इनमें कोई श्रद्धानुसारी था तो कोई कठोर तपस्वी। कोई महाप्रज्ञावान् था तो कोई ऋद्धियों को प्राप्त। कोई अर्हत् था तो कोई आर्य-मार्ग-फलों को प्राप्त। इस प्रकार के भिक्षुसंघ से किसी प्रकार के विभेद की सम्भावना न थी। इसीलिए तथागत के महापरिनिर्वाणपर्यन्त भिक्षुनिकाय का एक ही स्वरूप रहा, एक ही निकाय रहा, जिसे दीपवंस और महावंस के अनुसार इसे स्थविरवाद अथवा स्थविरनिकाय कहते हैं[3]। एक समय ऐसी भी घटना घटी थी कि इन पवित्र भिक्षुओं के संघ में एक अशुद्ध भिक्षु भी आ बैठा था, जो दुःशील, पापी, घृणित और नीच आचारों वाला, छिपकर दुराचार करने वाला व्यभिचारी, सदाचार का ढोंग करने वाला, बुरे हृदय वाला, मूर्ख और बेकार था[4]। उसे भगवान् ने देखा और महामौद्गल्यायन ने भगवान् के आशय को समझ कर उसे बाँहों से पकड़ कर दरवाजे से बाहर निकाल दिया और किवाड़ बन्द कर वेणी लगा दी[5]। ऐसी छोटी-मोटी घटनाओं के अतिरिक्त देवदत्त का संघ में फूट डालने का प्रयत्न[6] और कौशाम्बी के भिक्षुओं का पारस्परिक मतभेद[7] भी उल्लेखनीय है। फिर भी जहाँ तक निकाय के स्वरूप की बात है, बुद्ध-परिनिर्वाण तक निकाय का स्वरूप उक्त ही रहा और तथागत के परिनिर्वाण

१. धम्मपद, ४, ६।

२. विनयपिटक—

> "एको व थेरवादो सो आदिवस्ससते अहु
> यो गिलानं उप्पट्ठचेय, सो मं उपट्ठचेय।"

३. महावंसो ५, २।

४. उदान ५, ५।

५. वही, ५, ५।

६. सुत्तनिपात ३, १०।

७. महावग्ग ७।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

के पश्चात् भी लगभग १०० वर्षों तक कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। जो भी विषम परिस्थितियाँ उत्पन्न होना चाहीं, उनकी तुरन्त रोकथाम कर दी गयी। हम आगे देखेंगे कि किस प्रकार तथागत के परिनिर्वाण के तुरन्त बाद ही संघ में उत्पन्न होते हुए अधर्म को महाकाश्यप आदि भिक्षुओं ने किस प्रकार रोक दिया और प्रथम संगीति का आयोजन किया था।

कुशीनारा में भिक्षु-सम्मेलन तथा ५०० भिक्षुओं का चयन

जिस समय (ईस्वीपूर्व ५४३) कुशीनारा में भगवान् बुद्ध का महा-परिनिर्वाण हो गया था और उनके शिष्य आठवें दिन उनके मृत कलेवर को अन्त्येष्टिसंस्कार करने हेतु हिरण्यवती नदी के किनारे मुकुट बन्धन चैत्य के पास तैय्यारी कर रहे थे, उस समय आयुष्मान् महाकाश्यप ५०० भिक्षुओं के बड़े संघ के साथ पावा से कुशीनारा चले आ रहे थे। उस समय वे मार्ग से हटकर एक वृक्ष के नीचे बैठे। उस समय एक आजीवक कुशीनारा से मन्दारक पुष्प लेकर पावा की ओर जा रहा था। उसके पास आते ही उन्होंने पूछा—"आवुस! क्या हमारे शास्ता को जानते हो?"

"हाँ आवुसो जानता हूँ। श्रमण गौतम का परिनिर्वाण हुए आज एक सप्ताह हो गया। मैंने यह मन्दारक पुष्प वहीं से पाया है।" यह सुनकर उन भिक्षुओं में, जो ज्ञानप्राप्त नहीं थे वे रोने-चिल्लाने लगे और जो ज्ञानी थे वे सोचने लगे—"सभी संस्कार अनित्य हैं। वे कहाँ से स्थिर रह सकते हैं?" उस समय सुभद्र नामक एक वृद्ध प्रव्रजित उन्हीं भिक्षुओं में बैठा था। वह भिक्षुओं को इस प्रकार समझाने लगा—"मत, आवुसो! शोक करो। मत रोओ। हम सुमुक्त हो गये। उस महाश्रमण से पीड़ित रहा करते थे। 'यह तुम्हें विहित है। यह तुम्हें विहित नहीं है।' अब हम जो चाहेंगे सो करेंगे, जो नहीं चाहेंगे वह नहीं करेंगे।" उसकी इस बात को सुनकर आयुष्मान् महाकाश्यप ने भिक्षुओं को इस प्रकार समझाया—"आवुसो! मत शोक करो, मत रोओ। आवुसो! भगवान् ने तो यह पहले ही कह दिया है—सभी प्रियों, मनायों से जुदाई, वियोग, अन्यथा-भाव होता है। सो वह आवुसो! कहाँ से मिलने वाला है। जो उत्पन्न, भूत, संस्कृत, नाशवान् है। हाय! वह तथागत का शरीर भी नाश न हो—यह संभव नहीं।"

वहाँ से महाकाश्यप भिक्षुओं सहित, जहाँ भगवान् का मृत कलेवर था, वहाँ गये और उनके तथा भिक्षुओं की तीन बार प्रदक्षिणा कर भगवान् के चरणों

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

में प्रणाम कर लेने के पश्चात् भगवान् की चिता जली और अन्त्येष्टि-क्रिया सम्बन्धी कार्य सम्पन्न हुआ[1]।

कुशीनारा में ही आयुष्मान् महाकाश्यप ने सभी भिक्षुओं को एकत्र किया और वृद्ध प्रव्रजित सुभद्र की कही हुई बातों को बतलाते हुए कहा—"अच्छा है, आवुसो ! हम धर्म और विनय का संगायन करें। सामने अधर्म प्रकट हो रहा है, धर्म हटाया जा रहा है। अविनय प्रकट हो रहा है, विनय हटाया जा रहा है। अधर्मवादी बलवान् हो रहे हैं, धर्मवादी दुर्बल हो रहे हैं, विनयवादी हीन हो रहे हैं।" उन सभी भिक्षुओं ने अपनी सहमति प्रकट की और उनके इच्छानुसार महाकाश्यप द्वारा एक कम पाँच सौ (४९९) अर्हत् चुने गये, किन्तु भिक्षुओं के आग्रह पर आयुष्मान् आनन्द का भी चुनाव कर लिया गया, जो अभी अर्हत् नहीं थे[2]। वहीं यह भी निश्चय हुआ कि राजगृह में वर्षावास करते हुए धर्म और विनय का संगायन होगा। वहाँ इन ५०० भिक्षुओं के अतिरिक्त कोई दूसरा न जाय। इस प्रकार प्रथम संगीति का निश्चय और ५०० भिक्षुओं का चुनाव-कार्य कुशीनारा में सम्पन्न हुआ।

प्रथम संगीति की कार्यवाही

कुशीनारा में हुए निश्चय के अनुसार सभी भिक्षु अपने-अपने बिहारों के लिए प्रस्थान कर गये। उन्हें आषाढ़-पूर्णिमा को राजगृह में एकत्र होना था। इस बीच राजगृह के टूटे-फूटे बिहारों की मरम्मत की गयी और संगीति करने के लिए राजगृह के वैभार पर्वत की सप्तपर्णी गुहा को नियत किया गया। अजातशत्रु ने भिक्षुओं के संरक्षण की सारी व्यवस्था की। राजगृह के आवासीय भिक्षु, जिन्हें संगीति में सम्मिलित होना नहीं था, राजगृह से बाहर चले गये। आयुष्मान् आनन्द कुशीनारा से पहले श्रावस्ती गये और वहाँ से राजगृह। आषाढ़-पूर्णिमा की रात में आयुष्मान् आनन्द ने सोचा—"कल बैठक होगी, मेरे लिए उचित नहीं कि मैं शैक्ष्य रहते ही बैठक में जाऊँ।" उन्होंने बहुत रात्रि तक काय-स्मृति में बिताकर रात के भिनसार को लेटने की इच्छा से शरीर को फैलाया। भूमि से पैर उठ गये और सिर तकिया पर न पहुँच सका, इसी बीच में उनका चित्त आस्रवों (चित्तमलों) से अलग हो मुक्त हो गया। दूसरे दिन आयुष्मान् आनन्द भी अर्हत् होकर ही बैठक में गये। बैठक में ५०० भिक्षुओं के लिए आसन लगे थे, लेकिन ४९९ भिक्षु ही अपने

१. महापरिनिब्बानसुत्तं पृष्ठ १८६-१९०।

२. विनयपिटक, चुल्लवग्ग ११, १।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

आसन पर विराजमान थे। एक आसन खाली था। भिक्षुओं ने पूछा, "आनन्द कहाँ हैं ?" तब तक आनन्द ऋद्धिबल से आसन पर प्रकट हुए और संगीति की कार्यवाही प्रारम्भ हुई। आयुष्मान् महाकाश्यप ने संघ को ज्ञापित किया—"आवुसो ! संघ सुने। यदि संघ को पसन्द है तो उपालिसे मैं 'विनय' पूछूँ।"

आयुष्मान् उपालि ने भी संघ को ज्ञापित किया—"भन्ते संघ ! सुनें। यदि इस संघ को पसन्द है तो मैं आयुष्मान् महाकाश्यप से पूछे गये विनय का उत्तर दूँ ?" तब आयुष्मान् महाकाश्यप ने आयुष्मान् उपालि से पूछा—"आवुस उपालि ! प्रथम पाराजिका कहाँ प्रज्ञप्त की गयी ?"

"राजगृह में, भन्ते !"

"किसको लेकर ?"

"सुदिन्न कलन्दपुत्त को लेकर।"

"किस बात में ?"

"मैथुन धर्म में।"

तब आयुष्मान् महाकाश्यप ने आयुष्मान् उपालि से प्रथम पाराजिका की वस्तु, निदान, व्यक्ति, प्रज्ञप्ति, अनुप्रज्ञप्ति, आपत्ति और अनापत्ति भी पूछी। इसी प्रकार द्वितीय पाराजिका, तृतीय पाराजिका और चतुर्थ पाराजिका के सम्बन्ध में भी प्रश्न पूछे और भिक्षु-भिक्षुणी दोनों विनयों को विस्तारपूर्वक पूछा। आयुष्मान् उपालि ने उनके प्रश्नों का उत्तर दिया। इसी प्रकार आयुष्मान् महाकाश्यप ने आयुष्मान् आनन्द से धर्म (सुत्त) प्रश्नों को पूछा और सभी पूछे गये प्रश्नों के उत्तर आयुष्मान् आनन्द ने दिये।

प्रथम संगीति की कार्यवाही का यह संक्षिप्त विवरण है।

बुद्ध-वचनों का एकीकरण

प्रथम संगीति में तथागत द्वारा उपदिष्ट सभी बुद्ध-वचनों का संगायन किया गया, जिसे हम त्रिपिटक नाम से जानते हैं। इस त्रिपिटक में केवल ८४,००० ही धर्म-स्कन्धों का संकलन हुआ और विषय के अनुसार उन्हें तीन भागों में बाँट दिया गया—(१) सुत्तपिटक, (२) विनयपिटक, (३) अभिधम्मपिटक।

पिटक का अर्थ है पेटारी अथवा मंजूषा। ये तीनों पिटक सुत्त, विनय और अभिधम्म की मंजूषाएँ ही हैं[१]।

त्रिपिटक की तालिका अपने परिवार-ग्रन्थों के साथ इस प्रकार है।

१. पालि-साहित्य का इतिहास, पृष्ठ ३३।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

त्रिपिटक

- (१) सुत्तपिटक
  - १. दीघनिकाय, २. मज्झिमनिकाय, ३. संयुत्तनिकाय, ४. अंगुत्तरनिकाय, ५. खुद्दकनिकाय
    - १. खुद्दकपाठ, २. धम्मपद, ३, उदान, ४. इतिवुत्तक, ५. सुत्तनिपात
    - ६. विमानवत्थु, ७. पेतवत्थु ८. थेरगाथा, ९. थेरीगाथा १०. जातक
    - ११. निद्देस, १२. पटिसम्भिदामग्ग, १३. अपदान, १४. बुद्धवंस, १५. चरियापिटक
- (२) विनयपिटक
  - (१) पाराजिका (२) पाचित्तिय (३) महावग्ग (४) चुल्लवग्ग (५) परिवार
- (३) अभिधम्मपिटक
  - १. धम्मसंगणी, २. विभंग, ३. धातुकथा, ४. पुग्गलपञ्ञत्ति, ५. कथावत्थु, ६. यमक, ७. पट्ठान

त्रिपिटक में संगृहीत बुद्ध-वचन को बुद्ध-काल में केवल धम्म और विनय कहा जाता था। विनय भिक्षुओं के आचार-सम्बन्धी नियमों का संग्रह ग्रन्थ है और धम्म से सुत्तपिटक और अभिधम्मपिटक समझे जाते हैं। जब प्रथम संगीति के समय इनका विभाजन हो गया और सम्पूर्ण बुद्ध-वचन इन पिटकों में बाँट दिया गया, तब से धम्म दो भागों में विभक्त हो गया।

सुत्तपिटक में तथागत के ऐसे उपदेश संगृहीत हैं, जो सर्वसाधारण के लिए बोधगम्य हैं। प्रत्येक व्यक्ति उन्हें अपनी बुद्धि एवं विवेक के अनुसार समझ सकता है। इस पिटक में उन्हीं सुत्तों और गाथाओं का समावेश है, जिन्हें तथागत या तथागत के शिष्यों ने भिन्न-भिन्न अवसरों पर कहा था। सुत्तों के बाहुल्य के कारण ही इसका नाम सुत्तपिटक पड़ा[1]। सुत्तपिटक में तथागत के ऐसे व्यावहारिक उपदेश हैं, जिनसे बुद्ध के व्यक्तित्व और बुद्धधर्म को स्पष्ट और सुगम रूप से जान सकते हैं। भगवान् बुद्ध तथा उनके प्रधान भिक्षु-भिक्षुणी, उपासक और उपासिकाओं के जीवन-चरित्र भी आये हुए हैं, जिन्हें पढ़कर सच्चरित्रता, पवित्रता, निस्पृहता एवं मुक्ति-मार्ग की शिक्षा प्राप्त होती है। इसमें एक प्रकार का अद्भुत उद्बोधन होता है। नव-जागृति की प्रेरणा मिलती है।

सुत्तपिटक भगवान् बुद्ध की शिक्षाओं की अनुपम पेटारी है, जिसमें धर्मरत्न (=धम्मरतन[2]) इस प्रकार सजाकर रखा गया है कि उसे कोई भी चक्षुष्मान् पुरुष देखते ही पहचान सकता है और उसके अवलम्बन से अपना जीवन-यापन करते हुए निर्वाण को प्राप्त कर परम सुखी हो सकता है।

सुत्तपिटक में प्रागैतिहासिक और बुद्ध-कालीन भारत या भारत से सम्बन्धित अन्य देशों की ऐतिहासिक सामग्री प्रचुर मात्रा में आयी हुई है[3]। बुद्ध-कालीन भारत का सच्चा और प्रामाणिक इतिहास सुत्तपिटक की सहायता के बिना लिखा नहीं जा सकता। यदि इसे बुद्ध-कालीन धर्म, समाज, सभ्यता, संस्कृति, दर्शन और देश का इतिहास-ग्रन्थ कहें तो बहुत असंगत न होगा, किन्तु इसे इतिहास-ग्रन्थ कहना इस अमूल्य रत्न का अपमान करना और इसके मूल्य को घटाना है। यह तो वह अनुपम धर्मकोष है जिसे प्राप्त कर मानव त्यागी,

१. पालि-साहित्य का इतिहास, पृ० ४०।

२. बौद्ध धर्म में बुद्ध, धर्म और संघ "त्रिरत्न" कहे जाते हैं। धर्म को ही "धर्मरत्न" (=धम्मरतन) कहा जाता है।

३. पालि-साहित्य का इतिहास, पृष्ठ ४०।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

विवेकी और शील-परायण होता है। वह अपने वर्तमान स्तर से क्रमशः ऊपर उठकर मैत्री, करुणा, मुक्ति और उपेक्षा नामक चारों ब्रह्मविहारों से सारे विश्व को आप्लावित करके विहरने लगता है[१]।

सुत्तपिटक पालि-साहित्य का एक विशाल और महत्वपूर्ण अंश है। इसमें कथा, कहानी, दर्शन, तर्क, उपमा, उपमेय, अलंकार आदि साहित्य के प्रत्येक अंग परिपूर्णतः सन्निविष्ट हैं। यह शान्त-रस-प्रधान होते हुए भो सम्पूर्ण रसों से ओतप्रोत है[२]।

सुत्तपिटक पाँच निकायों में विभक्त है। इसका विभाजन सूत्रों के विषय के अनुसार नहीं, प्रत्युत उनके आकार-प्रकार के अनुसार किया गया है। लम्बे-लम्बे सूत्रों को एकत्र करके उनका नाम दीघनिकाय रखा गया है। ऐसे ही मध्यम प्रमाण के सूत्रों को एकत्र करके मज्झिमनिकाय और छोटे-छोटे सूत्रों को एकत्र करके खुद्दकनिकाय। कुछ छोटे-बड़े दोनों प्रकार के सूत्रों को एकत्र करके संयुत्तनिकाय नाम रखा गया है, एवं सूत्रों के अंगों को क्रमशः वृद्धि के अनुसार एकत्रित सूत्रों का अंगुत्तरनिकाय।

संयुत्तनिकाय के सूत्रों के संयुक्त बाँट है। खुद्दकनिकाय में पन्द्रह ग्रन्थ हैं। जिनके अलग-अलग विषय हैं। धम्मपद तथा जातक इसी निकाय के अन्तर्गत आये हुए हैं। इस प्रकार (१) दीघनिकाय, (२) मज्झिमनिकाय, (३) संयुत्तनिकाय, (४) अंगुत्तरनिकाय, (५) खुद्दकनिकाय—ये पाँच निकाय हैं। निकाय शब्द के लिए पालि में आगम शब्द भी प्रचलित है।

संस्कृत बौद्ध साहित्य में निकायों को आगम ही कहा गया। दिव्यावदान में चार आगमों का वर्णन है। दीर्घ, मध्यम, संयुक्त एवं एकोत्तर। पाँचवें क्षुद्रक का कोई उल्लेख नहीं है। इस पर कुछ पण्डितों ने पालि के खुद्दकनिकाय पर सन्देह किया था, किन्तु धम्मपद आदि अनेक ग्रन्थों के मिल जाने के पश्चात् स्वतः सिद्ध हो गया है कि संस्कृत बौद्ध-साहित्य में भी खुद्दक (क्षुद्रक) निकाय विद्यमान है। साँची में प्राप्त तीसरी शताब्दी के अभिलेखों में पंचनैयायिक, पेटकी आदि शब्द पाये गये हैं, जिनसे उस समय में पूर्व पाँच निकायों का बन चुकना तथा पिटकों का भी किसी रूप में विद्यमान होना सिद्ध होता है[३]।

---

१. पालिसाहित्य का इतिहास, पृष्ठ ४१।

२. वही, पृष्ठ ४१।

३. बौद्धदर्शन तथा साहित्य पृष्ठ ९९।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

अभिधम्मपिटक भगवान् बुद्ध के गम्भीर धर्मों का संग्रह है। इसमें चित्त, चैतसिक आदि धर्मों का विशुद्ध विश्लेषण किया गया है। विज्ञान क्या है, संस्कार क्या है, वेदना क्या है, संज्ञा क्या है आदि आध्यात्मिक विषयों पर दार्शनिक गवेषणा की गयी है और आस्रव-रहित निर्माण की प्राप्ति का साधन बताया गया है। यह बौद्ध धर्म का दर्शन-ग्रन्थ है। यह सात प्रकरणों में बँटा हुआ है—(१) धम्मसंगणी, (२) विभंग, (३) धातुकथा, (४) पुग्गल-पन्नति, (५) कथावत्थु (६) यमक, (७) पट्ठान। इनमें कथावत्थु प्रकरण तर्कशास्त्र और बौद्ध-धर्म के भिक्षु संघ का इतिहास है। इसकी देशना आचार्य मौग्गलिपुत्ततिस्स स्थविर ने की थी। इस ग्रन्थ में अशोककालीन स्थविरवाद के अतिरिक्त १७ भिक्षुनिकायों के सिद्धान्तों का निराकरण किया गया है। इसकी अट्ठकथा से पीछे के भी सात निकायों के सिद्धान्तों का समीकरण होता है। इस प्रकार तत्कालीन अट्ठारह निकायों के अतिरिक्त पीछे के सात निकायों के सिद्धान्तों का परिचय इस ग्रन्थ से मिलता है। हम आगे देखेंगे कि इसकी अट्ठकथा से बुद्धकाल से लेकर ईसापूर्व पाँचवीं शताब्दी तक के भिक्षुसंघ के इतिहास की जानकारी होती है। इसकी रचना भगवान् बुद्ध के महापरिनिर्वाण के २१८ वर्ष बाद हुई थी, किन्तु इसके महत्व को देखकर तीसरी संगीति में इसे अभिधम्मपिटक में सम्मिलित कर लिया गया था। इस ग्रन्थ में आये हुए भिक्षुनिकाय-सम्बन्धी विवरणों पर हम पीछे विचार करेंगे।

विनयपिटक में, जैसा कि हम ऊपर कह आये हैं, भिक्षु-भिक्षुणियों के आचार-सम्बन्धी नियम हैं। ऐसा ऐतिहासिक दृष्टि से हम कह सकते हैं कि यह संघ के क्रमिक विकास का महत्वपूर्ण वृत्तान्त है। भगवान् की जीवनी के साथ तत्कालीन भारत के रीति-रिवाज, खान-पान, ओढ़ाव-पहनाव एवं नाना प्रकार की ऐतिहासिक सामग्रियों से भरा हुआ है। शिक्षाओं और नियमों के विधान में कैसे प्रव्रज्या देनी चाहिए, शिष्य तथा आचार्य के परस्पर व्यवहार कैसे होने चाहिए, भिक्षुओं को कैसे रहना चाहिए, कैसे गाँवों में भिक्षाटन हेतु जाना चाहिए, कैसे उठना, बैठना, खाना, पीना चाहिए, क्या दोष करने से भिक्षु को क्या दण्ड देना चाहिए, किन-किन वस्तुओं का व्यवहार भिक्षु के लिए उचित है और किन-किन वस्तुओं का व्यवहार अनुचित आदि दैनिक जीवन की छोटी-छोटी बातों से लेकर बड़े-बड़े अपराधों तक के विषय में शिक्षायें (नियम) सन्निविष्ट हैं। वास्तव में विनय बुद्धशासन का मूल है। विनय में स्थित संघ ही बुद्धशासन को जीवित रख सकता है। विनयपिटक तीन भागों में विभक्त है—(१) सुत्तविभंग, (२) खन्धक, (३) परिवार। सुत्तविभंग भिक्खु-

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

विभंग तथा भिक्खुनीविभंग दो भागों में बँटा है तथा खन्धक महावग्ग और चुल्लवग्ग दो भागों में विभक्त है। इसे इस प्रकार जानना चाहिए—

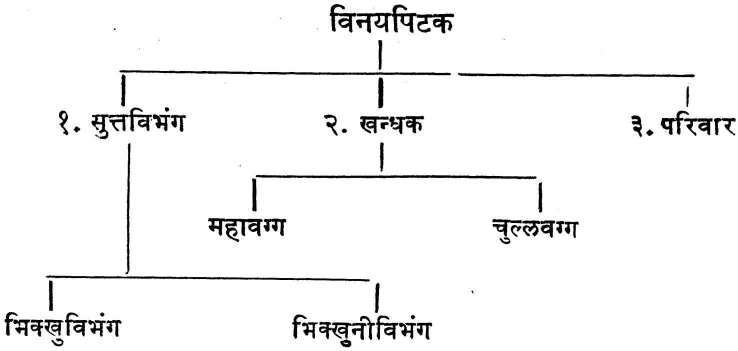

विनयपिटक के परिवार में उपालि महास्थविर से लेकर ३४ स्थविर-पीढ़ियों तक की विनय-परम्परा तक का उल्लेख है, जो ऐतिहासिक दृष्टि से बहुत ही महत्वपूर्ण है। उसे इस प्रकार जानना चाहिए—

१. भगवान् बुद्ध
२. उपालि
३. दासक
४. सोणक
५. सिग्गव
६. मोग्गलिपुत्ततिस्स
७. महिन्द (=महेन्द्र)
८. अरिट्ठ
९. तिस्सदत्त (१)
१०. कालसुमन
११. दीघसुमन
१२. कालसुमन (२)
१३. नागत्थेर
१४. बुद्धरक्खित
१५. तिस्स
१६. देव
१७. सुमन (१)
१८. चूलनाग
१९. तम्मपालित
२०. खेम
२१. उपतिस्स
२२. फुस्सदेव (१)
२३. सुमन (२)
२४. फुस्स (पुटक) (१)
२५. महासीव
२६. उपालि (२)
२७. महानाग
२८. अभय
२९. तिस्स (२)
३०. फुस्स (पुप्फ) (२)
३१. चूल अभय
३२. तिस्स (३)
३३. फुस्सदेव (२) चूलदेव
३४. सिव

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

इस स्थविर-परम्परा में महेन्द्र तक ही भारतीय स्थविर हैं। शेष लंका की स्थविर-परम्परा के अन्तर्गत हैं।

विनय में पाण्डित्य प्राप्त करने के लिए परिवार का जानना आवश्यक है।

विनयपिटक अनुपसम्पन्न गृहस्थ या श्रामणेर को नहीं पढ़ा जाता। उपसम्पन्न होकर ही किसी भिक्षु से इसे पढ़ाया जा सकता है। बुद्धशासन का जीवन इस विनयपिटक पर ही निर्भर है। जब विनयपिटक की शिक्षाओं का अतिक्रमण होने लगता है तो बुद्ध-शासन धीरे-धीरे अवनति की ओर जाने लगता है। प्रायः भिक्षु संघ में फूट भी इसी विनय के कारण हुआ करती है। आगे हम देखेंगे कि द्वितीय या तृतीय संगीतियों का आयोजन विनय-नियमों के अतिक्रमण के कारण हुआ था। अनेक निकाय-भेद के मूल में भी विनय के नियमों का उल्लंघन ही मुख्य कारण है।

आयुष्मान् आनन्द के प्रमाद

जिस समय भगवान् बुद्ध कुशीनारा में जोड़े शाल वृक्षों के नीचे परिनिर्वाण महाशय्या पर लेटे हुए थे, उस समय आयुष्मान् आनन्द से कुछ प्रमाद (भूल) हो गया था। जिसका महाकाश्यप आदि महास्थविरों ने, प्रथम संगीति के समय उनसे जबाब तलब किया था और आनन्द को कुछ कार्य-भार भी दिया गया था, जिसे उन्हें सतर्कतापूर्वक सम्पादित करना पड़ा। आयुष्मान् आनन्द द्वारा हुए प्रमादों का संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित प्रकार से जानना चाहिए—

(१) महापरिनिर्वाण-शय्या पर लेटे हुए तथागत ने आनन्द से कहा था कि मेरे न रहने पर यदि भिक्षुसंघ चाहे तो क्षुद्रानुक्षुद्रक शिक्षापदों को छोड़ दे[1]। प्रथम संगीति के स्थविर भिक्षुओं ने आनन्द से पूछा—"आवुस आनन्द ! तूने भगवान् से पूछा कि क्षुद्रानुक्षुद्रक शिक्षापद कौन हैं?"

"भन्ते ! मैंने भगवान् से नहीं पूछा।"

इस पर भिक्षुओं में मतभेद उत्पन्न हो गये। किन्हीं ने कहा चार पाराजिकायें और तेरह संघादिशेषों को छोड़कर शेष क्षुद्रानुक्षुद्रक शिक्षापद हैं। किसी ने कुछ कहा और किसी ने कुछ और! तदुपरान्त यह निश्चय हुआ कि किसी भी शिक्षापद को न छोड़ा जाय क्योंकि किसी भी शिक्षापद को छोड़ने पर लोग कहने वाले होंगे—

---

१. आकङ्०खमानो आनन्द! संघो ममच्चयेन खुद्दानुखुद्दकानि सिक्खापदानि समूहनतु ति"—महापरिनिब्बानसुत्त, पृष्ठ १७०।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

"श्रमण गौतम ने धूएँ के कालिख जैसा शिक्षापद प्रशस्त किया। जब तक इनका शास्ता रहा, तब तक शिक्षापद का पालन करते रहे और जब इनके शास्ता का परिनिर्वाण हो गया तब शिक्षापदों का पालन नहीं करते।" और भिक्षुओं ने आयुष्मान् आनन्द को दुष्कृत्य का अपराधी ठहराया। आनन्द को भी दुष्कृत की देशना करनी पड़ी[१]।

(२) आनन्द ने भगवान् की वर्षासाटी (वर्षाकाल में नहाने के कपड़े) को पैर से दबाकर सिला था। यह भी उनका प्रमाद था और इसके लिए उन्हें दुष्कृत की देशना करनी पड़ी।

(३) जिस रात्रि को भगवान् बुद्ध का महापरिनिर्वाण होने वाला था, उस रात्रि को कुशीनारा के मल्लों की स्त्रियों, बहुओं, पुत्रियों आदि से भगवान् के पैरों की वन्दना करायी[२]। रोती हुई उन स्त्रियों के आँसुओं से भगवान् का शरीर लिप्त हो गया[३]। यह भी आनन्द का प्रमाद था, और उन्हें दुष्कृत की आपत्ति हुई, जिसके लिए भी उन्हें देशना करनी पड़ी।

(४) एक समय भगवान् वैशाली के चापाल चैत्य में विहार कर रहे थे[४]। उस समय भगवान् ने उल्लसित होकर आनन्द से कहा—"आनन्द! वैशाली रमणीय है। उदयन चैत्य रमणीय है। गौतमक चैत्य रमणीय है। सत्तम्बक चैत्य रमणीय है। बहुपुत्र चैत्य रमणीय है। आनन्द चैत्य रमणीय है, चापाल चैत्य रमणीय है। आनन्द, जिसने चार ऋद्धिपाद साधे हैं, बढ़ा लिए हैं, राता कर लिए हैं, घर कर लिए हैं, अनुत्थित, परिचित और सुसमारब्ध कर लिए हैं, यदि वह चाहे तो कल्प भर ठहर सकता है या कल्प के बचे काल तक। तथागत ने भी आनन्द! चार ऋद्धिपाद साधे हैं, यदि तथागत चाहें तो कल्प भर ठहर सकते हैं या कल्प के बचे काल तक।" किन्तु भगवान् के इस प्रकार स्पष्ट रूप से संकेत करने पर भी आनन्द ने प्रार्थना नहीं की—"भन्ते! बहुजन हित के लिए, बहुजन सुख के लिए, लोक पर अनुकम्पा करने के लिए, देव-मनुष्यों के अर्थ, हित और सुख के लिए भगवान् कल्प भर ठहरें। सुगत कल्प भर ठहरें।" यह भी आनन्द का प्रमाद था और इसके लिए भी उन्हें दुष्कृत की देशना करनी पड़ी।

---

१. चुल्लवग्ग ११, १-२ पृष्ठ ५४४-५४५।

२. महापरिनिव्वान सुत्त, पृष्ठ १६०।

३. चुल्लवग्ग ११, ३, पृष्ठ ५४५।

४. महापरिनिव्वानसुत्त, पृष्ठ ६६।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

(५) भगवान् बुद्ध स्त्रियों को प्रव्रज्या देने के पक्ष में नहीं थे। महाप्रजापति गौतमी के आग्रह करने पर भी उन्होंने इनकार कर दिया था। किन्तु बहुत-सी महिलाओं के साथ वह कपिलवस्तु से वैशाली गयीं और आनन्द से अपनी प्रव्रज्या में सहायता करने के लिए निवेदन किया। तब आनन्द ने भगवान् के पास जाकर निवेदन किया—"भन्ते! महाप्रजापति गौतमी फूले पैरों, धूल भरे शरीर से, दुःखी, दुर्मना, अश्रुमुखी रोती हुई द्वारकोष्ठक के बाहर खड़ी है कि उसे भी बुद्ध धर्म में प्रव्रज्या मिले[1]।"

भगवान् के पुनः इनकार करने पर और आनन्द के यह कहने पर कि वह आपकी मौसी हैं, आपकी माता के मरने पर उन्होंने ही आपको दूध पिलाया था। वह आपकी अभिभाविका, पोषिका और क्षीर-दायिका है। उन्हें प्रव्रज्या अवश्य मिले।" तब आठ बातों की शर्त स्वीकार करा कर भगवान् ने महाप्रजापति गौतमी को भिक्षुणी बनाया तथा यह भी घोषणा की कि स्त्रियों की प्रव्रज्या से बुद्धशासन की आयु घट गयी[2]।

आनन्द का यह भी प्रमाद था कि उन्होंने स्त्रियों की प्रव्रज्या के लिए उत्सुकता पैदा की और इस दुष्कृत के लिए भी उन्हें देशना करनी पड़ी। इस प्रकार आनन्द के ये पाँच प्रमाद थे, जिनके लिए संगीतिकारक भिक्षुओं ने उन्हें दुष्कृत का अपराधी ठहराया और उन्हें दुष्कृत की देशना करनी पड़ी।

इसके अतिरिक्त छन्दक को ब्रह्मदण्ड देने का भी भार आनन्द पर ही डाला गया। महापरिनिर्वाण के समय भगवान् ने कहा था कि आनन्द मेरे न रहने पर छन्दक भिक्षु को ब्रह्मदण्ड देना। तब उन्होंने पूछा था कि ब्रह्मदण्ड क्या है? भगवान् ने कहा था कि छन्दक भिक्षु जो चाहे सो बोले, किन्तु भिक्षुओं को उससे न बोलना चाहिए और न अनुशासन करना चाहिए[3]।

छन्दक भिक्षु, गृहस्थकाल में सिद्धार्थ गौतम का सारथि था और वह बड़ा कटुभाषी था। उस समय वह कौशाम्बी में विहार कर रहा था। अतः आनन्द ५०० भिक्षुओं के साथ नौका द्वारा कौशाम्बी गये। जब उदयन नरेश के रनिवास को ज्ञात हुआ तो वे सब आनन्द के दर्शनार्थ गयीं और उन्होंने आयुष्मान् आनन्द के उपदेश को सुनकर ५०० चादरें उन्हें प्रदान कीं। आयुष्मान् आनन्द ने कौशाम्बी के घोषिताराम में छन्दक को ब्रह्मदण्ड देने की घोषणा की। छन्दक

---

१. अंगुत्तरनिकाय ८, २, १, १ तथा चुल्लवग्ग ११।
२. अंगुत्तरनिकाय ८, २, १, १।
३. महापरिनिब्बान सुत्त, पृष्ठ १७०।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

ने कहा—"भन्ते आनन्द ! मैं तो इतने से मारा गया।" वह वहीं मूर्छित होकर गिर पड़ा किन्तु अचिर काल में ही उसने प्रयत्न कर आत्मसंयमी हो, ज्ञान का साक्षात्कार कर लिया और अर्हतों में से एक हो गया। अर्हत्व का साक्षात्कार करते ही उसके ऊपर से ब्रह्मदण्ड हट गया[१]।

आयुष्मान् पुराण द्वारा संगीति-पाठ का बहिष्कार

प्रथम संगीति के समय आयुष्मान् पुराण दक्षिणागिरि में विचरण कर रहे थे क्योंकि संगीति में भाग न लेने वाले सभी भिक्षुओं को राजगृह से बाहर चले जाने का निर्देश था। संगीति के समाप्त हो जाने पर आयुष्मान् पुराण राजगृह के कलन्दक निवाय के वेणुवन में गये और स्थविर भिक्षुओं से मिले। कुशल-मंगल पूछने के बाद भिक्षुओं ने आयुष्मान् पुराण से कहा—"आवुस पुराण, स्थविरों ने धर्म और विनय का संगायन किया है। आओ, तुम भी संगीति स्वीकार करो।"

'आवुस ! स्थविरों ने धर्म और विनय को सुन्दर ढंग से संगायन किया है तो भी जैसा मैंने भगवान् के मुख से सुना है, मुख से ग्रहण किया है, वैसा ही मैं धारण करूँगा।"

इस प्रकार आयुष्मान् पुराण ने संगीतिपाठ का बहिष्कार कर दिया, जो भिक्षुनिकायों के सृजनात्मक इतिहास में प्रथम चरण ज्ञेय है।

नये निकाय का प्रादुर्भाव

यद्यपि दीपवंस और महावंस से हम जानते हैं कि तथागत के परिनिर्वाण के १६० वर्षों तक एक ही स्थविरवाद निकाय के रूप में रहा[२]। किन्तु ऐतिहासिक दृष्टि से यह सर्वांशतः यथार्थ नहीं है। द्वितीय संगीति के विवरण में हम देखेंगे कि दस बड़ी बातें विनयनियमों के प्रतिकूल भिक्षुसंघ में आ गयी थीं और भिक्षु तथागत द्वारा बतलाये गये कतिपय शिक्षापदों का उल्लंघन करने लगे थे। यह कोई १-२ वर्ष की बात नहीं थी। भगवान् बुद्ध के परिनिर्वाण के पश्चात्, शास्ता के अभाव में, निकायों के प्रति शिथिलता का आना स्वाभाविक था। आयुष्मान् पुराण मात्र का नामोल्लेख विनयपिटक में हुआ है और हम यह जानते हैं कि वे संगीति की कार्यवाही और संकलित बुद्ध-वचनों को उस रूप में मानने के लिए तैयार नहीं थे और सम्भव है कि

१. चुल्लवग्ग ११, ४, २, पृष्ठ ५४६-५४७।
२. महावंस ५, २ पृष्ठ १९।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

इसी प्रकार के विचार वाले अन्य भी बहुत से भिक्षु रहे हों, जो प्रथम संगीति में सम्मिलित नहीं किये गये थे और यहीं से एक प्रकार से निकायों का जन्म अथवा विकास प्रारम्भ होता है। यद्यपि उनका स्पष्टीकरण अथवा खुल्लमखुल्ला सम्मुखीकरण भगवान् बुद्ध के परिनिर्वाण के १०० वर्षों के पश्चात् कालाशोक (=नन्दिवर्धन[1]) के समय में हुआ जब कि कौशाम्बी के भिक्षु यश काकण्डक पुत्र वैशाली गये थे और उन्होंने विनय-विरोधी कार्यों के प्रति खुला विद्रोह कर दिया था और यही विद्रोह द्वितीय संगीति का कारण बना था, जिसका हम आगे विस्तारपूर्वक वर्णन करेंगे।

१. भारतीय इतिहास की रूपरेखा, भाग २, जयचन्द्र विद्यालंकार।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

चतुर्थ अध्याय

बौद्ध-निकायों में पारस्परिक मतभेद

भिक्षुओं में विनय के प्रति शिथिलता

भगवान् बुद्ध ने कहा था कि जब तक भिक्षु शिक्षापदों का उल्लंघन नहीं करेंगे और उनका पालन करते रहेंगे, तब तक भिक्षुओं की उन्नति ही होगी, अवनति[1] नहीं होगी और भिक्षु भी ऐसे थे जो क्रकचोपम[2] शिक्षापदों का पालन करते थे[3]। वे प्रति अमावस्या और पूर्णिमा को प्रातिमोक्ष का पाठ करते थे और अपनी आपत्तियों से उठने का प्रयत्न करते थे अर्थात् ऐसी प्रतिज्ञा करते थे कि भविष्य में मैं इन दोषों को पुनः करने का प्रयत्न नहीं करूँगा[4]। वे जीवन के लिए भी नियमों का उल्लंघन करना पाप समझते थे[5]। जैसा कि हमने पहले देखा है कि भगवान् के जीवन-काल में भिक्षुओं में शिक्षापदों के पालन के प्रति अद्भुत उत्साह था। भगवान् के इस आदेश पर भी कि 'क्षुद्रानुक्षुद्रक शिक्षापदों को इच्छानुसार छोड़ देना', उन्होंने किसी भी शिक्षापद को छोड़ना उचित नहीं समझा और न किसी शिक्षापद को क्षुद्रानुक्षुद्रक माना। यह उनकी धर्म के प्रति प्रगाढ़ आस्था और शिक्षापदों के प्रति अचल श्रद्धा का द्योतक है। भगवान् बुद्ध के महापरिनिर्वाण के पश्चात् कुछ वर्षों तक उनमें यह दृढ़ता बनी रही, किन्तु अब उनके शास्ता केवल धर्म और विनय रह गये थे[6]। जीवमान शास्ता के चले जाने के पश्चात् उनके प्रति भिक्षुओं में प्रगाढ़ श्रद्धा, सम्मान और भक्ति होते हुए भी उनका संरक्षण उठ चुका था। इस बात को भिक्षु भी भलीभाँति जानते थे और कोई भी भिक्षु ऐसा नहीं था जो संघ का नेता बन सकता अथवा संघ का प्रतिशरण होता[7]। अतः

१. महापरिनिब्बानसुत्तं, पृष्ठ १२।

२. आरे की भाँति।

३. मज्झिमनिकाय १, ३, १।

४. वही, ३, १, ८।

५. चरियापिटक २, ७, ९ (भूरिदत्तचरियं)।

६. महापरिनिब्बानसुत्तं २, ३।

७. मज्झिमनिकाय ३, १, ८।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

भिक्षुओं में और ऐसे भिक्षुओ में, जो ज्ञानप्राप्त नहीं थे, शिक्षापदों के प्रति शिथिलता आना स्वाभाविक था। प्रथम संगीति के उपरान्त भिक्षुओं में एक नये विचार-प्रवाह का जन्म हो चुका था। कुछ भिक्षु भगवान् के मुख से सुनी हुई बातों में विश्वास करने वाले थे और उन्हें ही वास्तविक धर्म मानते थे और बहुसंख्यक भिक्षु संगीति द्वारा संकलित बुद्ध-वचनों को ही आदर्श बुद्धवाणी के रूप में ग्रहण करते थे। धीरे-धीरे संघ में शिक्षापदों के प्रति आस्था होते हुए भी शैथिल्य-भाव जागृत हुआ और १०० वर्ष बीतते-बीतते अनेक प्रकार की शिथिलताएँ दृष्टिगोचर होने लगीं। विनयपिटक, दीपवंस, महावंस तथा अट्ठकथा ग्रन्थों से हम जानते हैं कि प्रथम संगीति के पश्चात् एक शताब्दी के पूर्ण होते ही वैशाली के वज्जिपुत्तक भिक्षुओं में अनेक विनय-विरोधी बातें आ गयी थीं और धीरे-धीरे उनमें वृद्धि होती जा रही थी। इसे हम लोक-धर्म का एक नियत नियम भी कह सकते हैं, क्योंकि इस अनित्य एवं अशाश्वत संसार में कोई भी परम्परा सदा एक समान अटूट नहीं बनी रह सकती और इस शाश्वत नियम का प्रभाव भिक्षु-संघ पर भी पड़ना स्वाभाविक था और इसी के अनुरूप वज्जिपुत्तक भिक्षुओं में कुछ विनय-विरोधी बातें आ गयीं।

दस विनय-विरोधी आचरण

वैशाली के वज्जिपुत्तक भिक्षुओं में दस विनय-विरोधी बातों का आचरण होने लगा था। यद्यपि अन्य भी छोटी-मोटी बातें रही होंगी, किन्तु विननपिटक में दस बातों का ही विवरण मिलता है। ये दस बातें थीं—

(१) शृङ्गिलवण कल्प—सींग में नमक रखकर पास रखा जा सकता है कि जहाँ अलोना होगा, लेकर खायेंगे।

(२) द्वयंगुल कल्प—दोपहर में दो अंगुल छाया को बिताकर भी विकाल में भोजन किय जा सकता है।

(३) ग्रामान्तर कल्प—भोजन कर चुकने पर, छक लेने पर ग्राम के भीतर भोजन करने जाया जा सकता है।

(४) आवास कल्प—एक सीमा के बहुत से आवासों में उपोसथ किया जा सकता है।

(५) अनुमति कल्प—एक वर्ग के संघ का विनय कर्म करना, यह विचार करके कि जो भिक्षु पीछे आयेंगे, उनको स्वीकृति दे देंगे।

(६) आचीर्ण कल्प—किसी बात का इसलिए आचरण करना कि यह मेरे आचार्य ने आचरण किया है, यह मेरे उपाध्याय ने आचरण किया है।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

(७) अमथित कल्प—जो दूध, दूधपन को छोड़ चुका है और दहीपन को नही प्राप्त हुआ है, उसे भोजन कर चुकने पर, छक लेने पर अधिक पिया जा सकता है।

(८) जलोगियान—जो सुरा अभी चुवायी नहीं गयी है, जो सुरा सुरापन को प्राप्त नहीं हुई है, उसे पिया जा सकता है।

(९) अदसक निणीदन—बिना किनारी का आसन उपयोग में लाया जा सकता है।

(१०) जातरूप रजत—सोना-चाँदी को ग्रहण किया जा सकता है[१]।

इस प्रकार वैशाली के वज्जिपुत्तक भिक्षु इन दस वस्तुओं का प्रचार कर रहे थे तथा उनके आचरण में ये दस विनयविरोधी बातें स्पष्ट रूप से आ गयी थीं।

यश काकण्डपुत्र द्वारा प्रतिरोध

जिस समय वैशाली के भिक्षुओं में उक्त दस प्रकार की विनय-विरोधी बातें आ गयी थीं और वे उनका प्रचार एवं पालन कर रहे थे, उसी समय कौशाम्बी के ज्ञानप्राप्त आयुष्मान् यश काकण्डपुत्त चारिका करते हुए वैशाली पहुँचे। वे वहाँ महावन के कूटागार-शाला में ठहरे। उस समय वैशाली के वज्जिपुत्तक भिक्षु उपोसथ के दिन कांसे की थाली को पानी से भरकर भिक्षुसंघ के बीच रखकर आने-जाने वाले उपासकों से कहते थे "आवुसो! संघ को कार्षापण दो, आधा कार्षापण दो, चौथाई कार्षापण दो, मासा भी दो, संघ के परिष्कार के काम आयेगा।" इसे सुन आयुष्मान् यश को बड़ा अद्भुत लगा। उन्होंने अपने ही सामने इस अधर्म को देखकर तुरन्त उपासकों से कहा "आवुसो, संघ को कार्षापण मत दो। शाक्यपुत्रीय श्रमणों को सोना या चाँदी विहित नहीं है। यह उसको न तो उपभोग कर सकते हैं और न उसे स्वीकार कर सकते हैं। ये उसे त्यागे हुए हैं।" आयुष्मान् यश के ऐसा कहने पर भी उपासकों ने संघ को कार्षापण दिये ही। जितना कार्षापण मिला, भिक्षुओं की गणना के अनुसार उसका बराबर-बराबर बँटवारा कर दिया गया। एक हिस्सा यश को भी मिला। तब यश ने यह कहकर लेने से इनकार कर दिया—"आवुसो! इस कार्षापण में मेरा हिस्सा नहीं, मैं कार्षापण का उपभोग नहीं कर सकता।" तब वैशाली के वज्जिपुत्तक भिक्षुओं ने यश को प्रतिसारणीय[२] कर्म का दोषी

१. विनयपिटक १२, २, २, पृष्ठ ५५२।

२. विनयपिटक, पृष्ठ ३१४।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

ठहराया और एक अनुगामी भिक्षु से कहा—"आयुष्मानो, मैं श्रद्धालु प्रसन्न उपासकों की निन्दा करता हूँ, फटकारता हूँ, अप्रसन्न करता हूँ, जो अधर्म को अधर्म और धर्म को धर्म कहता हूँ। अविनय को अविनय कहता हूँ और विनय को विनय कहता हूँ। आवुसो, एक समय भगवान् श्रावस्ती में अनाथ पिण्डिक के जेतवनाराम में विहार करते थे, वहाँ आवुसो, भगवान् ने भिक्षुओं को सम्बोधित किया। भिक्षुओं! चन्द्र-सूर्य के चार उपक्लेश (मल) हैं, जिन से उपक्लिष्ट (मलिन) होने पर चन्द्र-सूर्य न तपते हैं, न भासते, नप्रकाशित होते हैं। कौन से चार? भिक्षुओं, बादल, कुहरा, धूमकण और राहु असुरेन्द्र (ग्रहण)। इसी प्रकार भिक्षुओं! श्रमण ब्राह्मण के भी चार उपक्लेश हैं। कौन से चार? भिक्षुओं! (१) कोई-कोई श्रमण ब्राह्मण सुरा पीते हैं। मेरय (कच्ची शराब) पीने में लगे हैं। (२) कोई-कोई श्रमण ब्राह्मण मैथुनधर्म का सेवन करते हैं। (३) कोई-कोई श्रमण ब्राह्मण सोने-चांदी का उपभोग करते हैं और (४) कोई-कोई श्रमण ब्राह्मण मिथ्या आजीविका करते हैं। वे इन उपक्लेशों से उपक्लिष्ट होकर अन्धकार से घिरे, तृष्णा के दास हो बन्धन में बँधे, घोर करसी (आवागमन) को बढ़ाते हैं और आवागमन में पड़े रहते हैं[१]।

आगे उन्होंने कहा—'आवुओ, एक समय भगवान् राजगृह के कलकदक निवास के वेणुवन में विहार करते थे। उस समय राजदरबार में यह बात चल पड़ी। शाक्यपुत्रीय श्रमण सोना-चांदी का उपभोग करते हैं, उसे स्वीकार करते हैं। उस समय मणिचूणक ग्रामणी उस परिषद् में बैठा था। उसने परिषद् से कहा "मत, आर्यो! ऐसा मत कहो! शाक्यपुत्रीय श्रमण को सोना-चाँदी विहित नहीं है। वे सोना-चांदी छोड़े हुए हैं। वे वहाँ से भगवान् के पास गये और उन्होंने इसकी चर्चा भगवान् से की। भगवान् ने उसकी प्रशंसा की और कहा कि मैं किसी भी प्रकार से भिक्षुओं को सोना-चाँदी के व्यवहार की अनुज्ञा नहीं देता। तब वैशाली के भिक्षुओं ने आयुष्मान् यश की बातों को समझ लिया और उनका बड़ा सम्मान-सत्कार किया।

जब वज्जिपुत्तक भिक्षुओं को पता चला तब उन्होंने यश को उत्क्षेपणीय[२] दण्ड देना चाहा। जब वे उत्क्षेपणीय कर्म करने के लिए एकत्रित हुए, तब आयुष्मान् यश वहाँ से अदृश्य होकर कौशाम्बी चले गये। इस प्रकार वैशाली

१. विनयपिटक, पृष्ठ ५४९।

२. वही, पृष्ठ ३१४।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

के भिक्षुओं में उपासकों के साथ भेद उत्पन्न हो गया और उपासकों में यह प्रकट हो गया कि वैशाली के भिक्षु विनय-विरोधी कार्य कर रहे हैं।

भिक्षुओं का दो पक्षों में विभाजन

आयुष्मान् यश ने कौशाम्बी पहुँच कर अवन्ति दक्षिणापथ और पश्चिम-देशीय भिक्षुओं के पास दूत भेजा कि आप लोग आयें। सामने जो अधर्म प्रकट हो रहा है और धर्म को हटाया जा रहा है, इस विवाद को दूर करें। स्वयं आयुष्मान् यश आयुष्मान् सम्भूत साणवासी के पास गये, जो अहोगंग पर्वत[1] पर रहते थे। उन्होंने उनसे वैशाली की सारी बातें बतायीं और इस झगड़े को दूर करने की प्रार्थना की। उस समय पश्चिमदेशीय साठ भिक्षु और अवन्ति दक्षिणापथ के अट्ठासी भिक्षु अहोगंग पर्वत पर एकत्रित हुए। उन्होंने विचार किया कि सौरेय्य[2]-निवासी आयुष्मान् रेवत् को पक्ष में लाना चाहिए। तभी यह झगड़ा दूर हो सकता है। उस समय आयुष्मान् रेवत् सौरेय्य से शंकास्य[3], फिर कान्यकुब्ज[4], वहाँ से उदुम्बर, फिर अग्गलपुर और वहाँ से सहजाति गये[5]। सभी भिक्षु सहजाति में आष्युष्मान् रेवत् से आकर मिले और उन्हें वैशाली के वज्जिपुत्तक भिक्षुओं की दस विनय-विरोधी बातों को बतला कर इस झगड़े को शान्त करने के लिए प्रार्थना की।

उधर वैशाली के भिक्षुओं ने भी, जब यह सुना कि आयुष्मान् यश इस झगड़े में अपना पक्ष दृढ़ कर रहे हैं, तब उन्होंने भी आयुष्मान् रेवत् को मिलाने के लिए नौका से सहजाति की ओर प्रस्थान किया। वे आयुष्मात् रेवत् के पास गये और उन्होंनेउनके शिष्य आयुष्मान् उत्तर को चीवर आदि देकर अपनी ओर मिलाया। जब उत्तर ने आयुष्मान् रेवत् को वैशाली के भिक्षुओं की ओर करना चाहा तब उन्होंने उत्तर का बहुत डाँटा और अपने पास से हटा दिया और वैशालीवालों ने उत्तर को ही अपना नेता बनाया। वहाँ से सभी चलकर वैशाली पहुँचे। आयुष्मान् रेवत् आयुष्मान् आनन्द के शिष्य सर्वकामी के

---

१. हरिद्वार के पास कोई पर्वत।

२. सारों, जिला एटा।

३. संकिसा, जिला फर्रूखाबाद।

४. कन्नौज, जिला फर्रूखाबाद।

५. मीटा, जिला इलाहाबाद, किन्तु डा० भिक्षु धर्मरक्षित शृंगवेरपुर को सहजाति मानते हैं।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

पास ठहरे जो १२० वर्षीय वृद्ध थे। उन्होंने इस विवाद की चर्चा की और दोनों ने निर्णय किया कि वैशाली के भिक्षु अधर्मवादी हैं।

दोनों ओर से पक्षसंग्रह

इस प्रकार पश्चिम के सभी भिक्षु तथा आयुष्मान् सर्वकामी, आयुष्मान् रेवत् और आयुष्मान् साणवासी एक पक्ष में हो गये और आयुष्मान् उत्तर के साथ वज्जिपुत्तक भिक्षु दूसरे पक्ष में। धर्म-अधर्म के विचार के लिए उद्वाहिका द्वारा भिक्षुओं का चुनाव हुआ। चार पूर्वी देशों के भिक्षु लिए गये और चार पश्चिमी देशों के। पूर्वी देशों के भिक्षुओं में आयुष्मान् सर्वकामी, आयुष्मान् साढ़, आयुष्मान् कुब्जशोभित (खुज्जसोभित) और आयुष्मान् वर्षाभग्रामिक और पश्चिमी-देशीय भिक्षुओं में आयुष्मान् रेवत्, आयुष्मान् सम्भूत साणवासी, आयुष्मान् यश काकण्डपुत्र और सुमन। इसे इस प्रकार समझना चाहिए—

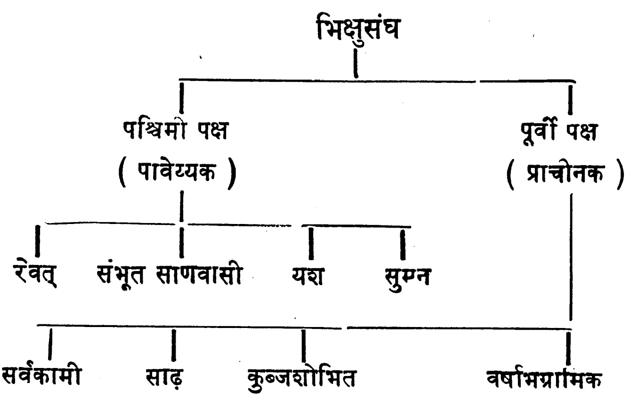

आयुष्मान् अजित जो दस वर्षों से संघ के प्रातिमोक्ष का उद्देश्य (=पाठ) करते थे, वे आसन बिछाने के लिए नियुक्त किये गये और भिक्षु वैशाली के घोषरहित (शब्दरहित) बालुकाराम में विवाद को शान्त करने के लिए एकत्र हुए[1]। एक प्रकार से देखने में यह विवाद पूर्व और पश्चिम के भिक्षुसंघ का था और उस समय के सभी प्रमुख भिक्षु उसमें सम्मिलित हुए थे तथा समस्त विवाद उन ज्येष्ठ भिक्षुओं के समक्ष प्रस्तुत किये गये थे। उन्होंने इसका निराकरण द्वितीय संगीति की कार्यवाही के रूप में किया।

---

१. विनयपिटक, पृष्ठ ५५६।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

वैशाली में द्वितीय संगीति

भिक्षुसंघ की यह कार्यवाही भगवान् बुद्ध के महापरिनिर्वाण के १०० वर्ष के पश्चात् सम्पन्न हुई थी, जो द्वितीय संगीति के नाम से प्रसिद्ध है। जैसा कि हमने ऊपर देखा है, यह धर्मसंगीति वज्जिपुत्तक भिक्षुओं के विनय-सम्बन्धी नियमों के उल्लघन एवं परिवर्तन के कारण हुई थी, जिसकी संरक्षकता तत्कालीन मगधनरेश कालाशोक (=नन्दिवर्धन) ने की थी और वैशाली के बालुकाराम महाविहार में महास्थविर रेवत् की अध्यक्षता में ७०० भिक्षुओं द्वारा सम्पन्न हुई थी। इसीलिए इस संगीति को सप्तशतिका भी कहते हैं।[१] इस संगीति में आयुष्मान् रेवत् ने संघ के बीच आयुष्मान् सर्वकामी से उक्त दस बातों को पूछा था और सर्वकामी ने उनकी व्याख्या की थी। संघ ने निर्णय किया कि वज्जिपुत्तक भिक्षुओं ने जिन दस बातों का प्रचार एवं आचरण करना प्रारम्भ किया है, वे धर्म-विरुद्ध, विनय-विरुद्ध तथा भगवान् बुद्ध के शासन के बाहर की थीं। अन्त में यह घोषणा की गयी कि यह विवाद निहत हो गया। शान्त, उपशान्त हो गया[२]। महावंस के वर्णन के अनुसार द्वितीय संगीति के समय १२ लाख भिक्षु उपस्थित थे[३]। रेवत् स्थविर ने संगीति के लिए सात सौ अर्हत् भिक्षुओं को चुना था। प्रथम संगीति की भाँति यह संगीति भी ८ मास में सम्पन्न हुई।

द्वितीय संगीति के वर्णन के क्रम में दीपवंस में कहा गया है कि यह संगीति वैशाली की कूटागारशाला में सम्पन्न हुई थी—

कूटागारसालायेव वेसालियं पुरूत्तमे।
अट्ठमासेहि निट्ठासि दुतियो सङ्गहो अयं[४]॥

किन्तु, विनयपिटक के सप्त-शतिका-स्कन्ध से यह बात ठीक उतरती नहीं है। अतः दीपवंस में वर्णित कूटागारशाला की बात ग्राह्य नहीं है, क्योंकि विनयपिटक में बालुकाराम में ही संगीति के सम्पन्न होने का उल्लेख है[५]। महावंस में भी उसी के आधार पर वर्णन मिलता है[६]—

१. विनयपिटक, पृष्ठ ५४८, ५५८।
२. विनयपिटक, पृष्ठ ५५८, बुद्धचर्या, पृष्ठ ५२७।
३. महावंस, हिन्दी अनुवाद पृष्ठ १९-२०।
४. दीपवंस ५, ६८।
५. विनयपिटक, पृष्ठ ५२६।
६. महावंस, पृष्ठ १८।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

ते सब्बे बालिकारामे कालासोकेन रक्खिता।
रेवतथेर पामोक्खा अकरुं धम्मसङ्गहं॥
पुब्बे वत्तं तथा एव धम्मं पच्छा च भासितं।
आदाय निट्ठपेसुं तं एतं मासेहि अट्ठहि॥

दो निकायों का सृजन

वैशाली के भिक्षुओं का विवाद यद्यपि द्वितीय संगीति के रूप में शान्त कर दिया गया, किन्तु वह धीरे-धीरे विकट रूप धारण करने लगा। पहले हम देख आये हैं कि वैशाली के भिक्षुओं ने आयुष्मान् रेवत् के शिष्य उत्तर को अपने पक्ष में कर लिया था, जिसे आयुष्मान् रेवत् ने अपने पास से हटा दिया था[१]। वैशाली के भिक्षुओं ने मगधनरेश कालाशोक को भी अपने पक्ष में करने का प्रयत्न किया था। पहले तो वह उनके पक्ष में हो गया था किन्तु जब उसे यथार्थ बातें ज्ञात हुईं तो उसके पक्ष से हटकर उसने तटस्थता की नीति अपनाई। स्वयं को रेवत् स्थविर के पक्ष के भिक्षुओं के सम्मुख क्षमा माँगकर धर्म पक्ष की ओर बतलाया और कहा कि आप जैसे चाहें वैसे बौद्ध धर्म की उन्नति करें। उन भिक्षुओं की रक्षा का प्रबन्ध कर सम्राट् अपने नगर को लौट गया[२]। उस नरेश कालाशोक ने द्वितीय संगीति में एकत्रित भिक्षुओं को अनेकानेक सुविधाएँ प्रदान कीं तथा इस बात का प्रयास किया कि संगीति सफलतापूर्वक सम्पन्न हो। महावंस के अनुसार यह संगीति कालाशोक के राज्यारोह के दसवें वर्ष में सम्पन्न हुई थी[३]। महावंस के अनुसार कालाशोक अजातशत्रु की छठीं पीढ़ी में हुआ था, किन्तु पुराणों के अनुसार वह अजातशत्रु की चौथी पीढ़ी में हुआ था[४]।

द्वितीय संगीति के समय उत्पन्न मतभेद से भिक्षुसंघ में इतना विवाद उत्पन्न हो गया कि वह पूर्ववत् संगठित न रह सका। इस संगीति के उपरान्त दस हजार भिक्षुओं का निष्कासन स्थविरवादी परम्परागत संघ से किया गया[५]। दीपवंस में यह भी आया है कि जो दस हजार भिक्षु संघ से बहिष्कृत किये गये, उन्होंने अलग होकर अपना एक संघ बनाया और उसका नाम "महासांघिक"

१. चुल्लवग्ग १२, २, २।
२. महावंस हिन्दी अनुवाद, पृष्ठ १९।
३. वही पृष्ठ १५।
४. महावंस, चौथा परिच्छेद, पृष्ठ १-७।
५. वही, चौथा परिच्छेद, पृष्ठ १९।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

रखा। उन्होंने मूल त्रिपिटक को तोड़कर दूसरा संग्रह बनाया। सूत्र और विनय में से अनुकूल अंशों को ही ग्रहण किया। नाम, वेश, परिष्कार आदि में भी परिवर्तन कर लिया[१]। इस प्रकार अब दो निकाय—(१) स्थविरवाद और (२) महासांघिक बन गये। तात्पर्य यह है कि भारत का भिक्षुनिकाय इन दो प्रमुख निकायों में विभक्त हो गया। यद्यपि द्वितीय संगीति भिक्षुओं के आपसी विवाद को शान्त करने के लिए हुई थी, किन्तु इसका प्रभाव एकदम विपरीत रहा। विवाद शान्त होने के स्थान पर, भिक्षुसंघ में एक ऐसी क्रान्ति हुई जिसे रोकना असम्भव था और क्रमशः भिक्षुसंघ अनेक निकायों तथा उपनिकायों में विभक्त होता चला गया।

दोनों की अलग-अलग संगीतियाँ

महायान संस्कृत-साहित्य के सूत्रों तथा पालि-ग्रन्थों में स्पष्ट है कि जिस समय वैशाली में स्थविरवादी ७०० भिक्षुओं द्वारा द्वितीय संगीति की कार्यवाही सम्पन्न हुई, ठीक उसके उपरान्त ही संघ से वहिष्कृत भिक्षुओं में से एक हजार भिक्षुओं ने कौशाम्बी में एकत्र होकर अपनी संगीति का सम्पादन किया। निष्कर्ष यह है कि स्थविरवादी भिक्षुओं की संगीति वैशाली के बालुकाराम में सम्पन्न हुई और महासांघिक भिक्षुओं की द्वितीय संगीति कौशाम्बी के घोषिताराम में[२]।

यद्यपि स्थविरवादी ग्रन्थों में महासांघिकों के विरुद्ध बहुत-सी बातें कही गयी हैं। उन्हें विनय-विरोधी, संघ-भेदक आदि कहते हुए उनके ग्रन्थों और वेश-भूषा आदि की भी कटु आलोचना की गयी, किन्तु वे भी बौद्ध भिक्षु थे। उन्होंने भी बौद्ध धर्म के ही आचरण को अपनाया था। उनका भी परम लक्ष्य निर्वाण को प्राप्त करना था और उनके भी परम शास्ता सम्यक् सम्बुद्ध भगवान् गौतम बुद्ध ही थे। स्थविरवादियों ने उनके लिए हेय-भावना-द्योतक शब्दों का व्यवहार किया और कहा—"भिक्षुसंघ से निष्कासित, पापी, वज्जिपुत्त भिक्षु दूसरे पक्ष को ग्रहण करके अधर्मवादी हो गये। उन्होंने १०,००० संख्या में एकत्र होकर दूसरी संगीति की, जिसे महासंगीति कहते हैं। उन्होंने शासन को विलोम कर दिया। मूल संग्रह को तोड़कर दूसरा संग्रह बनाया, अन्यत्र संकलित सूत्र को अन्यत्र कर डाला, अर्थ और धर्म को भी तोड़ डाला, ऐसे ही विनय और पाँच निकायों को भी। पर्याय और निष्पर्याय देशना को न

१. दीपवंस ५, ७७-७८।

२. बौद्धदर्शन तथा अन्य भारतीयदर्शन, प्रथम भाग, पृष्ठ ५४९।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

जानकर दूसरे अर्थ में रखा। उन्होंने अर्थ का अनर्थ कर दिया। विनय और सूत्र के बहुत से भाग को छोड़कर अपने योग्य बना लिया। परिवार, अर्थोद्धार, अभिधम्म के छः प्रकरण, पटिसम्भिदा, निद्देस, जातक के एक भाग को छोड़कर दूसरे ग्रन्थों का निर्माण किया। नाम, रूप, परिष्कार, वेश-भूषा आदि स्वाभाविक स्वरूप को छोड़कर अन्य प्रकार का कर डाला[१]।

इस प्रकार इस समय भारत का भिक्षुसंघ स्थविर तथा महासांघिक इन दो निकायों में विभक्त हो गया। पीछे चलकर महासांघिकों ने अपने को "महायानी" घोषित किया और स्थविरवादियों को "हीनयानी" घोषित किया। उन्होंने यह भी कहा कि सभी बुद्ध महायानी होते हैं। वे हीनयान का अनुसरण नहीं करते[२]। इस प्रकार स्थविरवादी और महासांघिकों की पारस्परिक प्रतिस्पर्धा प्रारम्भ हो गयी और इसका क्रम आगे भी बना रहा।

१. दीपवंस, पाँचवाँ परिच्छेद, गाथा संख्या ६९ से ७८ तक, पृ. २४-२५।

२. सद्धर्मपुण्डरीकसूत्रम् २, ५५, पृष्ठ ३१।

"बौद्धस्य ज्ञानस्य प्रकाशनार्थं, लोके समुत्पद्यति लोकनाथः।
एकं हि कार्यं द्वितीयं न विद्यते, न हीनयानेन नयन्ति बुद्धाः॥"

Ac. Gunratnasuri MS　　Jin Gun Aradhak Trust

पञ्चम अध्याय

बौद्ध-निकायों का क्रमिक विकास

नये निकायों का प्रादुर्भाव

बुद्ध महापरिनिर्वाण की दूसरी शती में बौद्ध-धर्म के भिक्षु---स्थविरवादी तथा महासांघिक---दो प्रमुख निकायों में बँट गये थे। इनमें स्थविरवादी भिक्षु मूल परम्परागत बौद्धधर्मानुयायी थे और महासांघिक द्वितीय संगीति के समय बहिष्कृत किये गये भिक्षु थे। कथावत्थु की अट्ठकथा, दीपवंस, महावंस आदि ग्रन्थों से हम जानते हैं कि बुद्ध महापरिनिर्वाण की तीसरी शती के प्रारम्भ में अर्थात् अशोक-काल में इन भिक्षुनिकायों की संख्या बढ़कर १८ हो गयी थी। स्थविरवाद भी स्थिर नहीं रह सका। उसमें भी मतभेद उत्पन्न हुए और वह भी धीरे-धीरे अनेक निकायों में विभक्त हो गया। ऐसे ही महासांघिकों के भी अनेक उपनिकाय बन गये। इन आचार्यवादों ने छोटे-मोटे दार्शनिक आचरणसम्बन्धी मतभेदों को लेकर अपने पक्ष को दृढ़ किया। हम आगे विस्तारपूर्वक इनके सिद्धान्तों और मतों पर विचार करेंगे। यद्यपि ये भिक्षु भिन्न-भिन्न निकायों में विभक्त हो गये थे, फिर भी इनका लक्ष्य एक था। पूजा, अर्चना, समाधि-भावना, शिक्षापदादि बातों में किञ्चित् विभेदों के कारण ये भिक्षु निकाय भिन्न थे, किन्तु कभी इनमें पारस्परिक संघर्ष नहीं हुआ और न तो इनके कारण वर्गसंघर्ष या धार्मिक वितण्डावाद ही उत्पन्न हुआ। इनकी अपनी-अपनी मान्यताएँ थीं और उनमें भी बहुत कम विषमताएँ थीं। सभी चार आर्य सत्य और आर्य अष्टांगिक मार्ग (=मध्यम मार्ग) को ही मानते थे और उनका लक्ष्य श्रावक होते हुए ही ज्ञान प्राप्त करने का था अथवा तीस पारमिताओं को पूर्ण कर सम्यक्-सम्बुद्धत्व को प्राप्त करने का। किन्तु उनके लक्ष्य में अथवा प्राप्तव्य में कोई भेद नहीं था। दोनों का निर्वाण समान था, चाहे उनके शास्ता भौतिक लोक में आये हों चाहे स्वर्ग में ही उत्पन्न हुए हों और उनके निर्मित काय ने ही क्यों न उपदेश दिया हो, उस शास्ता के प्रति उनमें समान श्रद्धा थी।

द्वितीय संगीति में शिक्षापदों के उल्लंघन को रोकने के लिए किये गये प्रयासों का परिणाम यह हुआ कि मूल बुद्ध-वचनों के संशोधन, पारायण आदि

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

कार्य तो सम्पन्न हो गये। कुछ भिक्षुओं में एकता, उत्साह, दृढ़ता और सौहार्द भी उत्पन्न हो गये। किन्तु समय की माँग द्वारा जनित शिक्षापदों का व्यतिक्रम रोका नहीं जा सका। ये शिक्षापद के उल्लंघन कोई बहुत बड़े धर्मसंकट के रूप में न थे फिर भी उसे भिक्षुओं ने महान् अधर्म समझा और उल्लंघनकारियों को पापी, अनाचारी शिक्षापदविहीन तक कह डाला। यह भी एक विस्मयजनक बात है कि स्थविरवादी भिक्षुओं द्वारा आयोजित संगीति वज्जिपुत्तक भिक्षुओं के गढ़ वैशाली के बालुकाराम में सम्पन्न हुई और इस संगीति के उत्प्रेरक पक्ष-संग्राहक आयुष्मान् यश काकण्डपुत्र की नगरी कौशाम्बी में इन आयुष्मानों द्वारा निष्कासित भिक्षुओं ने अपनी संगीति की और इस प्रकार एक दूसरे की नगरी में, एक दूसरे के वास-स्थान में एक दूसरे द्वारा अपनी संगीतियों का आयोजन किया गया था। यही प्रतिस्पर्धा की भावना, आगे भी बनी रही और दो प्रमुख निकायों से उद्भूत १८ निकायों का जन्म अशोक-काल तक हो चुका था। सम्भव है अन्य भी छोटे-मोटे निकाय उत्पन्न हुए हों, जिनका वर्तमान उपलब्ध साहित्य में कोई उल्लेख नहीं है, फिर भी यह केवल १८ निकाय ही उस समय विद्यमान थे, मान्य नहीं है। अवश्य ही इनकी संख्या इनसे अधिक रही होगी। हम आगे इस पर विचार करेंगे।

अट्ठारह भिक्षु-निकाय

महावंस के अनुसार महासांघिक भिक्षुओं से गोकुलिक और एकव्यवहारिक-निकायों का जन्म हुआ। गोकुलिकों से प्रज्ञप्तिवादी तथा बाहुलिक और उन्हीं से चैत्यवादी भी उत्पन्न हुए। इस प्रकार महासांघिकों सहित ये छः भिक्षुनिकाय बन गये।[1]

फिर स्थविरवाद में से महिंसासक और वज्जिपुत्तक (=वात्सीयपुत्रीय)—ये दो निकाय उत्पन्न हुए। बज्जिपुत्तक भिक्षुओं से धर्मोत्तरीय, भद्रयानिक, छन्नागारिक और सम्मितीय निकायों का जन्म हुआ। महिंसासकनिकाय से सर्वास्तिवाद और धर्मगुप्तिक—ये दो निकाय उत्पन्न हुए। सर्वास्तिवाद से काश्यपीय और फिर उससे सांक्रान्तिक और सूत्रवादी उत्पन्न हुए। स्थविरवाद के साथ यह सब बारह निकाय हुए। ऊपर कहे गये महासांघिकनिकाय के छः उपनिकाय तथा स्थविरवाद के बारह—सब मिला कर अट्ठारह निकाय हुए[2]। भगवान् बुद्ध के महापरिनिर्वाण के २१७ वर्षों के बीतते ही ये निकाय-भेद

१. महावंस ५, १-५।

२. वही, ५, ६-१०।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

१८ की संख्या में पहुँच चुके थे[1]। दीपवंस में इन १८ निकायों का विवरण प्रस्तुत करते हुए बड़े ही खेद के साथ यह निरूपण किया गया है कि स्थविरवाद एक उत्तम बरगद के महावृक्ष के समान था और ये निकाय-भेद उसमें विषकण्टक की भाँति लग गये। भगवान् बुद्ध के परिनिर्वाण की प्रथम शती में नहीं, प्रत्युत दूसरी शती के उपरान्त बुद्ध शासनमें ये १७ भेद पैदा हो गये। जो मूल (स्थविरवाद १८) के साथहोते हैं। भिन्न-भिन्न निकायों ने अपने नाम चिह्न, परिष्कार, आचरणीय बातों तथा स्वभाव धर्म को भी त्यागकर विभिन्न प्रकार का बना लिया[2]।

इन अट्ठारह निकायों का विशद वर्णन कथावत्थु की अट्ठकथा में आया हुआ है। इनके विवरण को इस प्रकार जानना चाहिए—

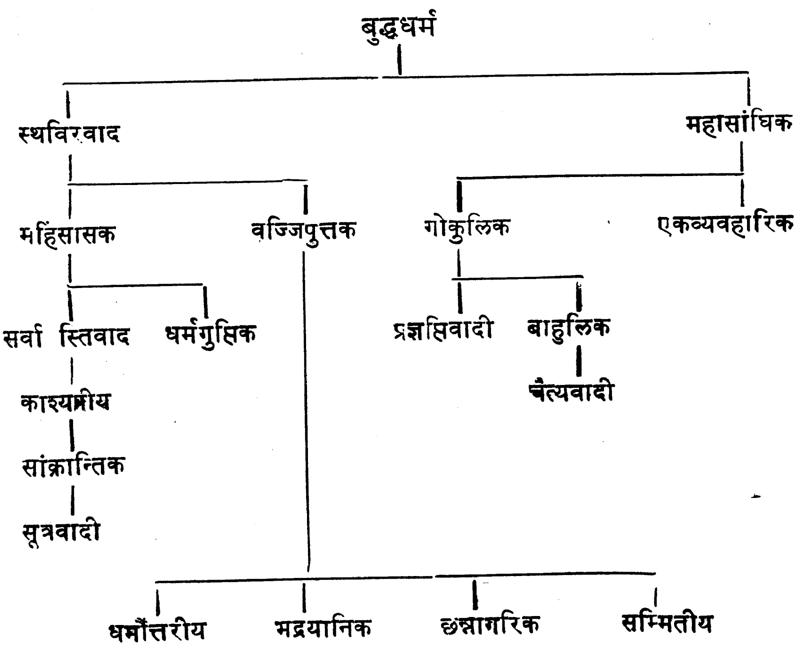

---

१. वही, ५-११।
"सत्तरसाऽपि दुतिये जाता वस्ससते इति।
अञ्ञा चरियवादा तु ततो ओरं अजायिसुं॥"

२. दीपवंस, पृष्ठ २६, गाथा सं० ८९-९२।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

भदन्त वसुमित्र द्वारा लिखित अष्टादशनिकाय नामक ग्रन्थ में इन निकायों की गणना इस प्रकार की गयी है[१]।

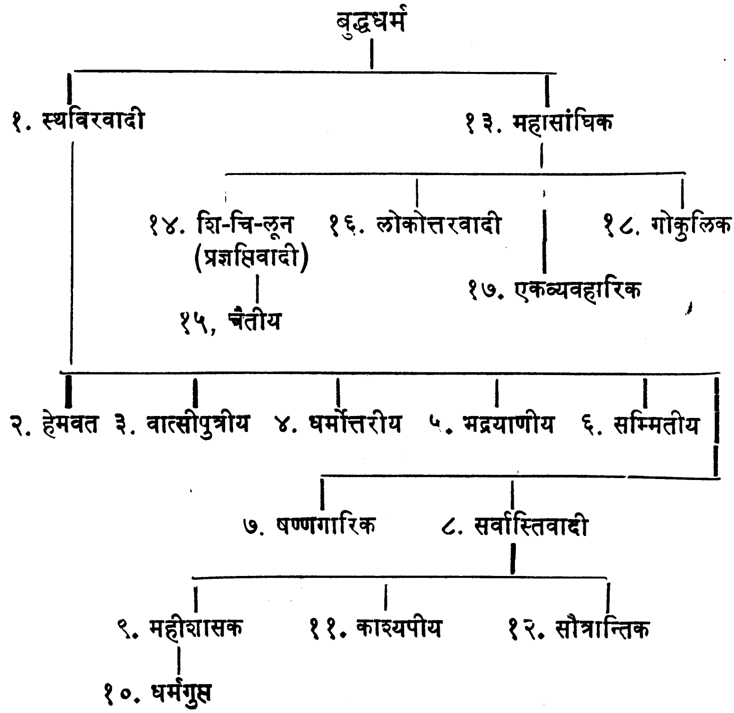

इन दोनों निकाय-भेदों में अन्तर है, किन्तु दोनों में निकायों की गणना समान है। ऐसा जान पड़ता है कि यह सभी निकाय एक समय विद्यमान थे और इनके अपने सिद्धान्त के प्रतिपादक ग्रन्थ भी थे। इनमें से अनेक निकायों के नाम सारनाथ, साँची, बुद्धगया, कालाभांजा, अजन्ता, कान्हेरी आदि स्थानों में अंकित पाये गये हैं[२]। केवल सारनाथ में ही वात्सीय पुत्रीय, सर्वास्तिवादी, सम्मितीय और महायान के नाम अंकित मिले हैं[२]।

पन्द्रहवीं शताब्दी में श्रीलंका के धर्मकीर्ति देवरक्षित जयबाहु[३] नाम से

---

१. विनयपिटक की भूमिका, पृ. २। २. पुरातत्व निबन्धावली, पृ. १२३।

२. सारनाथ का इतिहास, अध्याय १२, पृष्ठ १४१-१४२ और १५५।

३, निकाय संग्रह, पृष्ठ ३१।

तस्स सिस्सयुतो धीरो देवरक्खितनामको।
जयबाहूति नामेन विस्सतो लोकपूजितो॥

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

विभूषित संघराज द्वारा लिखित निकाय-संग्रह नामक सिंहली ग्रन्थ में उक्त निकायों का वर्णन देते हुए १७ निकाय-कथा के अन्तर्गत इन निकायों का क्रमशः नामोल्लेख है—

महासांघिक, गोकुलिक, एकव्यवहारिक, प्रज्ञप्तिवादी, बाहुलिक, वैतुल्यवादी, महिसासक, वज्जिपुत्तक, धर्मोत्तरिक, भद्रनिकाय, छन्नागारिक, सम्मितिक सर्वार्थवादी, धर्मगुप्तिक, कश्यपीय, सूत्रवादी[1] ।

इन निकायों के अन्तर्गत महावंस और दीपवंस में वर्णित चैत्यवादी तथा सांक्रान्तिक इन दो निकायों के नाम नहीं हैं। यहाँ वैतुल्यवादी का उल्लेख है जो महावंस और दीपवंस के अनुसार बहुत पीछे का निकाय है। ऐसे ही भद्रयानिक के स्थान पर भद्रनिकाय, सम्मितीय के स्थान पर सम्मितिक, धर्मोत्तरीय के स्थान पर धर्मोत्तरिक और सर्वास्तिवादी के स्थान पर सर्वार्थवादी नाम आये हुए हैं। सोलह निकायों का नाम देकर गणना सत्रह निकायों का उल्लेख है। यदि स्थविरवाद को भी गणना में सम्मिलित कर लें तो निकायों की संख्या सत्रह होती है, जब कि निकायों की कुल संख्या अट्ठारह थी जो स्थविरवाद[2] और महायान[3] दोनों सूत्रों से प्रमाणित है किन्तु शारिपुत्र परिपृच्छा-सूत्र में, जिसका ईस्वी सन् ३१७ से ४२० के भीतर चीनी भाषा में अनुवाद हुआ था, वर्णित निकाय-भेद कुछ भिन्न प्रकार से मिलता है और उससे यह ज्ञात होता है कि बुद्ध-परिनिर्वाण से दूसरी शताब्दी में महासांघिकनिकाय का जन्म हुआ था और उससे एकव्यवहारिक, लोकोत्तरवादी, कौक्कुलिक, बहुश्रुतिक एवं प्रज्ञप्तिवादी निकाय निकले थे। बुद्धाब्द की तीसरी शताब्दी में वात्सीय-पुत्रीय और सर्वास्तिवादी का प्रादुर्भाव हुआ था। वात्सीय-पुत्रीयों से धर्मोपक, भद्रयानिक, सम्मितीय एवं षण्णागारिक निकायों का जन्म हुआ था, सर्वास्तिवाद से महिंसासक, धर्मगुप्तिक और सुवर्षक निकायों का जन्म

धम्मकित्ती महाथेरो इति तन्नामभूसितो।
पत्वा यो सङ्०धराजन्तं सोमेसि जिनसासनं ।।
निकायसङ्०गहो एतं समासाय समासतो!
अकासि सो सदा सत्थुसासनस्साभिबुद्धिया ।।

१. निकायसंग्रह, पृष्ठ ७।

२. दीपवंस, पृष्ठ २५-२६, महावंस, पृष्ठ १९।

३. अष्टादसनिकाय, विनयपिटक की भूमिका, पृष्ठ २।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

हुआ था। ऐसे ही स्थविरवाद से ही काश्यपीय, सूत्रवादी तथा सांक्रान्तिकों की उत्पत्ति बुद्धाब्द की चौथी शताब्दी में हुई थी[1]।

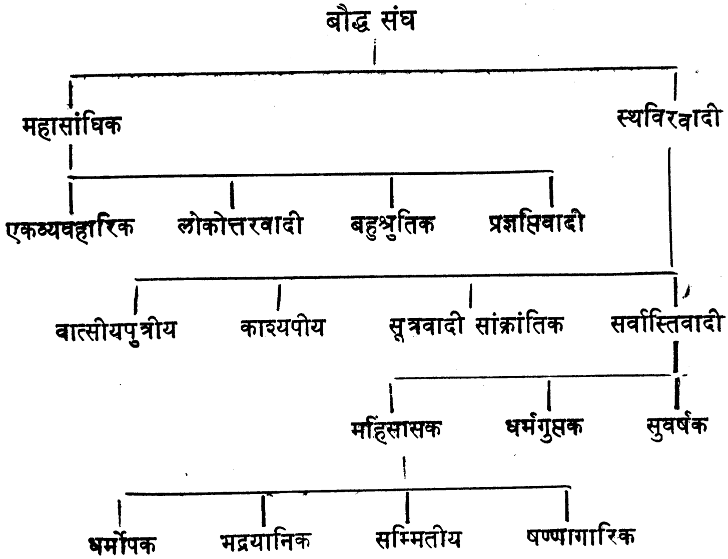

भिक्षु भव्य ने आचार्य बसुमित्र के आधार पर निकाय-भेद-विषयक एक दूसरी सूची प्रस्तुत की है, जो इस प्रकार है—

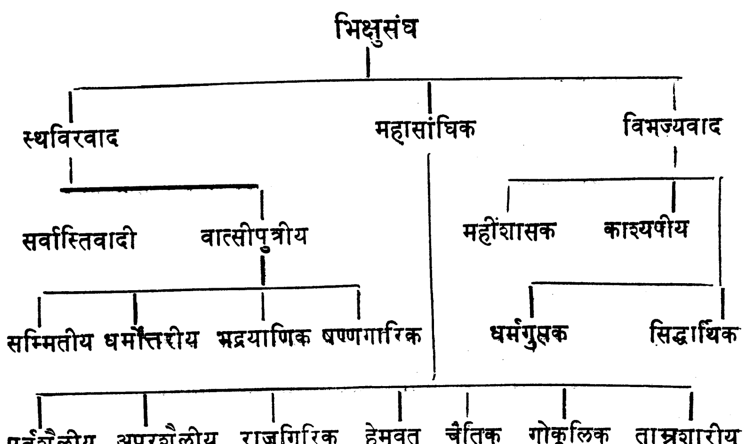

१. बौद्धधर्म के विकास का इतिहास, पृष्ठ १७७।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

महाव्युत्पत्ति, इत्सिंग, विनीतदेव और लामा तारानाथ द्वारा प्रस्तुत निकाय-भेदों की नामावलियों में थोड़ा-बहुत अन्तर है। इनमें बहुत पीछे के निकाय ले लिए गये हैं, जो इतिहास के क्रमिक अध्ययन के लिए व्यवधानकारक हैं।

भिक्षुसंघ में भयंकर मतभेद

एक ओर भिक्षुनिकाय टूटते-टूटते अट्ठारह भागों में विभक्त हो गया था और उनके पारस्परिक मतभेद अपने स्थान पर ज्यों-के-त्यों बने ही थे। किन्हीं-किन्हीं स्थानों पर इनका बाहुल्य था तो किन्हीं स्थानों पर दूसरे निकायों का। उधर अशोक के बौद्ध होने के उपरान्त अन्य धर्मावलम्बी संन्यासी (तैर्थिक) भी काषाय-वस्त्र पहनकर भिक्षुसंघ में मिलने लगे थे। वे बौद्धधर्म को न जानने के कारण अपने धर्मों का ही उपदेश जन-साधारण को देते थे। उधर सम्राट् अशोक के महान् धार्मिक कार्यों एवं बौद्ध-भिक्षुओं को प्रदत्त सहयोग से उनका सम्मान जन-साधारण में बढ़ने लगा था। इस प्रकार तैर्थिकों का बौद्धधर्म की ओर आकर्षित होना स्वाभाविक था क्योंकि जन-समाज में उनके प्रति आकर्षण कम हो गया था[१]। वे नये भिक्षु बने तैर्थिकों के उपोसथ में भी, प्रवारणा में भी, संघ-कर्म में भी, गण-कर्म आदि में भी सम्मिलित हो जाते थे और मनमाने ढंग से कार्य करते थे। उनके आचरण और व्यवहार से तंग आकर भिक्षुओं ने उनके साथ उपोसथ करना बन्द कर दिया[२]। तैर्थिकों की संख्या अधिक थी और भिक्षु अनुशासन-बद्ध नहीं थे। इसीलिए धार्मिक रूप से भिक्षुओं द्वारा तैर्थिकों का बहिष्कार नहीं किया जा सका। फलतः सम्पूर्ण भारतवर्ष में सात वर्षों तक भिक्षुओं ने उपोसथ और प्रवारणा नहीं की[३]। यह जानकर कि भिक्षुसंघ में भयंकर मतभेद उत्पन्न हो गया है, अशोक ने एक अमात्य को अशोकाराम भेजा और कहा—'विवाद शान्त करवाकर उपोसथ कराओ। किन्तु अमात्य के राजाज्ञा सुनाने पर भिक्षुओं ने तैर्थिकों के साथ उपोसथ करने से इनकार कर दिया। तब उसने कतिपय भिक्षुओं को क्रोध से मार डाला। इस कार्य को अशोक के अनुज तिस्सस्थविर नहीं देख सके। वे तुरन्त उसके पास गये और इस कार्य का विरोध किया। अमात्य ने भिक्षुओं को मारना बन्द कर अशोक को जाकर घटना से परिचित कराया। अशोक को यह सुनते ही बड़ा धर्म-संवेग उत्पन्न हुआ। उसने तुरन्त अशोकाराम जाकर भिक्षुओं से पूछा कि

१. अशोक का तेरहवाँ शिला-लेख।
२. महावंस ५, २३५, पृष्ठ ३६।
३. वही, ५, २३४-२३५ पृष्ठ ३६।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

उस हत्या-कर्म का दोषी कौन है ? कुछ भिक्षुओं ने अशोक को ही दोषी बतलाया और कुछ ने आमात्य को। इस प्रकार अशोक सन्देह में पड़ गया और उसने इसका निर्णय करने के लिए मोग्गलिपुत्त तिस्सस्थविर को, जो अहोगंग पर्वत[1] पर रहते थे, पाटलिपुत्र आमन्त्रित किया। उसकी यह भी कामना थी कि भिक्षु-संघ का भयंकर मतभेद उनके आने से शान्त करना सम्भव हो सकेगा।

मोग्गलिपुत्त तिस्स द्वारा निराकरण

उस समय मोग्गलिपुत्त तिस्सस्थविर भारतवर्ष के भिक्षुओं में सूर्य-चन्द्र की भाँति ज्योतिष्मान् और बुद्ध-शासन के स्तम्भ-स्वरूप थे। उनकी वाणी, बुद्ध-वाणी के समान मानी जाती थी[2]। वे सिग्गव-भिक्षु के शिष्य थे और उन्हीं से उन्होंने सुत्तन्त, अभिधम्म और विनयपिटक का अध्ययन किया था। उनकी आचार्य-परम्परा को इस प्रकार जानना चाहिए—

भगवान् बुद्ध
|
आयुष्मान् उपालि
|
दासक
|
सोणक
|
सिग्गव (उपाध्याय) + चण्डवज्जि (आचार्य)
|
= मोग्गलिपुत्त तिस्स (अशोक के गुरु[3])

---

१. हरिद्वार के पास कोई पर्वत।

२. महावंस ५, १५३ पृष्ठ ३०।

३. महायानी ग्रन्थों में उपगुप्त को अशोक का गुरु बतलाया गया है और यह भी कहा गया है कि भगवान् बुद्ध के महापरिनिर्वाण के १०० वर्ष पश्चात् मथुरा में उपगुप्त उत्पन्न होंगे—दिव्यावदान, पृष्ठ २१६-२४०। किन्तु साँची के स्तूप सं० २ से प्राप्त एक धातु-मंजूषा पर "सत्पुरुष मोग्गलिपुत्त" लिखा अंकित मिला है, जिससे प्रमाणित हो गया है कि मोग्गलिपुत्त ही अशोक के गुरु का वास्तविक नाम था, न कि उपगुप्त। देखिये—भारतीय इतिहास की रूपरेखा, भाग २, पृष्ठ ६७३।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

मोग्गलिपुत्त तिस्स को चण्डवज्जि स्थविर ने प्रव्रजित किया था अर्थात् वे उनके आचार्य थे और आयुष्मान् सिग्गव ने उन्हें उपसम्पादित किया था अर्थात् वे उनके उपाध्याय थे। जिस समय भिक्षुओं में भयंकर मतभेद चल रहा था और उन्होंने उपोसथ आदि करना छोड़ दिया था, उस समय मोग्गलिपुत्त तिस्सस्थविर अहोगंग पर्वत चले गये और वहीं पर उन्होंने ध्यान-भावना में ७ वर्षों तक व्यतीत किया। सम्राट् अशोक के आमन्त्रण पर वे नौका द्वारा पाटलिपुत्र आये। अशोक ने गंगा में घुटने तक जल में प्रवेश कर स्थविर का स्वागत किया और अपने रतिवर्द्धन नामक उद्यान में उन्हें ठहराया। वहाँ अशोक ने स्थविर से बहुत कुछ धर्म सीखा और बौद्धधर्म की जानकारी प्राप्त की। तदुपरान्त अशोक ने सम्पूर्ण भारतवर्ष के भिक्षुओं को पाटलिपुत्र के अशोकाराम में एकत्र करवाया और एक पर्दे की आड़ में. मोग्गलिपुत्त तिस्सस्थविर के साथ बैठकर बारी-बारी से भिक्षुओं को बुलवाकर उनके मत की परीक्षा की। जिन भिक्षुओं ने अपने उत्तर से अशोक को सन्तुष्ट कर दिया और यह ज्ञात हो गया कि ये वास्तविक भिक्षु हैं, उन्हें अशोक ने अष्ट-परिष्कारों सहित सम्मानित करते हुए विदा किया तथा जिनके उत्तर से यह ज्ञात हुआ कि ये केवल वेषधारी भिक्षु हैं और तैर्थिक-मतावलम्बी हैं, उनके भिक्षु-वेष को उतरवाकर श्वेत वस्त्र पहनवा दिया अर्थात् गृहस्थ बनवा दिया। इस प्रकार ६०,००० भिक्षु, जो मिथ्या दृष्टि वाले थे, गृहस्थ बना दिये गये[1]।

इस प्रकार भिक्षुसंघ जब परिशुद्ध हो गया, तब राजा ने उनकी रक्षा की व्यवस्था कर और संघ को उपोसथ करने के लिए निर्देश कर नगर में प्रवेश किया। उस दिन संघ ने एकत्र होकर उपोसथ-कर्म किया। तदुपरान्त अशोक ने ८४,००० स्तूपों तथा विहारों का निर्माण कराया और एक ही दिन उनका उद्घाटन-समारोह सम्पन्न हुआ। उस दिन राजा भी विहार में गया और सम्मिलित हुआ। उससे मोग्गलिपुत्त तिस्स ने कहा कि भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में भी तुम्हारे जैसा कोई त्यागी (=दानी) नहीं था। राजा इसे सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ और पूछा कि क्या मैं बुद्ध-शासन का उत्तराधिकारी हो सकता हूँ? स्थविर ने उत्तर दिया—'नहीं। जो अपने पुत्र या पुत्री को प्रव्रजित कराता है, वही उत्तराधिकारी होता है। दूसरे केवल

---

१. महावंस ५, २७०—

ते मिच्छादिट्ठिके सब्बे राजा उप्पब्बजापयि।
सब्बे सट्ठिसहिस्सानि आसुं उप्पब्बजापिता॥

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

दायक मात्र होते हैं।' स्थविर के इस वचन से प्रेरित होकर राजा ने अपने पुत्र महेन्द्र और पुत्री संघमित्रा को समारोहपूर्वक प्रव्रजित कराया[१]।

अशोक द्वारा ८४,००० विहारों और स्तूपों के निर्माण की बात महायान ग्रन्थों में भी समान रूप से आयी हुई है और वहाँ यह भी कहा गया है कि अपने इन कर्मों से पूर्व का चण्डाशोक धर्माशोक बन गया[२]। यही बात स्थविरवादी ग्रन्थ महावंस में भी कही गयी है—

> चण्डासोको 'ति नायित्थ पुरे पापेन कम्मुना।
> धम्मासोको ति आयित्थ पच्छा पुञ्ञेन कम्मुना॥'[३]

पाटलिपुत्र में तृतीय संगीति का आयोजन

मोग्गलिपुत्त तिस्सस्थविर ने धर्म और अधर्म सम्बन्धी विवादों का निराकरण कर भिक्षुसंघ का, जब संशोधन करा लिया और भिक्षुसंघ ने जब प्रसन्नतापूर्वक उपोसथ-कर्म कर लिया, तब उन्होंने १,००० त्रिपिटकधारी भिक्षुओं का चयन तृतीय संगीति करने के लिए किया और यह संगीति पाटलिपुत्र के अशोकाराम नामक विहार में ९ मास में सम्पन्न हुई थी। उस समय अशोक का राज्याभिषेक हुए १७ वर्ष व्यतीत हो चुके थे और मोग्गलिपुत्ततिस्स की अवस्था ७२ वर्ष पूरी हो चुकी थी। यह संगीति महाप्रवारणा अर्थात् आश्विन पूर्णिमा के दिन पूर्ण हुई थी[४]।

यह संगीति कब हुई थी? इस सम्बन्ध में स्थविरवादी परम्परा में किसी प्रकार का मतभेद नहीं है। दीपवंस और महावंस के अनुसार राजाओं का शासनक्रम निम्नलिखित प्रकार से वर्णित है—

कालाशोक के दस पुत्र थे। उन्होंने २२ वर्षों तक राज्य किया। पुनः क्रमशः ९ नन्दवंशियों ने २२ वर्षों तक राज्य किया। फिर चाणक्य की सहायता से

१. महावंस, ५, १९२-२०५।

२. दिव्यावदान, पृष्ठ २३९-२४१।

> आर्यमौर्यश्रीः स प्रजानां हितार्थं,
> कृत्स्नं स्तूपान् कारयामास लोकम्।
> चण्डाशोकत्वं प्राप्य पूर्वं पृथिव्यां,
> धर्माशोकत्वं कर्मणा तेन लेभे॥

३. महावंस ५, १८९।

४. महावंस, पृष्ठ ३९-४०।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

चन्द्रगुप्त मौर्य ने घनानन्द को मारकर २४ वर्षों तक राज्य किया। उसके पुत्र बिन्दुसार ने २८ वर्षों तक और फिर भगवान् बुद्ध के परिनिर्वाण के २१४ वर्ष बाद अशोक ने अपने ९९ भाइयों को मारकर राज्यसिंहासन प्राप्त किया। ४ वर्षों के पश्चात् अर्थात् बुद्धाब्द २१८ में उसका अभिषेक हुआ और अभिषिक्त होने के सत्रहवें वर्ष में तृतीय संगीति सम्पादित हुई अर्थात् २१८+१७ अर्थात् बुद्धाब्द २३५ में तृतीय संगीति सम्पादित हुई थी[१]।

निकायसंग्रह के अनुसार कालाशोक के उपरान्त क्रमशः भद्रसेन, कोरण्ड, मंगुर, सर्वञ्ज, जालिक, उषमक, संजय, कौरव्य, नन्दिवर्धन तथा पंचमक—ये दस एवं उग्रसेननन्द, पण्डुकनन्द, पण्डुगतिनन्द, भूतपालनन्द, रट्ठपालनन्द, गोविशानन्द, दससिद्धकनन्द, केवट्टनन्द, धनपालनन्द—ये नवों नन्दवंशी राजा हुए। तदुपरान्त चन्द्रगुप्त मौर्य, बिन्दुसार और धर्माशोक अर्थात् कालाशोक के पश्चात् २२वाँ राजा सम्राट् अशोक हुआ था।[२] इसी प्रकार अजातशत्रु से लेकर कालाशोक तक की राजपरम्परा इस प्रकार गिनायी गयी है—

अजातशत्रु, उदयन, अनिरुद्ध, महामुण्ड, नागदास, शिशुनाक—इन छः राजाओं के उपरान्त पाटलिपुत्र की गद्दी पर कालाशोक विराजमान हुआ। उस समय भगवान् बुद्ध का महापरिनिर्वाण हुए १०० वर्ष बीत चुके थे[३]। श्रीजयचन्द्र विद्यालंकार ने यह सिद्ध किया है कि कालाशोक और नन्दिवर्धन दो भिन्न पुरुष नहीं थे, प्रत्युत यह एक ही का नाम है और उसी के समय में द्वितीय संगीति सम्पन्न हुई थी[४]। इस कालाशोक के ११८ वर्षों के बाद धर्माशोक गद्दी पर विधिवत् बैठा था और तब भगवान् बुद्ध का परिनिर्वाण हुए २१८ वर्ष बीत चुके थे[५]। किन्तु महायानी ग्रन्थों में अशोक का राज्याभिषेक बुद्धाब्द १०० माना गया है—

१. अपि च। महाराज, त्वं भगवता व्यावृतः। वर्षशतपरिनिर्वृतस्य मम पाटलिपुत्रे नगरेऽशोको नाम राजा भविष्यति चतुर्भागचक्रवर्ती धर्मराजः, यो मे शरीरधातून् वैस्तारिकान् करिष्यति, चतुरशीतिधर्मराजिकासहस्रं प्रतिष्ठापयिष्यति[६]।

---

१. वही, पृष्ठ २० तथा ४०।

२. निकायसंग्रह पृष्ठ ६।

३. वही,, पृष्ठ ४।

४. भारतीय इतिहास की रूपरेखा, भाग २, पृष्ठ ५६२-५६३।

५. महावंस, ५, २१।

६. दिव्यावदान, पृष्ठ २३९, २५८।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

(और फिर महाराज, आपके सम्बन्ध में भगवान् ने भविष्यवाणी की थी—मेरे परिनिर्वाण के १०० वर्ष बीतने पर पाटलिपुत्र नगर में चतुर्दिश चक्रवर्ती अशोक नामक राजा धर्मराजा होगा जो मेरी अस्थियों का विस्तार करेगा। ८४,००० धर्मराजिका की स्थापना करेगा)।

२. वर्षशतपरिनिर्वृते बुद्धे भगवति पाटलिपुत्रे नगरे राजा अशोको राज्यं कारयति[1]।

(भगवान् बुद्ध के परिनिर्वाण के १०० वर्ष के उपरान्त पाटलिपुत्र नगर में अशोक नामक राजा राज्य करेगा।)

इस प्रकार स्थविरवादी और महायानी परम्पराओं में ११८ वर्ष का अन्तर दीखता है। यह अन्तर किस प्रकार आया, कहना कठिन है, किन्तु स्थविरवादी परम्परा ही विद्वानों द्वारा मान्य है और प्रायः सभी ने यह माना है कि तृतीय संगीति भगवान् बुद्ध के परिनिर्वाण के २३५ वर्ष के उपरान्त पाटलिपुत्र में सम्पन्न हुई थी। अशोक के शिलालेखों में इस संगीति का कोई वर्णन नहीं आया है, किन्तु संघ के प्रति अशोक की श्रद्धा और विश्वास की प्रगाढ़ता का विवरण अवश्य मिलता है और उसने यह भी स्पष्ट किया है कि बुद्धधर्म और संघ में मेरी कैसी आस्था है, इसे भिक्षु लोग भली प्रकार जानते हैं[2]। उसने यह भी कहा है कि मैं बौद्ध होने के ढाई वर्ष तक, जब उपासक रहा, बहुत धर्म-कर्म नहीं किया, किन्तु एक वर्ष से अधिक हुआ, मैं संघ की शरण में आया और तब से बहुत अधिक पराक्रम किया[3]। सारनाथ, साँची और कौशाम्बी के स्तम्भ-अभिलेखों से स्पष्ट है कि उस समय भिक्षुसंघ में मतभेद उत्पन्न हो गया था और मतभेद उत्पन्न करने वाले भिक्षु और भिक्षुणियों के विरुद्ध अशोक को कड़े आदेश जारी करने पड़े थे। इन आदेशों में उसने कहा है—"जो संघ को भंग करेगा, चाहे वह भिक्षु हो अथवा भिक्षुणी उसे श्वेत वस्त्र पहनाकर अर्थात् गृहस्थ बनाकर आवास (विहार या संघाराम) से निकाल देना चाहिए, क्योंकि मैं चाहता हूँ कि संघ मिल-जुल कर रहे, जिससे वह स्थायी हो[4]।

---

१. अवदानशतकम्, पृष्ठ २६१।

२. अशोक के अभिलेख, पृष्ठ ११५ (कलकत्ता-वैराट अभिलेख)।

३. वही, पृष्ठ १२५ (एरगुडि अभिलेख)।

४. अशोक के अभिलेख, पृष्ठ १८३ (साँची स्तम्भ-लेख) पृष्ठ १८५ (सारनाथ स्तम्भ-लेख) पृष्ठ १८७ (कौशाम्बी स्तम्भ-लेख)—"ए चुं खो भिक्खु वा भिक्खुनी वा संघं भारवति से ओदातानि दुसानि संनंधापयिया अनावसासि आवासयिये।"

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

इससे जान पड़ता है कि बहुत से भिक्षु संघ से बहिष्कृत किये गये होंगे। दीपवंस और महावंस का यह विवरण भी इससे प्रमाणित होता है कि कई सहस्र भिक्षु अपनी मिथ्या दृष्टि के कारण संघ से निष्कासित कर दिये गये थे।

जहाँ तक द्वितीय संगीति के समय का प्रश्न है, उसका भी निराकरण अशोक के शिलालेखों[1] में वर्णित अन्तियोक[2] (ईस्वी पूर्व २६१-२४६), तुरुमय[3] (ई० पू० २८५-२४७), अन्तिकिनी[4] (ई० पू० २७७-२३९), मक[5] (ई० पू० ३००-२५०), अलिकसुन्दर[6] (ई० पू० २५२-२४४)—इन पाँच यवन राजाओं तथा ताम्रपर्णी[7], चोल[8], पाण्ड्य[9], सत्यपुत्र[10], केरलपुत्र[11] आदि पड़ोसी राजाओं के कालों का तुलनात्मक अध्ययन करने से दीपवंस और महावंस में वर्णित तिथि ही ठीक उतरती है।

तृतीय संगीति का वर्णन केवल स्थविरवादी ग्रन्थों में ही मिलता है। महायान से सम्बन्धित ग्रन्थ इसके प्रति मौन हैं। यहाँ तक कि स्वयं अशोक के अभिलेखों में इस संगीति का कोई उल्लेख नहीं मिलता। प्रथम और द्वितीय संगीतियों का वर्णन यद्यपि विनयपिटक में पंचशतिका तथा सप्तशतिका शीर्षकों से संकलित है, किन्तु तृतीय संगीति का वर्णन उसमें भी नहीं है। सम्प्रति त्रिपिटक अपने जिस रूप में विद्यमान है, उसका यह स्वरूप पालि-ग्रन्थों के

१. अशोक के अभिलेख, पृष्ठ ३, ४१।
२. सिकन्दर के प्रसिद्ध सेनानी सेल्युकस निकेटर का पोता ऐण्टियोकस द्वितीय।
३. मिस्र का बादशाह टोलमीफिलाडेफस (भण्डारकर का "अशोक" पृष्ठ ४६)।
४. ऐण्टिगोनस जोनट्स।
५. साईरीनिका का राजा मागस और टोलमी टोलमीफिलाडेलफस का सौतेला भाई।
६. ऐपिरस अलेकजेंडर (ई० पू० २७२-२५२) अथवा करिन्थ का राजा अलेकजेण्डर (ई० पू० २५२-२४४)।
७. श्रीलंका का प्राचीन नाम। मेगस्थनीज ने इसे ताम्रोवर्न नाम से लिखा है।
८. प्रसिद्ध चोल राज्य। वर्तमान निलौर ओर पट्टूकोटा के बीच का प्रदेश।
९. प्रसिद्ध पाण्डय राज्य। वर्तमान मदुरा और तिनीवल्ली के जिले।
१०. कर्न ने इसे सतपुड़ा पर्वत बतलाया है। डा० भाण्डारकर ने सातपुते से इसका मिलान किया है, किन्तु वास्तव में चोल और पाण्डु की तरह जाति या वंशसूचक है। तुलु भाषा का प्रदेश।
११. केरल अथवा मालावार का राज्य।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

अनुसार तृतीय संगीति के समय में ही पूर्ण हुआ था, किन्तु तृतीय संगीति का वर्णन उसमें भी उपलब्ध न होने के कारण अनेक विद्वानों ने इसके प्रति सन्देह प्रकट किया है[१]। डाक्टर डी० आर० भण्डारकर का मत है कि तृतीय संगीति केवल स्थविरवादियों की थी, क्योंकि अन्य निकायों का जन्म इससे पूर्व ही हो चुका था और वे विभक्त हो गये थे। अतः उनके धर्म-ग्रन्थों में इस संगीति का वर्णन न मिलना स्वाभाविक है। अशोक ने इस संगीति का सम्पादन विभज्जवादी भिक्षुओं के संरक्षण के निमित्त कराया था[२]। कुछ विद्वानों का यह भी कहना है कि वसुमित्र आदि आचार्यों ने, जो दूसरी संगीति का वर्णन लिखा है, उसमें तीसरी संगीति की भी अनेक बातें जोड़ दी हैं और कुछ को छोड़ दिया है[३]। हम देखते हैं कि अशोक के अभिलेखों में तृतीय संगीति का स्पष्ट उल्लेख न होते हुए भी साँची, सारनाथ और कौशाम्बी के अभिलेखों में उसने संघविभेद के प्रति तर्जना की है[४] और वैराट से प्राप्त अभिलेख में बुद्धधर्म और संघ के प्रति अपनी प्रगाढ़ श्रद्धा और विश्वास को प्रकट करते हुए बौद्ध धर्मग्रन्थों के पठन-पाठन की ओर मगध के भिक्षु-संघ को अभिवादन करते हुए प्रेरित किया है। उसने बौद्धधर्म को चिरस्थायी बनाने के लिए कुछ धर्म-सूत्रों का उल्लेख किया है और निवेदन किया है कि बहुसंख्यक भिक्षु और भिक्षुणियाँ, उपासक-उपासिकाएँ प्रति क्षण इन्हें सुनें और इनका मनन करें। यह धर्म-सूत्र (=धर्म-पर्याय) है—"विनयसमुकसे[५], अलियबसामि[६], अनागतभयानि[७], मुनिगाथा[८], मौनेयसूते[९], उपतिसपसिने[१०], लाघुलोवादे[११]।"[१२]

१. बुद्धिस्ट फिलासफी (कीथ) पृष्ठ १८-१९ तथा हिस्ट्री आफ बुद्धिस्ट थाट (टामस) पृष्ठ ३५।
२. "अशोक", पृष्ठ ९६—डी० आर० भण्डारकर।
३. वही, पृष्ठ १०१-१०२।
४. अशोक के अभिलेख, पृष्ठ १८३, १८५, १८७।
५. भिक्खु-भिक्खुनी प्रातिमोक्ख। विनयपिटक, पृष्ठ ५-७०।
६. आर्यवंस, अंगुत्तरनिकाय, ४, ३, ८ पृष्ठ २०४।
७. अंगुत्तरनिकाय ५, ३, ७-१० पृष्ठ ४०५-४११।
८. सुत्तनिपात, मुनिसुत्त १, १२ पृष्ठ ४१।
९. वही, नालकसुत्त ३, ११, पृष्ठ १४९।
१०. वही, सारिसुत्त ४, १६, पृष्ठ २०३।
२१. राहुलोवाद—मज्झिमनिकाय २, २, १।
१२. अशोक के अभिलेख, पृष्ठ ११५।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

इससे तृतीय संगीति की ऐतिहासिकता अप्रत्यक्ष रूप से अवश्य सूचित होती है[1], किन्तु इन अभिलेखों के आधार पर उसका निष्पक्ष और स्पष्ट ऐतिहासिक विवरण प्राप्त नहीं होता। सिंहली सूत्र ही इसके ऐतिहासिक स्रोत हैं। साथ ही समन्त-पासादिका आदि अट्ठकथाओं में तथा पश्चात्कालीन सासनवंस आदि ग्रन्थों में भी इसका विवरण उपलब्ध है। यदि हम अट्ठकथा ग्रन्थों का सम्पादन पालि से सिंहली में (महेन्द्रकाल तीसरी शताब्दी ईस्वीपूर्व) तथा सिंहली से पालि में (बुद्धघोषकाल पांचवी शताब्दी ईस्वी) परिवर्तन माने तो सिंहली सूत्र भी भारतीय इतिहास-परम्परा से सम्बद्ध है और इस प्रकार दीपवंस, महावंस आदि स्थविरवादी ग्रन्थों में वर्णित तृतीय संगीति का विवरण ऐतिहासिक साक्षियों पर ही आधारित है।

जैसा कि पहले मैंने लिखा है, पाटलिपुत्र के अशोकाराम नामक बिहार में मोग्गलिपुत्त तिस्सस्थविर की अध्यक्षता में यह तृतीय संगीति एक हजार भिक्षुओं द्वारा ईस्वी पूर्व दो सौ पैंतीस में पूर्ण हुई थी।[2] इस संगीति में भी प्रथम तथा द्वितीय संगीतियों में संगायन किये हुए धर्मों का ही साङ्गोपाङ्ग संगायन हुआ तथा कथावत्थु प्रकरण जैसे ग्रन्थ के साथ अनेक सूत्र, गाथायें और वत्थु (= कथायें) भी त्रिपिटक में सम्मिलित कर दिये गये। अब त्रिपिटक, पूर्व की अपेक्षा कुछ बृहद् हो गया।[3]

कथावत्थुप्पकरण की देशना

तृतीय संगीति में परवाद-मर्दन-हेतु मोग्गलिपुत्त तिस्सस्थविर ने कथावत्थुप्पकरण की देशना की, जो अभिधम्मपिटक में सम्मिलित किया गया और उसके

"पियदसि लाजा मागधं संघं अभिवादेतूनं आहा अपावधतं च फासु विहालतं चा विदिते बे भन्ते आवतके हमा बुधसि धंमसि संघसि ति गात्वे च प्रसादे च, ए केति भन्ते भगवता बुधेन भासिते सर्वे से सुभासिते वा ए चु खो भन्ते हमियाये दिसेया हैवं संघमे चिलठिकीते हो सती ति अलहामि हकं तं वातवे, इमानि भन्ते धम्म पलियायानि विनय-समुकसे अलिय वसाणि अनागतभयानि मुनिगाथा मोनेयसूते उपति-सपसिने ए चा लाघुलोवादे मुसावादं अधिगिच्य भगवता बुधेन भासिते एतानि भन्ते धमपलियायानि इछामि किंति बहुके भिखुपाये चा भिखुनिये चा अभिखितं सुनेयु चा उपाधालयेयु चा, हैवंमेवा उपासका चा उपासिका चा। एतेनि भन्ते इमं लिखापयामि अभिप्रेतं मे जानतु ति।"

१. बौद्धधर्म के विकास का इतिहास, पृष्ठ १९७। २. महावंस, ५-२८०।
३. पालिसाहित्य का इतिहास—भिक्षु धर्म रक्षित, पृष्ठ ३६-३७।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

साथ अभिधम्मपिटक अब सात प्रकरणों वाला हो गया। इस ग्रन्थ में बौद्धधर्म सम्बन्धी स्थविरवादी सिद्धान्तों का स्पष्टीकरण तथा अन्य भिक्षुनिकायों के सिद्धान्तों का खण्डन था। अतः यह भी बुद्धवाणी के अन्तर्गत गिना जाने लगा। यह ग्रन्थ तर्कशास्त्र के नयों (=न्यायों) पर आधारित था और इसमें तत्कालीन प्रायः सभी विरुद्ध मतवादी भिक्षु-निकायों के सिद्धान्तों का खण्डन था। अतः इसका महत्त्व और भी बढ़ गया। किन्तु यह केवल धार्मिक दृष्टिकोण से ही मान्य हो सकता है, ऐतिहासिक दृष्टिकोण से नहीं। इसमें यथार्थ बात यही है कि कथावत्थुप्पकरण में अभिधम्म सम्बन्धी दार्शनिक मतों के खण्डन-मण्डन के कारण इसे अभिधम्मपिटक में स्थान मिला और श्रद्धालु बौद्ध जनता ने इसे बुद्धोपदिष्ट धर्म के रूप में अङ्गीकार कर लिया, क्योंकि यह बुद्ध-वचनों के अनुकूल है। महापण्डित राहुल सांकृत्यायन का कथन है कि कथावत्थुप्पकरण के बहुत से अंश पहली शताब्दी ईस्वी तक के हैं।[1] उनका कथन है कि इस ग्रन्थ में अशोक-काल तक प्रचलित केवल आठ ही निकायों के सिद्धान्तों का खण्डन है, जिनमें से दो तो महासांघिकों के हैं और छः स्थविरवादियों के। इनका भी विवरण कथावत्थु की अट्ठकथा में ही प्राप्त है। पीछे के अनेक निकायों के सिद्धान्तों का भी परिचय हमें अट्ठकथा से ही प्राप्त होता है, जिनमें—अन्धक, अपरशैलीय, राजगिरिक, सिद्धार्थक, वैपुल्य (वैतुल्य) उत्तरापथक और हेतुवादी—हैं। वैपुल्यवादी ही आगे चलकर महायान के रूप में प्रसिद्ध हो गया था।[2] आगे हम इस पर विस्तार पूर्वक विचार करेंगे। महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने महायान के निर्माण में इन भिक्षु-निकायों के योगदान का विवरण निम्नलिखित प्रकार से प्रस्तुत किया है[3]—

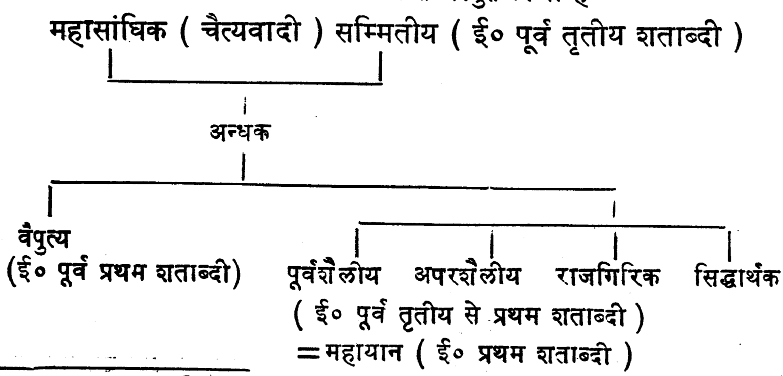

१. पुरातत्त्व-निबन्धावली, पृष्ठ १३०।

२. बौद्धदर्शन तथा अन्य भारतीय दर्शन, प्रथम भाग, पृष्ठ ५५२-५५३।

३. पुरातत्त्व-निबन्धावली, पृष्ठ १०३।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

जैसा कि हमने पहले देखा है, कथावत्थुप्पकरण अशोककालीन ग्रन्थ है और इसमें स्थविरवाद के अतिरिक्त सत्रह भिक्षुनिकायों के सिद्धान्तों का निराकरण किया गया है। इसकी अट्ठकथा से पीछे के भी ७ निकायों का भी समीकरण होता है। इस प्रकार तत्कालीन १८ निकायों के अतिरिक्त पीछे के सात निकायों के सिद्धान्तों का परिचय इस ग्रन्थ से मिलता है। इसकी अट्ठकथा से बुद्धकाल से लेकर ईस्वी सन् ५वीं शताब्दी तक के भिक्षुसंघ के इतिहास की जानकारी होती है। इस ग्रन्थ के जिन पिछले निकायों के सिद्धान्तों का ज्ञान हमें अट्ठकथा से होता है, उनके नाम इस प्रकार हैं—

१. पूर्व शैलीय
२. अपर शैलीय
३. राजगिरिक
४. सिद्धार्थक
} अन्धक (ये चारों निकाय आन्ध्र से सम्बन्धित होने से अन्धक कहलाते थे।)
५. उत्तरापथ
६. हेतुवादी
७. वैतुल्यवादी (=वैपुल्यवादी)

कथावत्थु में निम्नलिखित निकायों के सिद्धान्तों का कोई उल्लेख नहीं है अथवा हम कह सकते हैं कि अट्ठकथाचार्य इनके सिद्धान्तों से अनभिज्ञ थे। यही कारण है कि उन्होंने इनका परिचय नहीं दिया है और कथावत्थु में किसी भी निकाय का नाम निर्दिष्ट नहीं है—

१. एकव्यवहारिक
२. प्रज्ञप्तिवादी
३. बाहुलिक (=बहुश्रुत)
४. चैत्यवादी
} महासांघिक
५. धर्मोत्तरीय
६. छन्नागारिक
७. धर्मगुप्तिक
८. सङ्क्रान्तिक
९. श्रुतवादी
} स्थविरवाद
१०. हैमवत
११. वाजिरिया
} पीछे के भारतीय निकाय

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

१२. धर्मरुचि
१३. सागलिय } श्रीलंका के निकाय

कथावत्थु में कुल २१७ कथायें आयी हैं, जिनमें २२ ऐसी कथायें हैं, जिनके सम्बन्ध में अट्ठकथा बिल्कुल मौन है। इन खण्डित मतों से सम्बन्धित निकायों के नामों का उल्लेख आचार्य बुद्धघोष ने नहीं किया है[1], किन्तु भारत के विभिन्न बौद्ध नष्टावशेषों तथा गुहाओं आदि में प्राप्त अभिलेखों में इन निकायों में से बहुसंख्यक के नाम, स्थान, प्रभावादि का उल्लेख हुआ है, जिनपर हम आगे विस्तारपूर्वक विचार करेंगे।

विभिन्न प्रदेशों में धर्मप्रचार

तृतीय संगीति की सबसे बड़ी देन यह थी कि संगीति के तुरन्त बाद ही विभिन्न देशों में बौद्धधर्म-प्रचारक भिक्षु भेजे गये। यह प्रचारक-मण्डल पाँच-पाँच की संस्था में था और सम्राट् धर्माशोक द्वारा प्रेरित था। महावंस के अनुसार ये प्रचारक प्रत्येक देशों में भेजे गये थे।[2] सभी धर्मप्रचारकों ने कार्तिकमास को पूर्णिमा को प्रस्थान किया था।[3] किन्तु महावंस से हम यह भी जानते हैं कि लङ्का में धर्म-प्रचारक भिक्षु अशोक के पुत्र महेन्द्र के नेतृत्व में ज्येष्ठ-पूर्णिमा को गये थे[4]। महावंस के अनुसार ये धर्म-प्रचारक नौ प्रदेशों में भेजे गये थे और इन प्रदेशों में स्वर्णभूमि (वर्मा) तथा लङ्काद्वीप ही भारत से बाहर के देश थे। शेष सात प्रदेश भारत के अङ्ग थे। किन्तु अशोक के अभिलेखों में इनसे भिन्न और सुदूर के प्रदेशों तथा राज्यों के भी नाम मिलते हैं और हम यह भी जानते है कि केवल भिक्षु ही धर्म-प्रचारार्थ नहीं गये थे, प्रत्युत अशोक द्वारा धर्म-प्रचारक भी भेजे गये थे।[5] दीपवंस, महावंस तथा समन्तपासादिका के

---

१. पालिसाहित्य का इतिहास—भिक्षु धर्मरक्षित, पृष्ठ १२९-१३०।

२. महावंस, पृष्ठ १२, २।

३. वही, १२.२।

सासनस्स पतिट्ठानं पच्चन्तेसु अपेक्खिया।
पेसेसि कत्तिके मासे तेते थेरे तहिं तहिं॥

४. महावंस, पृष्ठ १३, १४।

आरोहतु मिस्सकनगं जेट्ठमासस्सु पौसथे।
तदहे व गमिस्साम लङ्कादीप वरं मयं॥

५. अशोक के अभिलेख, पृष्ठ ४०।

"यत विदुता देवानं पियसा नो यन्ति तेपि सुतु देवानं पिनय धर्मवुतं विधनं धम्मानुसथि धमं अनुविधियं अनुविधिय सं अ चा।"

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

अनुसार निम्नलिखित प्रदेशों में बौद्धधर्म के प्रचारक भिक्षु अशोक द्वारा भेजे गये थे—

१. स्थविर मध्यन्तिक (मज्झन्तिक)—कश्मीर और गान्धार प्रदेश को।
२. स्थविर महादेव —महिष मण्डल (महिंसक मण्डल) को (नर्मदा के दक्षिण का प्रदेश)
३. स्थविर रक्षित (रक्खित) —वनवासी प्रदेश को (वर्तमान उत्तरी किनारा)
४. यूनानी भिक्षु धर्मरक्षित (यौनक धम्मरक्खित)—अपरान्तक प्रदेश को (वर्तमान गुजरात)
५. स्थविर महाधर्म रक्षित (महा-धम्मरक्खित) —महाराष्ट्र (महारट्ठ) को
६. स्थविर महारक्षित (महारक्खित)—यवन देश (यौनक लोक) को (बैट्रिया)
७. स्थविर मध्यम (मज्झिम) —हिमालय प्रदेश (हिमवन्त) को
८. स्थविर सौण और उत्तर (दोनों भाई) —सुवर्णभूमि (सुवण्णभूमि) बरमा को।
९. महेन्द्र (महिन्द) ऋष्ट्रिय (इट्टिय)—ये पांच भिक्षु ताम्रपर्णी (तम्बपाणि) उत्रिय (उत्तिय), शम्बल (सम्बल) को भेजे गये थे। और भद्रशाल (भद्दसाल)

उपर्युक्त देशों में भेजे धर्म-प्रचारक भिक्षुओं का विवरण ऐतिहासिक साक्ष्यों द्वारा प्रमाणित हो चुका है। सांची तथा सोनारी में प्राप्त अस्थिमंजूषाओं के ऊपर अंकित नामावलियों से सिद्ध हो चुका है कि ये धर्मप्रचारक भिक्षु वास्तव में उन-उन देशों में धर्मप्रचारार्थ गये थे, क्योंकि हिमवन्त प्रदेश में धर्मप्रचारार्थ जाने वाले मज्झिम स्थविर के साथ कस्सपगोत्तदुन्दुभीसर, सहदेव और मूलकदेव के नाम सबहेमवताचार्य (समूचे हिमालय के आचार्य) अंकित है[1]। इसी प्रकार उनके उच्चाधिकारियों के भी नाम प्राप्त हुए हैं[2]। इससे स्पष्ट है कि

---

१. भारतीय इतिहास की रूपरेखा, भाग २, पृष्ठ ६७३।
२. भिलसा टाप्स—कंनिंघम, लंदन १८५४, पृष्ठ ११९-१२०।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

धर्मप्रचार का कार्य बड़ा ही योजनाबद्ध था। धर्म-दूतों की मृत्यु के उपरान्त उनकी अस्थियाँ साँची मँगा ली जाती थीं और सम्मानपूर्वक स्तूपों में उनका निधान किया जाता था। साथ ही उनके स्थान पर उत्तराधिकारी के रूप में दूसरे भिक्षु नियुक्त किये जाते थे। ऐसा भी लगता है कि धर्मप्रचार के क्षेत्र में पहले पाटलिपुत्र का स्थान था, किन्तु परवर्तीकाल में वह गौरव साँची को प्राप्त हो गया था।

इन ९ प्रदेशों में, जिस प्रकार धर्म का प्रचार हुआ, उसका महावंस में विस्तारपूर्वक वर्णन आया हुआ है। हम संक्षेप में उसका वर्णन कर रहे हैं—

कश्मीर-गान्धार

महावंस के अनुसार कश्मीर और गान्धार में धर्मप्रचारार्थ मज्झन्तिक स्थविर भेजे गये थे। वहाँ उन्होंने असिविसूपम सुत्त का उपदेश देकर सहस्रों व्यक्तियों को बौद्ध बनाया और उनमें से बहुत से व्यक्तियों ने प्रव्रज्या ग्रहण की।

महींसकमण्डल

इसे महिंसमण्डल भी कहते हैं। यहाँ धर्मप्रचार के लिए महादेव स्थविर भेजे गये थे। उन्होंने देवदूतसुत्त का उपदेश देकर लोगों को अपने वश में किया था।

वनवास

इस प्रदेश में धर्मप्रचारार्थ रक्षित स्थविर भेजे गये थे। उन्होंने अनमतग्ग संयुत्त का उपदेश देकर लोगों को बौद्ध बनाया था। वहाँ पर ५०० विहारों की स्थापना हुई थी।

अपरान्त

यहाँ पर यवनदेशीय धर्मरक्खित स्थविर भेजे गये थे। वहाँ की जनता को अग्गिखन्धोपमसुत्त का उपदेश देकर बौद्धधर्म में दीक्षित किया गया था।

महाराष्ट्र

इस प्रदेश में स्थविर महाधर्मरक्षित भेजे गये थे। उन्होंने महानारदकस्सप जातक का उपदेश देकर लोगों को बौद्धधर्म की ओर आकर्षित किया था।

यवनलोक

स्थविर महारक्षित यवनों के देश में धर्मप्रचार-हेतु गये थे और वहाँ उन्होंने कालकारामसुत्त का उपदेश किया था।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

हिमवन्तप्रदेश

जैसा कि हम ऊपर कह आये हैं, मज्झिम स्थविर चार अन्य भिक्षुओं के साथ वहाँ गये थे, जिनके नाम हैं—काश्यपगोत्र, मूलदेव, सहदेव और दुन्दुभिसर। उन्होंने वहाँ धम्मचक्कप्पवत्तनसुत्त का उपदेश दिया था।

स्वर्णभूमि

सोण और उत्तर नामक भिक्षु सोणभूमि में धर्मप्रचारार्थ गये थे और वहाँ उन्होंने ब्रह्मजालसुत्त का उपदेश दिया था।

लंकाद्वीप

अशोकपुत्र महेन्द्र इट्ठिय, उत्तिय, सम्भल और भद्रसाल इन चार भिक्षुओं के साथ धर्मप्रचारार्थ श्रीलंका गये थे और वहाँ के राजा को बौद्ध बनाया था। पीछे उनकी बहन संघमित्रा भी बोधिवृक्ष की शाखा के साथ श्रीलङ्का गयी और स्त्रियों को प्रव्रजित किया। जीवन-पर्यन्त ये धर्मप्रचारक श्रीलङ्का में ही रहे, और बौद्धधर्म की नींव वहाँ पर इन्होंने दृढ़ कर दी।

निःसन्देह इन धर्मप्रचारक स्थविरों ने भगवान् बुद्ध के त्यागमय जीवन के आदर्श को अपनाकर बहुजन-हिताय, बहुजनसुखाय बौद्धधर्म के प्रचार का महान् सराहनीय कार्य किया।

अशोक के अभिलेखों से ज्ञात होता है कि धर्मप्रचारक भिक्षु तथा दूत इन नव प्रदेशों से आगे के भी देशों में भेजे गये थे। इनमें यवनराज ऐण्टियोक्स और उससे भी आगे के राजा तुरुमय, अन्तिकिन, मक और अलेकजेण्डर के राज्यों में अशोक के धर्मप्रचारक गये थे,[१] जिनका उल्लेख हम पहले कर चुके हैं। भारत के निचले प्रदेशों में चोल, पाण्डय, ताम्रपर्णी, वृषवृज्जि, कम्बोज, नामक, नामपन्ति, भोज, प्रतिष्ठानिक, आन्ध्र और पुलिन्द थे। इन देशों में भी धर्मानुदेशक भेजे गये थे।[२] इन देशों में कोल, आधुनिक तन्जौर तथा त्रिचनापल्ली का प्रदेश था। पांड्य, मदुरा तथा टिनयवेली के प्रदेश कहलाते थे और ताम्वपर्णी श्रीलङ्का का प्राचीन नाम है। कम्बोज तथा यवन प्रसिद्ध हैं। प्रतिष्ठान पैठन को कहते हैं। आन्ध्र अब भी आन्ध्र कहलाता है और पुलिन्द

---

१. अशोक के अभिलेख, पृष्ठ ४१।

२. वही, पृष्ठ ४१।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

उसके पास का ही देश था। वृषवृज्जि कदाचित् वैशाली के प्राचीन, वृज्जि लोग थे। यद्यपि इसमें विद्वान् एकमत नहीं हैं।[१]

इस प्रकार हमने देखा कि बौद्धधर्म के प्रचारक भिक्षु तथा दूत, भारत के विभिन्न प्रदेशों के अतिरिक्त बाह्य देशों में भी गये थे, और उन्होंने एक महान् सांस्कृतिक दिग्विजय की थी। उनके इन विजयों से ही उन देशों के जनमानस में धर्म के प्रति अभिरुचि बढ़ी। सदाचार, सहिष्णुता, उदारता, परोपकार आदि कुशल कर्मों की ओर जनता का झुकाव हुआ। स्थान-स्थान पर प्राप्त अशोक-अभिलेखों से ज्ञात होता है कि ऐसे सत्कार्यों में शासन को जनता का भी पर्याप्त सहयोग प्राप्त हुआ था। इसका तात्पर्य यह नहीं समझना चाहिए कि उस समय सारे भारतवासी बौद्ध हो गये थे, अपितु उनमें तैर्थिक, जैनी, ब्राह्मण-धर्मावलम्बी, अचेलक आदि भी थे। अशोक ने उनकी सुख-सुविधा का भी ध्यान रखा था, यद्यपि वे पूर्ण सन्तुष्ट नहीं थे। आगे यह असन्तोष उभड़कर सामने आया, जब कि बौद्धधर्म जनता का धर्म बन चुका था। राजधर्म तो वह था ही और यही कारण था कि श्रीलङ्का, बर्मा, गान्धार, कम्बोज, हिम-भूमि (= हिमवन्त प्रदेश) आदि की जनता ने उसे अङ्गीकार कर भारत के धर्मदूतों का उत्साह बढ़ाया था। उस समय धर्म के प्रति एक अद्भुत आकर्षण, जिज्ञासा और लगाव था, जिससे सभी जातियों तथा प्रान्तों की जनता चाहे धनी हो, चाहे निर्धन, उसकी ओर खिचती जा रही थी। यद्यपि भिक्षु-संघों में निकाय सम्बन्धी झगड़े थे। अशोक के प्रयत्नों के बावजूद वे मिट नहीं सकते थे। स्थविरवाद के समक्ष महायान (= महासांघिक) प्रबल होता जा रहा था, फिर भी यह मतभेद जनता के लिए कोई महत्त्व नहीं रखता था। जनता उन्हें उसी श्रद्धा की दृष्टि से देखती थी, जैसे कि भगवान् बुद्ध के अनुगामी भिक्षु हों। वह धर्म के स्मारकों, विहारों, चैत्यों आदि के निर्माण का युग था। बौद्धधर्म का विस्तार एवं विकास का युग था। हम कह सकते हैं कि अपनी समृद्धि, उत्थान एवं प्रसार के क्षेत्र में बौद्धधर्म का वह स्वर्णयुग था, न केवल वह भारत का ही, प्रत्युत विश्व के इतिहास का वह एक स्वर्णिम काल था। भारत के लिए तो वह एक आदर्श-काल था, जिसकी केवल हम आज कल्पना ही कर सकते हैं। ऐसा कुछ लगता है कि भगवान् बुद्ध की महिमा उस काल को ही पूर्णरूप से परिप्लावित कर सकी थी और उनकी ज्ञान-ज्योति अपने प्रकाश से बहुजन की अन्तरात्मा को प्रकाशित कर सकी थी।

---

१. वही, पृष्ठ ४१।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

बौद्ध निकायों के दो प्रमुख भेद

स्थविरवाद तथा महासांघिक

हम पहले देख आये हैं कि द्वितीय संगीति के समय में ही भिक्षुसंघ में मत-भेद उत्पन्न हो गया था और बहुत से भिक्षु स्थविरवाद से निष्कासित कर दिये गये थे। उन्होंने अपनी दूसरी संगीति की थी और अपना नाम उन्होंने महा-सांगीतिक या महासांघिक रख लिया था, जिसने पीछे चलकर महायान का स्वरूप ग्रहण किया। तृतीय संगीति के समय भिक्षुनिकायों की संख्या बहुत बढ़ गयी थी और उस समय ६०,००० भिक्षु स्थविरवाद से निष्कासित कर दिये गये थे। इस प्रकार प्रमुख रूप से स्थविरवाद और महासांघिक दो निकाय-समूह प्रबल रूप में विभक्त हो गये और वे दोनों अपने उपनिकायों के साथ वृद्धि को प्राप्त होते रहे। तात्पर्यतः उनके विकास का क्रम रुका नहीं, प्रत्युत उनके उप-निकायों की संख्या क्रमशः बढती गयी।

निकाय-संग्रह के अनुसार, जो ६०,००० तैर्थिक-मतावलम्बी भिक्षु स्थविर-वाद से बहिष्कृत किये गये थे, वे सभी पाटलिपुत्र से जाकर राजगृह और नालन्दा में एकत्र हुए। वहाँ उन्होंने अपना संगठन दृढ़ करने का उपाय सोचा और स्थविरवाद में फूट डालने का भी उपक्रम किया। वे वहाँ से हटकर कौशाम्बी चले गये और वहाँ पर उन्होंने भगवान् बुद्ध के परिनिर्वाण के २३५ वर्षों के उपरान्त अपनी संगीति की। उस समम उनसे नौ नये निकायों का विकास हुआ, जिनके नाम हैं—(१) हैमवत, (२) राजगिरिक, (३) सिद्धार्थक, (४) पूर्वशैलीय, (५) अपरशैलीय, (६) वाजिरिय, (७) वैतुल्य, (८) अन्धक और (९) अन्य महासांघिक। इन्होंने अपने अपने सिद्धान्तों के परिचायक ग्रन्थों की रचना भी कर डाली, जिसका विवरण निकाय-संग्रह[१] के अनुसार निम्नलिखित है—

हैमवत—	वर्णपिटक
राजगिरिक—	अंगुलिमालपिटक
सिद्धार्थक—	गूल्हवैस्सन्तर
पूर्वशैलीय—	रट्ठपालगर्जन
अपरशैलीय—	आलवकगर्जन

१. निकाय-संग्रह, पृष्ठ ८-१०।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

वाजिरीय (बज्रपर्वतवासी)—	गूढ़ विनय, मायाजाल तन्त्र, समाज तन्त्र, महासमय तत्त्व, तत्त्वसंग्रह, भूत चामर, वज्रामृत, चक्रसमवर, द्वादशचक्र, मेरुकाद्बुद, महामाया, पदनिक्षेप, श्रुतष्पीषट्, परामदो, मर्च्युदभव, सर्वबुद्ध, सर्वगुहीय, समुच्चय, = १८ तन्त्रग्रन्थ; मरीचिकल्प, हेरम्बकल्प, त्रिसमयकल्प, राजकल्प, वज्रगन्धारकल्प, मरीचिगुहीयकल्प, शुद्धसमुच्चयकल्प, मायामरीतिकल्प । = आठ कल्पग्रन्थ ।
वैतुत्यवादी—	वैतुत्यपिटक
अन्धक—	रत्नकूट
अन्य महासांघिक—	अक्षरसारिया

इन निकायों में से वैतुत्यवाद, वाजिरिय और अन्धक—ये तीन निकाय—भारत से श्रीलंका भी पहुँचे, किन्तु महावंस के अनुसार १८ निकायों के अतिरिक्त ६ निकाय भारत में और दो निकाय श्रीलका में बहुत पीछे उत्पन्न हुए । भारत के ६ निकायों के नाम हैं—हैमवत, राजगीरिय, सिद्धार्थक, पुब्बसेलीय, अपरसेलीय तथा वाजिरिय । लंका में धर्मरुचि और सागलिय निकाय उत्पन्न हुए थे[1] । निकाय-संग्रह के अनुसार भी धर्मरुचि सागलिय और वाजिरिय निकाय बहुत पीछे लंका में उत्पन्न हुए थे । इसी प्रकार हम आगे देखेंगे कि बहुत पीछे दक्षिण भारत में भी नीलपट दर्शन नामक निकाय का भी जन्म हुआ था[2] ।

हम पहले देख चुके हैं कि द्वितीय संगीति के समय स्थविरवादी भिक्षुओं के संगायनकारकों को संख्या ७०० थी और महासांघिकों की अथवा महासंगीतिकों की संख्या १००० थी । इन्होंने अपनी अलग संगीति की और तभी से ये भिक्षु अपने को उच्च मानने लगे तथा स्थविरवाद के प्रति हीन भावना

१. महावंस ५, १२-१३ ।

हैमवता राजगिरिया तथा सिद्धत्थकापि च ।
पुब्बसैलिय भिक्खु च तथा अपर सेलिया ॥
वाजिरिया छ एतै हि जम्बुदीपम्हि भिन्नका ।
धम्मरुची सागलिया लंकादीपम्हि भिन्नका ॥

२. निकाय-संग्रह, पृष्ठ १०—२० ।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

का प्रचार करने लगे[१] । इस प्रकार बौद्धसंघ दो प्रधान निकाय-समूहों में विभक्त हो गया था और आचार्य नरेन्द्रदेव के मतानुसार वे ही दोनों निकाय विकसित होते-होते महायान और हीनयान के रूप में विभक्त हो गये थे[२] । इस विकास-क्रम के अनुसार महापण्डित राहुल सांकृत्यायन[३] ने महायान की उत्पत्ति इन पाँच निकायों के घटकों से मानी है—

महासांघिक
|
अन्धक
|
वैतुल्य (वैपुल्य) | पूर्वशैलीय | अपरशैलीय | राजगिरिक | सिद्धार्थक

= महायान (ईस्वी प्रथम शताब्दी)

इस प्रकार महासांघिक निकाय के आन्ध्रप्रदेशीय उपनिकायों की देन महायान है ।

१. हिन्दी सन्त-साहित्य पर बौद्धधर्म का प्रभाव, पृ० ७९ ।

२. बौद्ध धर्म दर्शन—आचार्य नरेन्द्रदेव, पृष्ठ १०५ ।

३. पुरातत्त्वनिबन्धावली, पृ० १०३ ।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

षष्ठ अध्याय

बौद्ध-निकायों की परम्परा

(क) स्थविरवादी परम्परा

महामहेन्द्र द्वारा त्रिपिटक का लंका ले जाना

अशोकपुत्र स्थविर महामहेन्द्र धर्म-प्रचारार्थ अन्य ४ भिक्षुओं के साथ श्रीलंका गये थे। उन्होंने वहाँ पर बौद्धधर्म के प्रचार के साथ ही भारतीय बौद्ध-साहित्य का भी प्रचार किया। उन्होंने हजारों कुलपुत्रों को प्रव्रजित तथा उपसम्पादित किया और उनकी अनुजा भिक्षुणी संघमित्रा ने महारानी अनुला प्रमुख सहित कई सौ महिलाओं को भिक्षुणी बनाया। इन दोनों भाई-बहिनों के सम्मिलित प्रयास से श्रीलंका में बौद्धधर्म की नींव दृढ़ हो गयी। वहाँ अनेक विहार बने। बुद्ध गया के बोधिवृक्ष की शाखा का रोपण तत्कालीन राजधानी अनुराधपुर में किया गया तथा पीछे उसके अनेक पौधों का रोपण विभिन्न स्थानों पर हुआ। अनेक संघारामों और चैत्यों का निर्माण हुआ। महामहेन्द्र और संघमित्रा ने जीवन-पर्यन्त श्रीलंका में ही रहकर बौद्धधर्म का प्रचार किया और अपने शिष्यानुशिष्यों को अपने पवित्र उद्देश्य में ही नियोजित किया। उनके कारण भारत और श्रीलंका में प्रगाढ़ मैत्री-सम्बन्ध स्थापित हो गया। अशोक के शिला-लेखों से हम यह जानते हैं कि ताम्रपर्णी द्वीप (श्रीलंका[1]) भी अशोक के प्रभुत्व के अन्तर्गत आने वाला पड़ोसी देश था और वहाँ भी धर्म-प्रचारक अशोक के दूत भेजे गये थे[2]। साथ ही हम महावंस से यह भी जानते हैं कि श्रीलंका के राजा 'देवानं पियतिस्स' के राज्याभिषेक के अवसर पर अशोक ने अनेक उपहार एवं शंख, मोती, मणि, माणिक्य भेजे थे और यह भी सन्देश दिया था कि मैं बौद्ध हूँ और आप भी बौद्ध अनुयायी बनें[3]। यद्यपि 'देवानं

---

१. अशोक के अभिलेख, पृष्ठ ४१।

२. वही, पृष्ठ ४१।

३. महावंस ११, १८-३६, पृष्ठ ६४-६५।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

पियतिस्स' का राज्याभिषेक पहले हो चुका था फिर भी अशोक के आदेशानुसार तथा उसके उपहारों सहित यह दूसरी बार उसका राज्याभिषेक हुआ[१]।

स्थविर महामहेन्द्र ने श्रीलंका के भिक्षुओं को सम्पूर्ण पालि त्रिपिटक पढ़ाया, कंठस्थ कराया और उन्हें उसमें प्रवीण भी कराया। यद्यपि महावंस के अनुसार वट्टगामागी अभय के शासन काल ईस्वी पूर्व २७-१ ईस्वी में त्रिपिटक, पालि और अट्ठकथा का लेखबद्ध किया जाना वर्णित है[२], किन्तु जिन-जिन देशों में अशोक द्वारा प्रेषित धर्म-प्रचारक भिक्षु गये, अपने साथ त्रिपिटक भी लेते गये, चाहे वह मौखिक रूप में ही क्यों न गया हो। उस समय त्रिपिटक के विभिन्न अंगों के भाण आचार्य थे और वे उन अंगों को कंठस्थ रखा करते थे। भरहुत, सारनाथ, सांची आदि स्थानों से प्राप्त अभिलेखों में त्रिपिटकधारी[३] पंचनैकायिक[४] आदि भाणकों के उल्लेख मिलते हैं। अट्ठकथा ग्रन्थों से तथा त्रिपिटक में भाणवारों के निर्देश से यह स्पष्ट होता है कि दीघ, मज्झिम, अंगुत्तर आदि निकायों के तथा विनय, अभिधम्म आदि पिटकों के अलग-अलग भाणक थे। कुछ भाणक त्रिपिटकधारी भी थे और यह परम्परा बुद्धकाल से ही चली आ रही थी। जिस समय अवन्ति जनपद से सौणकुटिकण्ण श्रावस्ती में भगवान् बुद्ध के पास आये थे और एक रात्रि उन्होंने भगवान् के साथ निवास किया था, रात्रि के व्यतीत होने पर भिनसार में उठकर भगवान् ने आयुष्मान् सौण से यह पूछा था कि 'भिक्षु धर्म का पाठ कर सकते हो?' तब उन्होंने सोलह अट्ठ-वाग्गियों[५] को स्वर-सहित सुनाया था[६]। इससे यह जान पड़ता है कि भिक्षु पूरे ग्रन्थ का सस्वर पाठ कर सकते थे और यह ग्रन्थ उन्हें कंठस्थ रहा करते थे। इसी कंठाग्र करने के विधि-विधान से महामहेन्द्र द्वारा पालि त्रिपिटक

---

१. करोथ से सहायस्स अभिसेकं पुनो इति।
वत्वा सहायामच्चे ते सक्करित्वा च पेसयि॥
—महावंस ११, ३६ पृ० ६५।

२. महावंस ३३, १००-१०१, पृष्ठ १९५।
टिकत्तय पालिन्व तस्या अट्ठकथाम्पि च।
मुखपाठेन आनेसुं पुब्बे भिक्खू महामती॥ १००॥

३. सारनाथ का इतिहास, पृष्ठ १३९ भिक्षुस्य बलस्य त्रैपिटकस्य।

४. स्तूपा आफ भरहुत, पृष्ठ १४२। बोधि रखितस पञ्चनेकायकस दानं।

५. सुत्तनिपात, पारायण वग्ग, ५।

६. हिन्दी विनयपिटक, ५, ३, २ पृष्ठ २११-२१३।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

श्रीलंका ले जाया गया था और वहाँ उसकी विशुद्ध परम्परा प्रारम्भ की गयी थी। यदि त्रिपिटक न गया होता तो वट्टगामणी अभय के समय में उसका लेखबद्ध किया जाना सम्भव न होता। वहाँ स्पष्ट रूप से कहा गया है कि भिक्षुओं की स्मरण-शक्ति के ह्रास को देखकर त्रिपिटक को लेखबद्ध किया गया था।

सिंहली भाषा में पालि अट्ठकथाओं का अनुवाद

'अट्ठकथा' शब्द का भाव 'भाष्य' होता है और उस भाष्य को अट्ठकथा कहते हैं, जो अन्तर्गत कथाओं को स्पष्ट करते हुए वर्ण्य-विषय की विशद व्याख्या करे। तात्पर्य, सन्दर्भ, अन्तर्गत कथा, विद्यमान वस्तु, पाठ-भेद, चरित्र-चित्रण आदि सभी बातों के समायोजन-सहित किसी अर्थ को स्पष्ट करना, खोल देना, खुलासा रूप से समझा देना ही अट्ठकथा है। अट्ठकथा की परिपाटी एक प्रकार से बुद्ध-काल में ही प्रारम्भ हो गयी थी। डा० भिक्षु धर्मरक्षित ने इस तथ्य को स्पष्ट करते हुए लिखा है—'जिस समय अशोक-पुत्र महेन्द्र स्थविर धर्म-प्रचार के लिए लंका पहुँचे, (ई० पू० ३०७) उस समय पालिसूत्रों के भाव को ठीक-ठीक समझाने के लिए तथा सूत्र-सम्बन्धी कथान्तर जानने के लिए, जब ग्रन्थ लिखने की आवश्यकता पड़ी, तब उन्होंने लंका की तत्कालीन भाषा सिंहल प्राकृत में अट्ठकथा ग्रन्थों को लिखवाया। यों तो बुद्धकालमें ही वैसे कितने सूत्रों तथा ग्रन्थों की अट्ठकथाओं का निर्माण हो चुका था, जो कंठस्थ कर ली गयी थीं। हम कह सकते हैं कि सारिपुत्र द्वारा उपदेश दिया गया ग्रन्थ महानिद्देस, चुल्ल निद्देस, सुत्तनिपात के कतिपय सूत्रों का अट्ठकथा रूप ही है। धम्म-संगणी का अट्टकथाकण्ड भी इसका अपवाद नहीं। इतना होते हुए भी 'अट्ठकथा' शब्द का प्रयोग और इसका प्रयोजन सिंहल अट्ठकथाओं के निर्माण-काल से ही वर्तमान व्यवहृत अर्थ में लिया गया है।'[१]

स्थविर महामहेन्द्र के समय में लिखी गयी अट्ठकथाओं के आज केवल नाम मात्र अवशेष हैं, क्योंकि जब आचार्य बुद्धघोष[२] भारत से श्रीलंका गये और उन्होंने पालि त्रिपिटक तथा सिंहली भाषा में लिखित अट्ठकथा-ग्रन्थों का अध्ययन किया और अपने पांडित्य को प्रमाणित करने के लिए संयुक्तनिकाय की दो गाथाओं को लेकर "विशुद्धिमग्गो" जैसे महान ग्रन्थ को रचना की, तब उनका ध्यान सिंहली अट्ठकथाओं को भी पालिभाषा में परिवर्तित करने की ओर

१. बौद्धधर्म-दर्शन तथा साहित्य, पृष्ठ १५५।

२. आचार्य बुद्धघोष का जन्मकाल, ईस्वी सन् ३८०-४४० तक माना जाता है। विशुद्धिमार्ग, प्रथम भाग, भूमिका, पृष्ठ ७।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

आकर्षित किया गया। तब उन्होंने समय-समय पर विभिन्न भिक्षुओं द्वारा साग्रह निवेदन किये जाने पर विभिन्न पालि अट्ठकथा-ग्रन्थों की रचना सिंहली अट्ठकथा-ग्रन्थों के आधार पर की। समन्तपासादिका[1] आदि से हम जानते हैं कि बुद्धघोष से पूर्व महामहेन्द्र द्वारा सिंहली भाषा में रचित पाँच अट्ठकथा-ग्रन्थ थे। उनके नाम हैं—(१) महा अट्ठकथा, (२) पच्चरिय अट्ठकथा, (३) कुरुन्दि अट्ठकथा (४) अन्धक अट्ठकथा, (५) संख्येय अट्ठकथा।

इन अट्ठकथा-ग्रन्थों का पालि में परिवर्तन होने के उपरान्त इनकी उपयोगिता घट गयी और वे धीरे-धीरे लुप्त हो गयीं। बुद्धघोसुप्पत्ति के अनुसार फूक दी गयीं[2] अथवा किसी एक चैत्य में निधान कर दी गयीं[3]। इनमें पच्चरिय, कुरुन्दि और अन्धक शब्दों से ज्ञात होता है कि इन तीन अट्ठकथाओं का सम्बन्ध दक्षिणी भारत से था। अन्धक का अर्थ है—आन्ध्र-सम्बन्धी अर्थात् अन्धक अट्ठकथा आन्ध्र देश से श्रीलंका ले जायी गयी होगी अथवा आन्ध्रदेशवासी भिक्षुओं द्वारा लिखी गयी होगी। पच्चरिय और कुरुन्दि अट्ठकथाओं के सम्बन्ध में भी अन्तःसाक्ष्य न होने के कारण केवल नाम-साम्य के आधार पर हम इन्हें भी दक्षिण-भारतीय भिक्षुओं की ही देन मान सकते हैं या मानने की कल्पना कर सकते हैं।

धम्मपदट्ठकथा के प्रारम्भ में इन अट्ठकथाओं के महत्त्व को बतलाते हुए आचार्य बुद्धघोष ने स्वयं लिखा है—

"परम्परा से लाया गया उसका सुन्दर वर्णन जो ताम्रपर्णी (श्रीलंका) द्वीप में उस द्वीप की भाषा में लिखा गया है, वह शेष प्राणियों के हितार्थ नहीं होता। शायद 'वह सारे लोकवासियों के हितार्थ हो' (ऐसी आराधना करने पर) सिंहली भाषा से मनोरम पालिभाषा में भाषान्तर कर, पण्डितों के मन में, प्रीति और आनन्द को उत्पन्न करते हुए, अर्थ–धर्म के साथ कहूँगा[4]।"

इससे स्पष्ट है कि आचार्य बुद्धघोष से पूर्व अर्थात् महामहेन्द्र द्वारा जिन पालि-अट्ठकथाओं का सिंहली भाषा में अनुवाद हुआ था, वे ही अट्ठकथायें पुनः नये रूप में पालि में परिवर्तित की गयीं। यह बात बुद्धघोसुप्पत्ति में भी कही

१. समन्तपासादिका, बाहिर निदानवन्तना।

२. बुद्धघोष उत्पत्ति, सातवाँ परिच्छेद, पृष्ठ २३।

३. त्रिपिटक-परीक्षण, पृष्ठ १०३, विशुद्धिमार्ग की भूमिका, पृष्ठ १५।

४. धम्मपदट्ठकथा, पृष्ठ १।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

गयी है[1]। सद्धम्मसंग्गहो नामक ग्रन्थ में कहा गया है कि आचार्य बुद्धघोष ने सिंहली भाषा से भाषान्तर कर मागधी भाषा में महाअट्ठकथा को लिखा। अभिधम्मपिटक से सम्बन्धित महापच्चरिय अट्ठकथा का अनुवाद किया। किन्तु उन्होंने कुछ ऐसी कथाएँ, सूत्रानुलोम, आचार्यवाद और अपना मत लिखा, जो पहले की अट्ठकथाओं में नहीं थे। यह भी कहा गया है कि प्राचीन अट्ठकथाओं में महाअट्ठकथा सुत्तपिटक की पच्चरिय अभिधम्मपिटक की और कुरुन्दि विनय पिटक की अट्ठकथायें थीं[2]।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि स्थविर महाभहेन्द्र द्वारा पालि त्रिपिटक तथा उसकी अट्ठकथायें श्रीलंका ले जायी गयी थीं और पालि अट्ठकथाओं का सिंहली भाषा में अनुवाद उन्हीं के समय कराया गया था, जो पाँचवीं शताब्दी ईस्वी तक अर्थात् आचार्य बुद्धघोष के श्रीलंका पहुँचने तक, विद्यमान थीं, जिनके आधार पर उन्होंने पुनः पालिभाषा में अट्ठकथा-ग्रन्थों का सम्पादन किया।

आलोक विहार में चतुर्थ संगीति

हम पहले देख आये हैं कि स्थविरवाद की तीन संगीतियाँ अशोक-काल तक सम्पन्न हो चुकी थीं और त्रिपिटक-साहित्य में कुछ सूत्रों और कथावत्थु जैसे ग्रन्थ का समावेश हो गया था। उसके पश्चात् पालि-साहित्य से सम्बन्धित चौथी संगीति फिर श्रीलंका में बट्टागामणी अभय (ईस्वीपूर्व २७-१ ईस्वीसन्) के समय में आलोकविहार में सम्पन्न हुई थी[3]। इस संगीति में यह अनुभव किया गया था कि यदि बुद्ध-वचन ग्रन्थारूढ़ नहीं किये गये तो थोड़े दिनों के बाद ही सारे बुद्ध-वचन लुप्त हो जायेंगे। इस संगीति में पाठों का बहुत कुछ हेर-फेर हुआ दीखता है। डॉ० भिक्षुधर्मरक्षित ने इस सम्बन्ध में प्रकाश डालते हुए लिखा है—'हम देखते हैं कि बुद्ध के प्रधान अग्रश्रावक सारिपुत्र का परिनिर्वाण बुद्ध परिनिर्वाण से पूर्व हो चुका था, किन्तु महापरिनिब्बान सुत्त में सारिपुत्र द्वारा बुद्ध-गुण सम्बन्धी कहा गया पाठ आया हुआ है,[4] जो वहाँ नहीं होना चाहिए था। बहुत-सी गाथाओं की भी रचना उसी समय हुई, जो बुद्ध द्वारा भाषित न थीं। ऐसी गाथायें दीघनिकाय और अंगुत्तर निकाय में

१. बुद्धघोसुप्पत्ति, पृष्ठ २३।
२. विशुद्धिमार्ग, प्रथम भाग, भूमिका, पृष्ठ, १६।
३. शासनवंसो, पृष्ठ २०-२२।
४. महापरिनिब्बानसुत्त, पृष्ठ २२।

Ac. Gunratnasuri MS　　Jin Gun Aradhak Trust

बहुत मिलती हैं, जिन्हें स्थल को देखकर सूत्र में कही गयी बातों को ही गाथा में कह दिया गया है। ऐसा भी हो सकता है कि ये गाथायें सूत्र की सारी बातों को थोड़े से शब्दों में ही याद कर लेने के लिए बनायी गयी थीं और उनकी रचना चौथी संगीति में नहीं, प्रत्युत प्रथम संगीति के समानान्तर काल में ही हुई थी। फिर भी इसमें तो कोई सन्देह नहीं कि महापरिनिब्बानसुत्त के अन्त में आयी पाँचवीं गाथा[1] बिल्कुल पीछे मिलायी गयी है, जो बिल्कुल ऊटपटांग और इतिहासविरोधी है। इस गाथा के सम्बन्ध में मैंने लंका के बहुत से ताड़-पत्र पर लिखे दीघनिकाय को देखा, किसी में भी न पाया। किन्तु बर्मा का कोई भी ऐसा दीघनिकाय नहीं है जिसमें यह न हो। विनयपिटक में महा-खन्धक की भी कई गाथायें पीछे मिलायी गयी हैं, जिनका प्रक्षिप्त होना सर्व-सम्मत है। ये भी गाथायें तीसरी संगीति तक न थीं और सम्भव है कि चौथी संगीति मे न रही हों। ऐसे ही अनेक पाठ-परिवर्तन हुए हैं, जिनके लिए काफी पर्येषण अपेक्ष्य है'[2]।

त्रिपिटक का लिपिबद्ध किया जाना

श्रीलंका के आलोक विहार में सम्पन्न हुई चतुर्थ संगीति को सासनवंस में पोत्थकारोह संगीति कहा गया है[3]। सारत्थदीपनी नामक विनय की टीका में भी इस संगीति को पुस्तकारोह (--पोत्थकारोह) संगीति ही कहा गया है[4]। साथ ही यह भी कहा गया है कि आलोक विहार एक लेण (=गुफा) था और यह मलय जनपद में स्थित था। वहाँ ५०० स्थविरों ने एकत्र होकर चतुर्थ संगीति को सम्पादित किया था और अन्य संगीतियों के क्रम में यह चतुर्थ संगीति थी[5]।

---

१. चत्तालीस समादन्ता कैसा लौमा च सब्बसौ।
देवा हरिसुं एकैकं चक्कवाल परम्परा॥
—महापरिनिब्बानसुत्त, पृष्ठ १९८।

२. बौद्ध धर्म दर्शन तथा साहित्य, पृष्ठ १५६ (डॉ० भिक्षु धर्मरक्षित)

३. चतुत्थसंङगीतिसचिसा हि पोत्थकारोहसङ्गीति ति। सासनवंसो, पृष्ठ २२।

४. वही, पृष्ठ २२।

५. वही, पृष्ठ २२—तन्व यथावुत्तसङ्गीतियो उपनिधाय चतुत्थसंङगीति येव नामा ति वेदितब्बा।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

जैसा कि पहले कहा गया है कि इस चतुर्थ संगीति में सम्पूर्ण पालि त्रिपिटक और अट्ठकथा-ग्रन्थों का संगायन हुआ था और फिर उन्हें लिपिबद्ध कर लिया गया था। दीपवंस में कहा गया है—'पूर्वकाल से पालित्रिपिटक और उसकी अर्थकथा (=अट्ठकथा) (भी) महामतिमान् भिक्षु कंठाग्र करके ही (सुरक्षित) लाये थे। इस समय प्राणियों की हानि होती देख भिक्षु एकत्र हुए, और धर्म की चिर स्थिति के लिए उसे पुस्तक रूप में लिखा लिया।'[1]

महावंस में भी यही बात कही गयी है[2]।

सासनवंस में बतलाया गया है कि उस समय भिक्षुओं को बौद्ध ग्रन्थों का पाठ स्मरण रखना जब कठिन हो गया, तब उन्होंने उसे लुप्त होने से बचाने के लिए वट्टगामणी अभय के छठें वर्ष में भविष्य की चिन्ता करते हुए ५०० महा-स्थविरों ने मिलकर चतुर्थ संगीति की थी और बुद्ध-वचनों को अट्ठकथा सहित लिपिबद्ध कराया था[3] और उसके उपरान्त ही सिंहल द्वीप तथा भारत में भिक्षु-संघ उसी प्रकार विभिन्न निकायों में विभक्त हो गया था, जिस प्रकार मान-सरोवर से निकलने वाली नदियाँ गंगा, यमुना आदि नामों से विभक्त हो गयी हैं[4]। भारत के निकायों की चर्चा हम ऊपर कर आये हैं और सिंहल द्वीप के निकायों के विवरण से, यद्यपि इस शोध-प्रबन्ध से सम्बन्ध नहीं है फिर भी हम यथास्थान उन पर विचार करेंगे।

(ख) महायानी परम्परा

महायान का प्रचार-प्रसार

भगवान् बुद्ध ने समस्त सांसारिक दुःखों से मुक्ति के लिए मध्यम मार्ग का उपदेश दिया था, जिस पर चलकर व्यक्ति यथाशीघ्र निर्वाण का साक्षात्कार कर सकता है और वह इस ऐहिक जीवन में ही परमानन्द की अनुभूति प्राप्त कर सकता है। परम तत्त्व का साक्षात्कार कर जन्म, जरा,

१. दीपवंस, १९, ४४-४५ पृष्ठ ९९।

२. टिकत्तय पालिन्य तस्सा अट्ठकथम्पि च।
मुखपाठेन आनेसु पुब्बे भिक्खु महामती॥
हानिं दिस्वान सत्तानं तदा भिक्खु समागता।
चिरट्ठित्थं धम्मस्स पोत्थकेसु लिखापयुं॥—महावंस ३३, १००-१०१॥

३. सासनवंस, पृष्ठ २२।

४. वही, पृष्ठ २२।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

व्याधि और मृत्यु से सदा के लिए मुक्त हो सकता है। साथ ही इस मध्यम मार्ग की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि वह यह भी बतलाता था कि व्यक्ति को किसी भी प्रकार वैचारिक रूप से भी किसी व्यक्ति विशेषत: शास्ता या मार्गोपदेष्टा का गुलाम नहीं बनना चाहिए। अपनी बुद्धि से उपदिष्ट वचनों की परीक्षा करके ही उसे ग्राह्य होने पर ग्रहण करना चाहिए, अन्यथा त्याग देना चाहिए।[१] इस भावना का, ऐसा प्रभाव पड़ा कि कुछ काल पश्चात् बौद्ध धर्म दो प्रमुख निकायों में विभक्त हो गया—एक स्थविरवाद था, जो प्राचीन परम्परापन्थी था और वह मूल बुद्धवचनों के अनुसार अनुगमन करने वाला था। उसके लिए भगवान् बुद्ध केवल शास्ता, मार्गोपदेष्टा और परम हितैषी थे, किन्तु दूसरा, जो महासांघिक निकायों से विकसित होकर महायान के नाम से पल्लवित हुआ, उसमें अब भगवान् बुद्ध त्राता, मुक्तिदाता, सर्वजनहितैषी और मोक्ष-प्रदाता बन गये। उनका परिनिर्वाण उस समय तक नहीं होता, जब तक संसार के दु:खी प्राणियों का उद्धार नहीं हो जाता। बौद्धधर्म को लोक-परक बनाने की भावना से ही इस महायान का विकास हुआ था और इसमें सर्वजन-कल्याण की भावना निहित थी। सभी प्राणी बोधिसत्त्व होकर पार-मिताओं का पालन कर बुद्ध हो सकते हैं। बुद्ध होना केवल किसी व्यक्तिविशेष के लिए सीमित नहीं है और जब प्रत्येक व्यक्ति बुद्ध हो सकता है, तब श्रावक-बोधि उसके लिए महत्वपूर्ण नहीं रहता। इस प्रकार महायान के सामने स्थविरवाद हीन-सा दीखने लगा और महायानियों द्वारा हीनयान के नाम से उसे अभिहित भी किया गया[२]। अब महायान में असंख्य बोधिसत्त्वों, देवी-देवताओं की भी कल्पना कर ली गयी। भक्ति-भावना, पूजा, गुरु-अर्चना आदि ने जोर पकड़ा और अन्धश्रद्धा-वशीभूत जनता स्थविरवाद की अपेक्षा महायान को मानने लगी। भगवान् बुद्ध के परिनिर्वाण से लगभग ४०० वर्षों के पश्चात् प्रथम शताब्दी ईस्वी में महायान की उत्पत्ति हुई थी और हम पहले देख आये हैं कि महायान की उत्पत्ति में महासांघिक निकायों के अन्धक उपनिकाय के वैपुल्य, पूर्वशैलीय, अपरशैलीय, राजगिरिक और सिद्धार्थक के सम्मिलित स्वरूप का नाम ही महायान था[३] और धान्यकटक का महाचैत्य इनका मूल

---

१. कालाम सुत्त, अंगुत्तर निकाय, पृष्ठ १५१-१५७।
साथ ही तत्त्वसंग्रह टीका, पृष्ठ १२ में अवलोकनीय 'परीक्ष्य मद्वचो ग्राह्यम् भिक्षवो न तु गौरवात्।'

२. सद्धर्मपुण्डरीक–'न हीनयानेन नयन्ति बुद्धाः।' पृष्ठ ३१।

३. पुरातत्त्व-निवन्धावली, पृष्ठ १०३।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

केन्द्र था, जहाँ पीछे नागार्जुन ने अपने शून्यवाद आदि महायान के दार्शनिक सिद्धान्तों के प्रतिपादन से दार्शनिक जगत् में एक हलचल मचा दी थी। यह महायान कालान्तर में तान्त्रिक प्रवृत्तियों से ओतप्रोत होकर वज्रयान-गर्भित हो गया और फिर उसी से सहजयान का विकास हुआ और तदुपरान्त सिद्धों का युग आया। महायान के प्रचार एवं प्रसार का इतिहास बड़ा ही अद्भुत तथा रोमांचकारी है। अद्भुत इस अर्थ में है कि जिन स्थानों पर बैठकर भगवान् सम्यक्सम्बुद्ध ने अपने निर्मल, परिशुद्ध चतुरार्यसत्य का उपदेश दिया था और भिक्षुओं को तथागत-पूजा तथा भक्ति-भावना से दूर रहकर केवल आत्म-शुद्धि और योग-भावना में निरत रहने का उपदेश दिया था, वहीं अब महायानी भिक्षुओं ने स्वयं तथागत के सम्बन्ध में विभिन्न प्रकार की कल्पनायें कर लीं। असंख्य कल्पित बुद्धों, बोधिसत्त्वों के साथ ही उनकी शक्तियों के रूप में रक्ततारा, श्वेततारा आदि की कल्पना कर ली। अक्षोभ्य, रत्नसम्भव, अमिताभ, अमोघसिद्धि और वैरोचन[१] नामक बुद्धों की पंच मूर्तियां मान ली गयीं और उन सभी भिक्षुओं को भविष्य में बुद्ध होने की घोषणा की गयी, जिन्होंने इसी जन्म में निर्वाण का साक्षात्कार कर लिया था। ये महायानी भिक्षु उन्हीं स्थानों में रहने भी लगे और अपने द्वारा रचित नवीन काल्पनिक ग्रन्थों, स्तोत्रों, धारणियों, मन्त्रों, त्राटकों आदि से जनसाधारण को अपनी ओर आकर्षित करने लगे। भगवान् बुद्ध की मूर्तियों तक को मणि-माणिक्य, स्वर्णहार, मुकुट-कुण्डल आदि से अलंकृत किया जाने लगा और बुद्ध का स्वरूप मानवीय न रहकर अलौकिक पुरुष का बना दिया गया। ऐसे अलौकिक पुरुष चमत्कारिक, ज्ञानपुञ्जों से युक्त होते हुए अपनी इच्छा के अनुसार जहाँ कहीं भी अवतरित हो सकते हैं। पारमिताओं में भी दस के स्थान पर घटाकर उनकी संख्या छः कर दी गयी और स्थविरवादी भिक्षुओं का महत्त्व घटाने का अनेक प्रयत्न किया गया। इस प्रकार महायानियों के सम्मिलत प्रयास से पहली शताब्दी ईस्वी से लेकर बारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक, जब तक यवन आक्रमणकारियों द्वारा भारत में बौद्ध विहारों तथा उनके साथ ही उनके आवासिक भिक्षुओं का विनाश नहीं कर दिया गया, तब तक जीता जागता रहा। पुरातात्त्विक अन्वेषणों में प्राप्त सामग्रियों से प्राप्त साक्ष्यों द्वारा हम जानते हैं कि उक्त समय तक इन विहारों में महायान बौद्धधर्मावलम्बियों का महत्त्व था। इनकी संख्या अधिक थी और महायान-सम्बन्धी मूर्तियों तथा उपमूर्तियों का ही निर्माण अधिक होता था। ५ वीं से लेकर ७ वीं

१. बौद्ध स्तोत्र संग्रह, पृष्ठ २०-२२।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

शताब्दी ईस्वी तक, जब चीनी यात्री फाहियान, ह्वेनसांग, इत्सिंग आदि ने भारत की यात्रा की थी, यद्यपि स्थविरवादी (हीनयानी) और महायानी दोनों ही प्रकार के भिक्षु उत्तर भारत के प्रायः सभी विहारों में रहते थे, जिनमें तक्षशिला, मथुरा, कान्यकुब्ज, श्रावस्ती, कुशीनगर, सारनाथ, राजगृह, बुद्धगया, ताम्रलिप्ति, धान्यकटक आदि के विहार प्रमुख थे, लेकिन ऐसा कोई वर्णन नहीं मिलता है कि हीनयान और महायान में कभी किसी प्रकार का कोई संघर्ष हुआ हो। दोनों निकायों के परम शास्ता एक ही थे। दोनों का लक्ष्य एक ही था। केवल साधनामार्ग देश-काल के अनुसार भिन्न हो गये थे। एक शीघ्र सांसारिक दुःखों से मुक्ति चाहता था तो दूसरा सभी प्राणियों की दुःख-निवृत्ति के उपरान्त स्वयं सम्यक्सम्बुद्ध होना चाहता था। एक अर्हत्त्व की आकांक्षा करता था, तो दूसरा सम्यक्सम्बोधि की। एक आत्म-कल्याण की बात सोचता था, तो दूसरा सर्वजन-हित, सर्वजन-कल्याण की। एक के सामने बहुजनहिताय, बहुजनसुखाय का लक्ष्य था, तो दूसरा विश्व के मानव मात्र का कल्याण चाहता था। वह सभी प्राणियों के दुःखों को स्वयं लेकर उनके कल्याण की कामना करता था। वह अपने पुण्य से सबको प्रमुदित और आनन्दित देखना चाहता था। स्त्रियों के कल्याण की भी कामना करता था[1]—

यत्किंचिज्जगतो दुःखं तत्सर्वं मयि पच्यताम्।
बोधिसत्त्वशुभैः सर्वैर्जगत् सुखितमस्तु च[2] ॥

महायान की अपनी कुछ विशिष्ट विशेषताएँ भी थीं, जिनके ही कारण अनेक बोधिसत्त्वों, बुद्धों, देवी-देवताओं की कल्पना की गयी और करुणामय बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर, मंजुश्री आदि का प्रादुर्भाव हुआ। महायान की इन विशेषताओं में सात प्रमुख थीं—

१. महायान महान् और विशाल है, क्योंकि उसमें सम्पूर्ण जीव-जगत् के कल्याण की भावना है।

२. महायान में तो सारे जीवों के त्राण का साधन है।

३. महायान का लक्षण बोधि-प्राप्ति है।

४. महायान का आदर्श बोधिसत्त्व है, जो प्राणियों के कल्याणार्थ सदा प्रयत्नशील रहता है।

---

१. बोधिचर्यावतार, दशम परिच्छेद।

२. वही, १०, ५६।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

५. महायान में भगवान् बुद्ध ने उपाय-कौशल्य से प्राणियों के अनुकूल नाना प्रकार का उपदेश दिया, किन्तु उनके सभी उपदेश परमार्थतः एक हैं।

६. बोधिसत्त्व की दस भूमियों का महायान में विधान है।

७. महायान के अनुसार भगवान् बुद्ध सभी प्राणियों को आवश्यकताओं को पूर्ण करते हैं।[1]

जैसा कि हमने महायान की करुणा और भक्ति के सम्बन्ध में ऊपर देखा है, ये सारी भावनाएँ लोक-कल्याण की करुणा से प्रेरित हैं। अवलोकितेश्वर की प्रार्थना में हम पाते हैं कि वे महाकरुणा से प्रेरित होकर प्राणियों की दुःख-शान्ति की प्रार्थना करते हैं—

'मैं करबद्ध सभी दिशा के सम्बुद्धों से प्रार्थना करता हूँ कि जो प्राणी ममता के कारण सांसारिक दुःख में पड़े हैं, उनके लिए धर्म के दीपक को प्रज्वलित करें। मैं उन सभी आत्मनिग्रही बुद्धों से आग्रह करता हूँ कि जो महापरिनिर्वाण प्राप्त करने के लिए प्रस्तुत हैं, वे असंख्य युगों तक रुके रहे, जिससे यह संसार अन्धकार से आवृत न हो जाय। मैंने अपनी साधना से जितने भी पुण्य प्राप्त किये हैं, उनसे सभी प्राणियों के दुःख शान्त हों।'[2] इस प्रकार बौद्ध धर्म का महायान लोकपरक भावना से प्रेरित होकर वैयक्तिक साधना के स्थान पर लोकहितसाधक साधना के रूप में परिवर्तित हो गया और धीरे-धीरे चौथी शताब्दी तक विज्ञानवाद तथा शून्यवाद दो प्रमुख दार्शनिक उपनिकाय-समूहों में विभक्त हो गया और उसका यह विकासक्रम आठवीं तथा नौवीं शताब्दी तक चलता रहा। पीछे भी उसका यह क्रम अवरुद्ध नहीं हुआ, परन्तु ज्यों-ज्यों विकसित होता गया, बुद्ध की मूल शिक्षाओं से दूर हटता गया और आचार्यों की लोकहितसाधक भावना से प्रेरित होकर प्रचारित साधना ही उसके पास जन-समाज के लिए थाती रह गयी[3]।

हम आगे देखेंगे कि महायान के प्रचार-प्रसार के साथ भारत के बौद्ध विहारों में ७वीं शताब्दी में कहाँ-कहाँ कितने महायानी और हीनयानी भिक्षु थे और तब इन दोनों निकायों की तुलनात्मक संख्या ज्ञात हो सकेगी। हीनयान भारत के अतिरिक्त श्रीलंका, वर्मा और थाई देश में ही प्रचारित हुआ। अशोक के धर्म-प्रचारक जिन-जिन देशों में स्थविरवाद को ले गये थे, उनमें भारत

१. बौद्ध दर्शन तथा अन्य भारतीय दर्शन, प्रथम भाग, पृष्ठ ५६२।

२. बोधिचर्यावतार, तृतीय परिच्छेद।

३. हिन्दी सन्त साहित्य पर बौद्धधर्म का प्रभाव, पृष्ठ ९८।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

के प्रदेशों के अतिरिक्त अब केवल श्रीलंका और बर्मा ही पूर्वबौद्ध-धर्मावलम्बी रहे, किन्तु पहली शताब्दी ईस्वीपूर्व में महायान का जो प्रचार-प्रसार प्रारम्भ हुआ, वह अहर्निश बढ़ता और फैलता ही गया। ७वीं शताब्दी में महायान भारत से नेपाल, तिब्बत आदि पर्वतीय प्रदेशों में फैला था और वहीं से चीन भी गया था। सोङ्०चन गम्बो के समय में यह तिब्बत का राष्ट्रधर्म बना था। इससे पूर्व, प्रथम शताब्दी ईस्वोपूर्व में ही कनिष्क के समय में यह गान्धार, काशगर, खोतन, चीनी तुर्किस्तान, चीन, कोरिया, मञ्चूरिया और जापान तक पहुँच चुका था। इधर श्रीलंका, बर्मा, थाईलैण्ड, लाओस, मलयेशिया, दक्षिणी पूर्वी एशिया के द्वीपसमूहों में भी महायान के प्रचारक दूत पहुँचे थे। कश्मीर, लद्दाख, हिमांचल प्रदेश, सिक्किम तथा भूटान के अतिरिक्त लोहित डिविजन आदि के इलाके भी महायान से प्रभावित हो चुके थे। ग्यारहवीं शताब्दी के भारतीय राजाओं तथा रानियों ने भारत में जो कुछ भी बौद्धधर्म का निर्माण किया, वह महायान से ही सम्बन्धित था। ग्यारहवीं शताब्दी के अन्तिम भाग में वाराणसी की महारानी कुमारदेवी, जिसने सारनाथ में धर्म-चक्र-जिन-विहार का निर्माण कराया था, परम महायान-अनुयायिनी थी।[१] गोविन्दचन्द्र की द्वितीय महिषी वसन्तदेवी भी महायान बौद्धधर्म की अनुयायिनी थी।[२]

इसी प्रकार बंगाल से लेकर पंजाब तक और हिमाचल से लेकर दक्षिण में समुद्रपर्यन्त महायान बौद्धधर्म का प्रचार-प्रसार बारहवीं शताब्दी के मध्यभाग तक बना रहा। कन्हेरी की गुफाओं से प्राप्त एक लेख से ज्ञात होता है कि १४वीं शताब्दी तक महायानी बौद्ध वहाँ विराजमान थे।[३]

महायान की उत्पत्ति पहली शताब्दी ईस्वी में हुई थी और तभी से उसका विकास होना प्रारम्भ हुआ था और बड़ी तीव्र गति से उसका प्रचार एवं प्रसार हुआ। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से भले ही इसका आविर्भाव धान्यकटक में माना जाय और महासांघिकों के आन्ध्रप्रदेशीय कतिपय निकायों से महायान का

१. सारनाथ का इतिहास, पृष्ठ १५७।

२. वही, पृष्ठ ९२।

'श्रीमद्गोविन्दचन्द्रदेवस्य प्रतापवशतः राज्ञी श्रीप्रवरमहायानयायिन्यौः परमोपासिका।'

३. रिपोर्ट आफ दि बुद्धिस्ट केव टेम्पुल्स एण्ड देयर इन्सक्रिप्शन्स, पृष्ठ ६१।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

आविर्भाव माना जाय, किन्तु पहली शताब्दी ईस्वी में ही कनिष्क के समय में सम्पूर्ण भारतवर्ष में महायानी प्रवृत्ति निखरने लगी थी। कुण्डलवन विहार की संगीति जिसे भारतीय संगीतियों की परम्परा में चौथी संगीति मानते हैं, यद्यपि महायानी संगीति न होकर थेरवादी ही थी, किन्तु महायान का प्रचार तभी से जोरों पर होने लगा और कालान्तर में उसने विश्वव्यापी रूप ग्रहण कर लिया। यदि उसे एकदेशीय या एकांगी प्रयत्नों द्वारा बल प्रदान किया गया होता तो वह इतना शक्तिशाली नहीं हो पाता और न उसे विश्वसनीय सफलता ही प्राप्त होती। उस समय महायान अपनी लोककल्याणपरक भावना के कारण और श्रद्धाजनित पूजा-भक्ति से प्रेरित होकर विकसित हुआ तथा उसी भावना से समादृत होकर आगे बढ़ता गया। इसमें विकास के साथ-साथ नवीन बातों के ग्रहण और कठोर नियमों की प्रतिबद्धता के प्रति कोमलता का भाव था। बहुत से ऐसे कठोर नियम, जिन्हें हीनयानी भिक्षु मानते थे, उन्हें महायान ने छोड़ दिया अथवा उसके लिए वैचारिक और व्यक्तिगत स्वतन्त्रता प्रदान कर दी और व्यक्ति-व्यक्ति के हृदय में बुद्ध तथा सम्बोधि की भावना आप्लावित कर दी। इससे उसका आकर्षण और बढ़ गया और यही कारण था कि जहाँ-जहाँ महायानी सन्देश-वाहक पहुँचे वहाँ-वहाँ उनका हार्दिक स्वागत हुआ और उसके प्रचार-प्रसार में कोई बाधा नहीं पड़ी।

संस्कृत में बौद्ध साहित्य का सृजन

भगवान् बुद्ध ने अपना उपदेश जनभाषा पालि में किया था और भिक्षुओं को भाषा-सम्बन्धी दुराग्रह से दूर रहकर अपनी-अपनी भाषा में धर्म सीखने की स्वतन्त्रता प्रदान की थी, उनके जीवन-काल में ही कुछ ब्राह्मणवंशीय भिक्षु, जिनको कि छन्दस् (वैदिक भाषा) से अधिक प्रेम था, चाहते थे कि बुद्धवाणी भी छन्दस् में निरूपित कर दी जाय और भिक्षु छन्दस् में ही बुद्धवचनों का अभ्यास करें।

विनयपिटक में इस सम्बन्ध में एक कथा आती है, जिसमें कहा गया है कि उस समय यमेण और तेकुल नामक ब्राह्मण जाति के छान्दसभाषी दो भाई थे, जो भिक्षु हो गये थे, वे एक दिन, जहाँ भगवान थे, वहाँ गये। जाकर भगवान् को प्रणाम कर एक ओर बैठ गये। उन्होंने भगवान् से निवेदन किया—'भन्ते ! इस समय नाना नाम, गोत्र, जाति, कुल के पुरुष प्रव्रजित होते हैं। वे अपनी-अपनी भाषा में बुद्धवचन को कहकर उसे दूषित करते हैं। अच्छा हो, भन्ते ! हम बुद्धवचन को छन्दस् में बना दें। भगवान् ने उन्हें फटकारा और भिक्षुओं

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

को सम्बोधित करके कहा—'भिक्षुओ ! बुद्धवचन को छन्दस् में नहीं करना चाहिए। जो करेगा, वह दुष्कृत का अपराधी होगा। भिक्षुओं ! अनुमति देता हूँ, अपनी-अपनी भाषा में बुद्धवचन को सीखने की[1]।'

इसका प्रभाव यह पड़ा कि भगवान् बुद्ध के जीवनकाल में फिर किसी भिक्षु ने बुद्धवाणी को छन्दस् में करने का साहस नहीं किया, किन्तु भगवान् बुद्ध के महापरिनिर्वाण के लगभग ४०० वर्षों के व्यतीत होते ही पुनः छन्दस् और संस्कृत के प्रति कुछ भिक्षुओं में ममत्व जागा और परिणामस्वरूप अनेक बौद्ध ग्रन्थों की रचनाएँ संस्कृत में होने लगीं। पहले कुछ गाथायें, धारणियाँ, स्तोत्र और सूत्रादि की रचनाएँ हुईं। इनकी भाषा शुद्ध संस्कृत भी नहीं थी। गद्यशैली अथवा पद्य-रचना दोनों ही पालि-संस्कृत-मिश्रित थी। पारिभाषिक शब्दावलियाँ या तो पालि की ही ज्यों की त्यों रहने दी गयीं या उनका संस्कृतकरण कर दिया गया। फिर भी वे शब्दावलियाँ पालि-त्रिपिटक की ही थीं। तत्कालीन महायानी बौद्ध विद्वानों ने इस भाषा का नाम संघा भाषा रखा और संघाभाषा की भूरि-भूरि प्रशंसा की[2]। उन्होंने यह भी कहा कि संघाभाषा का समझना बहुत कठिन है। वह सम्यक्सम्बुद्धों को भाषा है। उपायकौशल्य से तथागत उसका उपदेश देते और धर्मों को प्रकट करते हैं[3]। संघा भाषा सभी को जानना आवश्यक होता है। बिना संघाभाषा जाने कोई भी बुद्ध नहीं हो सकता[4]। साथ ही तथागत के बड़े-बड़े श्रावक भी संघाभाषा को सरलता से नहीं समझ पाते हैं क्योंकि तथागत की संघाभाषा दुर्विज्ञेय होती है। तथागत कुछ बातों को स्पष्ट न बतला कर

---

१. विनयपिटक, पृष्ठ ४४५।
'अनुजानामि भिक्खवे सकाय निरूत्तिया बुद्धवचनं उग्गण्हितुं।'

२. सद्धर्मपुण्डरीक, उपायकौशल्यपरिवर्तः, पृष्ठ २१।
दुर्विज्ञेयं शारिपुत्र संघा।

३. वही, पृष्ठ २१—भाष्यं तथागतानामर्हतां सम्यक्संबुद्धानाम्।

४. सद्धर्मपुण्डरीक, पृष्ठ ४३।

एतादृशी देशननायकानामुपायकौशल्यमिदं वरिष्ठम्।
बहूहि संधावचनेहि चोक्तं, दुर्बोध्यमेतं हि अशिक्षितेहि ॥
तस्मादि संधावचनं विजानिया, बुद्धान लोकोचरियाण तायिनाम्।
जहित्व काङ्क्षा विजहित्व संशयं भविष्यकथा बुद्ध जनेथ हर्षम् ॥

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

गोपनीय भी रखते हैं, किन्तु वह जो कुछ भी उपदेश देते हैं, संघाभाषा में ही[१]।

ऐसा नहीं समझना चाहिए कि केवल महायान के ग्रन्थ ही संस्कृत में लिखे गये, प्रत्युत स्थविरवादी धर्म के भी ग्रन्थ संस्कृत में लिखे गये, किन्तु इन सबकी भाषा संघाभाषा-जैसी ही है। इसे कोई गाथा-संस्कृत कहता है, तो कोई मिश्र संस्कृत या बौद्ध-संस्कृत। प्रोफेसर एजर्टन ने इसका नाम संकर संस्कृत दिया है[२]। आचार्य नरेन्द्रदेव का कथन है कि संस्कृत की चारों ओर प्रतिष्ठा होने से धीरे-धीरे इस पर संस्कृत का प्रभाव पड़ने लगा। आरम्भ में यह प्रभाव थोड़ा और आंशिक था। आगे चलकर इसमें वृद्धि हुई, किन्तु पूर्णरूपेण संस्कृत का प्रभाव नहीं पड़ सका[३]। प्रोफेसर एजर्टन ने इस भाषा का व्याकरण एवं कोष लिखकर बड़ा उपकार किया है। ये ग्रन्थ येल विश्वविद्यालय से सन् १९५३ में प्रकाशित हुए हैं[४]।

भगवान् बुद्ध ने अपनी-अपनी भाषा में बुद्धवचनों को सीखने की अनुमति देते हुए छन्दस् के प्रति प्रतिबन्ध लगाया था, किन्तु पीछे उसी छन्दस् की पुत्री संस्कृत ने बौद्ध भिक्षुओं को अपनी ओर आकर्षित किया और उनसे उसे ग्रहण करने के लोभ का संवरण नहीं किया जा सका। फलतः स्थविरवाद तथा महायान के धर्मग्रन्थों की रचनाएँ संस्कृत में होने लगीं। महायान इसमें अग्रणी था और महायान के प्रायः सभी ग्रन्थ संस्कृत में लिखे गये और अब संस्कृत भाषा में लिखित बौद्धधर्म के ग्रन्थ प्रायः महायान के समझे जाने लगे।

कुण्डलवन विहार में चतुर्थ संगीति का आयोजन

कनिष्क के समय में कश्मीर की राजधानी श्रीनगर के पास कुण्डलवन विहार में चतुर्थ संगीति का आयोजन हुआ था, जिसमें ५०० अर्हत् भिक्षु, ५००

१. वही, पृष्ठ ८५, आश्चर्यप्राप्ता अद्भुतप्राप्ता यूयं काश्यप यद् यूयं संघाभाषितं तथागतस्य न शक्नुथ अवतरितुम्। तत्कस्य हेतोः? दुर्विज्ञेयं काश्यप तथागतानामर्हतां सम्यक्संबुद्धानां संघाभाषितमिति—

धीरबुद्धि महावीरा चिरं रक्षन्ति भाषितम्।
रहस्यं चापि धारेन्ति न च भाषन्ति प्राणिनाम्॥

२. बौद्धधर्म-दर्शन पृष्ठ १२८।

३. वही, पृष्ठ, १२९।

४. वही, पृष्ठ १२९।

Ac. Gunratnasuri MS　　Jin Gun Aradhak Trust

बोधिसत्त्व और ५०० बौद्ध विद्वानों ने भाग लिया था। इस संगीति के प्रधान भिक्षु अश्वघोष के गुरु पार्श्व तथा वसुमित्र थे। इसका वर्णन ह्वेनसांग तथा बु-स्टोन ने भी किया है। धर्म और विनय के संगायन के बाद उसका नाम उपदेश-शास्त्र तथा विभाषा-शास्त्र रखा गया था। विभाषा को आज भी चीनी लोग कश्मीरशी कहते हैं। इस संगायन में सम्पूर्ण बुद्ध-वचनों का संस्कृत में अनुवाद किया गया था। समूची कृति ताँबे के पत्रों पर अंकित की गयी थी और उन ताम्रपत्रों की पुस्तक को पत्थर की मंजूषा में बन्द करके एक स्तूप के अन्दर जो उसी के लिए बनाया गया था, स्थापित किया गया था। वही महा-विभाषा नामक त्रिपिटक का भाष्य था, जिसका चीनी अनुवाद आज भी मिलता है। कनिष्क द्वारा बनवाया हुआ १०० फुट ऊँचा, १३ मंजिल स्तूप नौवीं शताब्दी तक था[१]।

यद्यपि यह संगीति महायानी नहीं थी, क्योंकि अश्वघोष और कनिष्क सर्वास्तिवादी थे, किन्तु इस संगीति के उपरान्त ही महायान का प्रचार बड़ी तेजी से प्रारम्भ हुआ। चतुर्थ संगीति के नाम से यद्यपि लंका में हुई बट्टगामणी अभय के समय की संगीति मानी जाती है, किन्तु लगभग उसी समय कुण्डलवन विहार में सम्पन्न हुई यह संगीति भी चतुर्थ संगीति के ही नाम से प्रसिद्ध है और ये दोनों संगीतियाँ हीनयानी बौद्धों की ही रहीं। किन्तु महायान के उत्तरोत्तर प्राबल्य के कारण इसे लोगों को महायान की संगीति होने का भ्रम हो गया और प्राय: लोग इस संगीति को महायानी संगीति समझते हैं, जो यथार्थ नहीं है। विद्वानों ने इस बात को स्वीकार किया है कि महायान की उत्पत्ति सर्वप्रथम आन्ध्र से हुई और वहाँ से वह उत्तरगामी बना। मगध में उसके व्यापक प्रचार के उपरान्त वह उत्तरापथ की ओर चला और वहाँ उड्डियान एवं बामियान तक लोकोत्तरवादियों के आवास पाये जाते थे। पहली शताब्दी ईस्वी के समाप्त होते-होते महायान सुदूर उत्तर-पश्चिम में भारत की सीमा का अतिक्रमण कर चुका था। दूसरी शताब्दी से सुग्ध, पर्थव और खोतानी भिक्षुओं के सहारे महायान मध्य एशिया तथा चीन में प्रसारित हुआ[२]। कुछ विद्वानों का यह भी विचार है कि कुण्डलवन विहार संगीति में ५०० बोधिसत्त्वों के सम्मिलित होने का जो विवरण मिलता है, उससे स्पष्ट है कि चतुर्थ संगीति भी महायानी प्रभावों से वंचित नहीं थी।

---

१. बौद्धधर्म-दर्शन एवं साहित्य, पृष्ठ १७७।

२. बौद्धधर्म के विकास का इतिहास, पृष्ठ ३२१।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

वसुबन्धु के जीवन-चरित्र में भी परमार्थ ने कुण्डलवन विहार की संगीति का विवरण दिया है। उन्होंने लिखा है कि कात्यायनी-पुत्र कश्मीर गये और उन्होंने ५०० अर्हत्, ५०० बोधिसत्त्वों को एकत्र करके सर्वास्तिवादी अभिधर्म को प्रज्ञा, ध्यान आदि ८ ग्रन्थों में विभक्त किया और उन्हें ज्ञानप्रस्थानसूत्र नाम दिया। उसकी विभाषा नामक एक व्याख्या लिखी गयी और उसे श्रावस्ती में अश्वघोष के पास भेजा गया। अश्वघोष ने उसे साहित्यिक रूप दिया। कात्यायनी-पुत्र ने भिक्षुसंघ को यह आदेश दिया था कि विभाषा देश से बाहर नहीं ले जायी जा सकती। वसुबन्धु ने उसे कण्ठस्थ कर लिया और उसे देश से बाहर पहुँचाया[१]। यद्यपि परमार्थ ने विभाषाशास्त्र का ही वर्णन किया है और उसे सर्वास्तिवादी अभिधर्म कहा है, किन्तु ह्वेनसांग ने सूत्र से सम्बन्धित ग्रन्थ का नाम उपदेशशास्त्र रखा। पूर्वपक्ष ही प्रामाणिक है और उसे ही सम्प्रति बौद्ध जगत् मानता है।

बौद्धधर्म के इतिहास में कुण्डलवन विहार की संगीति का बहुत बड़ा महत्त्व है। इसी संगीति ने एक प्रकार से संस्कृत-बौद्ध-साहित्य को जन्म दिया और संस्कृत में अनगिनत ग्रन्थों की रचनाएँ हुईं। उन रचनाओं में से कुछ मूल रूप में आज भी विद्यमान हैं। आन्ध्र के तिब्बती, चीनी तथा जापानी अनुवाद भी उपलब्ध हैं। यदि त्रिपिटक बुद्ध-वचन का संस्कृत संस्करण तैयार न हुआ होता और भिक्षुसंघ ने उसे संगीति के रूप में सर्वसम्मत से स्वीकार न किया होता तो संस्कृतभाषा में उपलब्ध अनेक ग्रन्थों की रचनाएँ न हुई होतीं। साथ ही सम्भव था कि उत्तर के प्रदेशों में बौद्धधर्म का प्रचार उतना न हुआ होता जितना संगीति के पश्चात् हुआ। यह संगीति अपने ढंग की निराली थी। ऐसी संगीति बौद्ध इतिहास में दूसरी कोई नहीं हुई। इस संगीति के कारण बौद्धधर्म दीर्घायु हुआ और उसमें एक नव-चेतना जागृत हो उठी। कुण्डलवन विहार में हुई यह चौथी संगीति कनिष्क तथा तत्कालीन भिक्षुसंघ की स्मृति लिए कुलपुत्रों के मन में सदा नवचेतना उत्पन्न करती रहेगी[२]।

बुद्धवचनों का संस्कृत में एकीकरण

जैसा कि हमने ऊपर कहा है, चतुर्थ संगीति में भगवान् बुद्ध द्वारा पालि में उपदिष्ट सभी धर्म-ग्रन्थों का संस्कृतभाषा में एकीकरण किया गया है। कुछ सूत्रों और गाथाओं का भाषा-परिवर्तन मात्र किया गया तथा कुछ ग्रन्थों का स्वतन्त्र

१. बौद्धधर्म-दर्शन तथा साहित्य, पृष्ठ २५४।
२. वही, पृष्ठ २५५।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

निर्माण भी किया गया। पीछे कुछ ग्रन्थों का महायान के नाम पर स्वतन्त्र रूप से लेखन भी हुआ। गिलगिट से प्राप्त बौद्ध-धर्मग्रन्थों की पाण्डुलिपियों[1] तथा अन्य स्थानों से प्राप्त अनेक प्राचीन ग्रन्थों के अवलोकन से ज्ञात होता है कि धम्मपद, जातक, सुत्तनिपात, विनयपिटक आदि ग्रन्थों के कुछ अंशों का भाषा-परिवर्तन किया गया और महायान के अन्य ग्रन्थों को देखने से यह भी ज्ञात होता है कि बोधिसत्त्व, बुद्ध आदि की कल्पनाओं से परिपूर्ण महायान-सिद्धान्तों के प्रतिपादक अनेक ग्रन्थों की रचनाएँ पीछे हुईं, जिन्हें हम महायान-साहित्य के धर्मग्रन्थों के रूप में मानते हैं, जिनमें प्रमुख ग्रन्थों के नाम हैं—महावस्तु, ललितविस्तर, दिव्यावदान, अवदानशतक, सद्धर्मपुण्डरीक, कारण्डव्यूह, आर्यबुद्धावतंसक, सुखावतीव्यूह, गण्डव्यूह, अक्षोभ्यव्यूह, करुणापुण्डरीक, रत्नकूट, दशभूमीश्वर, अष्टसाहस्रिका, प्रज्ञापारमिता, लंकावतारसूत्र, समाधिराजसूत्र, सुवर्णप्रभासूत्र। इस प्रकार महायान संस्कृत-ग्रन्थ अवदानसाहित्य, सूत्र-साहित्य, धारणी आदि अनेक भागों में विभक्त हैं। पालि बौद्ध-साहित्य में धर्मों का विभाजन नव अङ्गों में हुआ है। यथा सुत्त, गेय्य, वैयाकरण, गाथा, उदान, इतिवुत्तक, जातक, अद्भुत-धर्म और वैदल्य[2]। किन्तु महायान में धर्म के बारह अङ्ग माने गये हैं। यथा—सूत्र, गेय, व्याकरण, गाथा, उदान, इतिवृत्तक, अद्भुतधर्म, जातक, वैपुल्य, निदान, अवदान और उपदेश। कहा गया है—

सूत्रं गेयं व्याकरणं गाथोदानावदानकम्।
इतिवृत्तकं निदानं वैपुल्यं च सजातकम्
उपदेशाद्भुतो धर्मो द्वादशाङ्गमिदं वचः[3] ॥

यद्यपि महायान-धर्म-ग्रन्थों तथा महायान धर्म-सम्बन्धी ग्रन्थों की जो सूचियाँ अन्य ग्रन्थों में उपलब्ध हैं, ये बहुत विस्तृत हैं, जिसकी संक्षिप्त सूची दे देना यहाँ उपयोगी है—

मुख्य महायानसूत्र

प्रज्ञापारमितायें

शतसाहस्रिका, पञ्चविंशतिसाहस्रिका, अष्टसाहस्रिका, प्रज्ञापारमिताहृदय, सप्तशतिका, दशसाहस्रिका, अर्धशतिका, सुविक्रान्त विक्रामि परिपृच्छा प्रज्ञा-

१. गिलगिट मैन्युस्क्रिप्ट—डा० नलिनाक्षदत्त द्वारा सम्पादित।
२. पालि साहित्य का इतिहास, पृष्ठ १३७।
३. महायान, पृष्ठ ९ तथा आलोक, पृष्ठ ३५, बौद्धधर्म के विकास का इतिहास के पृष्ठ ३२४ में उद्धृत।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

पारमिता, समाधिराज, आर्य मैत्रेय व्याकरण, वज्रछेदिका, सद्धर्मपुण्डरीक, करुणापुण्डरीक, कारण्डव्यूह, सुखावतीव्यूह, सुवर्णप्रभास, राष्ट्रपाल परिपृच्छा, काश्यपपरिवर्त्त, लङ्कावतार, दशभूमिकसूत्र, गण्डव्यूह ।

महायानशास्त्र

मध्यमकारिका (नागार्जुन), अभिसमयालङ्कार (मैत्रेयनाथ), महायान-सूत्रालङ्कार (असंग), योगाचार भूमिशास्त्र (असंग), विज्ञप्तिमात्रतासिद्धि (वसुबन्धु), न्यायप्रवेश (दिङ्नाग), प्रमाणवार्तिक (धर्मकीर्ति), न्यायविन्दु (धर्मकीर्ति), बोधिचर्यावतार (शान्तिदेव), शिक्षासमुच्चय तथा तत्त्वसंग्रह (शान्तरक्षित), चतुःशतक (आर्यदेव), चित्तविशुद्धिप्रकरण (आर्यदेव) ।

शिक्षासमुच्चय में उद्धृत महायान सूत्रों की सूची

१. अक्षयमतिसूत्र
२. अङ्गुलिमालिक
३. अध्याशयसञ्चोदनसूत्र
४. अनन्तमुखनिर्हार धारणी
५. अपूर्वसमुद्गतपरिवर्त (सूत्र १)
६. अपर राजापवादक सूत्र
७. अवलोकनासूत्र
८. अवलोकितेश्वरविमोक्ष
९. आकाशगर्भसूत्र
१०. आर्यसत्यकपरिवर्त (सूत्र १)
११. उग्रपरिपृच्छा या उग्रदत्त
१२. उदयनवत्सराजपरिपृच्छा
१३. उपायकौशल्यसूत्र
१४. उपालिपरिपृच्छा
१५. कर्मावरणविशुद्धिसूत्र
१६. कामापवादकसूत्र
१७. काश्यपपरिवर्त
१८. क्षितिगर्भसूत्र
१९. गगनगजसूत्र
२०. दण्डव्यूह
२१. गोचरपरिशुद्धिसूत्र
२२. चतुर्धर्मकसूत्र
२३. चन्द्रप्रदीपसूत्र
२४. चन्द्रोत्तरादारिकापरिपृच्छा
२५. चुन्दाधारणी
२६. जम्भलस्तोत्र
२७. ज्ञानवतीपरिवर्त
२८. ज्ञानवैपुल्यसूत्र
२९. तथागतकोशसूत्र
३०. तथागतगुह्यसूत्र
३१. तथागतबिम्बपरिवर्त
३२. त्रिसमयराज
३३. त्रिस्कन्धक
३४. दशधर्मसूत्र
३५. दशभूमिकसूत्र
३६. दिव्यावदान
३७. धर्मसंगीतिसूत्र
३८. नारायणपरिपृच्छा
३९. नियतानियतावतादमुद्रासूत्र
४०. निर्वाण (सूत्र १)
४१. पितापुत्रसमागम
४२. पुष्पकूटधारणी

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

४३. प्रज्ञापारमिता–'महती' अष्टसाहस्रिका
४४. प्रव्रज्यान्तरायसूत्र
४५. प्रशान्तविनिश्चयप्रतिहार्यसूत्र
४६. प्रातिमोक्ष
४७. बृहत्सागरनागराजपरिपृच्छा
४८. बोधिचर्यावतार
४९. बोधिसत्त्वपिटक
५०. बोधिसत्त्वप्रातिमोक्ष
५१. बुद्धपरिपृच्छा
५२. भगवती
५३. भद्रकल्पिकसूत्र
५४. भद्रवरी प्रणिधानराज
५५. भिक्षुप्रकीर्णक
५६. भैषज्यगुरुवैदूर्यप्रभसूत्र
५७. मञ्जुश्री बुद्धक्षेत्रगुणव्यूहालङ्कार-सूत्र
५८. मञ्जुश्रीविक्रीडितसूत्र
५९. महाकरुणापुण्डरीकसूत्र
६०. महामेघ
६१. महावस्तु
६२. मारीची
६३. मालासिंहवाद
६४. मैत्रेयीविमोक्ष
६५. रत्नकरण्डसूत्र
६६. रत्नकूट
६७, रत्नचूडसूत्र
६८. रत्नमेघ
६९. रत्नराशिसूत्र
७०. रत्नोल्काधारणी
७१. राजाववादकसूत्र
७२. राष्ट्रपालपरिपृच्छा
७३. लङ्कावतारसूत्र
७४. ललितविस्तर
७५. लोकनाथव्याकरण
७६. लोकोत्तरपरिवर्त
७७. वज्रच्छेदिका
७८. वज्रध्वजपरिणामना
७९. वाचनोपासिका विमोक्ष
८०. विद्याधरपिटक
८१. विमलकीर्तिनिर्देश
८२. वीरदत्तपरिपृच्छा
८३. शालिस्तम्बसूत्र
८४. सुरङ्गसूत्र
८५. श्रद्धाबलाधानावतारमुद्रासूत्र
८६. श्रावकविनय
८७. श्रीमालासिंहनादसूत्र
८८. सद्धर्मपुण्डरीक
८९. सद्धर्मस्मृत्युपस्थान
९०. सप्तमैथुन संयुक्तसूत्र
९१. समाधिराज (चन्द्रदीप)
९२. सर्वधर्मवैपुल्यसंग्रहसूत्र
९३. सर्वधर्मप्रवृत्ति
९४. सर्ववज्रधर मन्त्र
९५. सागरमतिपरिपृच्छा
९६. सिंहपरिपृच्छा
९७. सुवर्णप्रभासोत्तमसूत्र
९८. हस्तिकक्ष्यसूत्र

वैपुलसूत्र

महायान के ९ ग्रन्थ विशेष रूप से पूजनीय माने जाते हैं। इन्हें वैपुल्यसूत्र कहा जाता है। इनके नाम इस प्रकार हैं—

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

अष्टसाहस्त्रिका प्रज्ञापारमिता, सद्धर्मपुण्डरीक, ललितविस्तर, लङ्कावतार, सुवर्णप्रभास, गण्डव्यूह, तथागतगुह्यक, समाधिराज तथा दशभूमीश्वर।

संक्षेप में महायान संस्कृत-साहित्य तथा बुद्ध-वचनों के संस्कृत में एकीकरण का परिचय हमने ऊपर दिया है। यद्यपि इस परिचय का विवरण ऐतिहासिक तिथिक्रमों के अनुसार नहीं है और न तो उनके अनुसार इस विवरण को प्रस्तुत करना सहज है। मैंने केवल ग्रन्थों का नामोल्लेखमात्र कर दिया है, जिससे महायान संस्कृत-साहित्य के ग्रन्थों की नामावली का परिचय मिल सके। विषयातिरेक के भय से मैं इन ग्रन्थों का परिचय तथा इनमें वर्णित विषयों के प्रपञ्च में पड़ना उचित नहीं समझता।

महायान का महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक कार्य

हमने पहले महायान की उत्पत्ति और उसके महत्त्व के सम्बन्ध में प्रकाश डाला है और यह बतलाया है कि महायान का यह एक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक कार्य था, जब कि कुण्डलवन महाविहार में सम्पन्न हुई संगीति के उपरान्त बुद्ध-वचनों का संकलन संस्कृत में किया गया और उसके पीछे महायान-धर्म-सम्बन्धी विभिन्न ग्रन्थों का सर्जन हुआ और उसी समय प्रमुख रूप से बौद्धधर्म महायान और हीनयान दो प्रमुख यानों में विभक्त हो गया। शाक्यमुनि भगवान् बुद्ध ने व्यावहारिक दृष्टि से वासना-क्षय के लिए जो उपदेश दिये थे, वे भी अब महायान और हीनयान इन दो पक्षों में विकसित होने लगे। भगवान् बुद्ध पहले केवल शास्ता, धर्मोपदेष्टा, मार्गोपदेशक और गुरु थे, किन्तु अब वे त्राता, रक्षक, अवतार और भक्ति की धारणाओं से परिपूर्ण व्यक्ति के लिए अमानवीय व्यक्तित्व समझे जाने लगे। हम आगे देखेंगे कि कुछ निकायों के भिक्षु उन्हें लौकिक देहधारी मानने के लिए भी तैयार नहीं थे। कुछ उनका परिनिर्वाण तब तक के लिए मानने को तैयार नहीं थे, जब तक संसार में एक भी प्राणी निर्वाण के साक्षात्कार से वंचित रहता है। वे असंख्य बुद्धों, बोधिसत्त्वों और देवी-देवताओं में अग्रणी और महाकरुणा से आप्लावित थे।

भगवान् बुद्ध ने कर्मकाण्ड, पूजा-पाठ आदि का निषेध किया था। यहाँ तक कि अपनी पूजा करने को भी भिक्षुओं से मना किया था। धर्म-पालन ही धर्म-पूजा थी। किन्तु महायान द्वारा नाना प्रकार के पूजा-पाठ और कर्मकाण्ड आ गये। प्रत्येक प्राणी बुद्धाङ्कुर माना जाने लगा और महायान के समक्ष हीनयान हेय दृष्टि से देखा जाने लगा। जहाँ बुद्ध, प्रत्येक बुद्ध और श्रावक बुद्ध

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

इन तीन बुद्धों की गणना होती थी, अब असंख्य बोधिसत्त्वों और सम्यक्-सम्बुद्धों की गणना और पूजा होने लगी। जिस तथागत ने यह कहा था कि मैं आचार्य (आचारियमुट्ठि)[१] नहीं रखता। हमारा धर्म चन्द्रमा और सूर्य की भाँति खुला हुआ प्रकाशमान रहता है, उसे छिपाकर नहीं रखा जा सकता[२]। उसे ही महायान ने गोपनीय बना दिया और यह घोषित किया कि तथागत कुछ बातें रहस्य के रूप में गोपनीय रखते हैं; सभी श्रावकों को बतलाते नहीं हैं। धातुपूजा, स्तूपपूजा, मूर्ति-निर्माण, भित्ति-चित्रों में तथागत जीवन का अंकन, पुष्प-गन्धों से उनकी पूजा, बाद्य-भेरि, शंख-दुन्दुभी आदि से बुद्ध-पूजा, वीणा, ताल, पणव, मृदङ्ग, वंशी, आदि को बजाकर श्रद्धा-भक्ति प्रदर्शित करना, गीत-संगीत आदि से पूजा करना निर्वाण-फलदायी होता है[३]। साथ ही यह भी कहा गया है कि जो पूर्वोक्त श्रद्धा-भक्ति प्रदर्शित नहीं करते हैं वे नरकगामी होते हैं। जो इन धर्म-ग्रन्थों के प्रति अनादर करते हैं वे भी नरक में जाते हैं[४]।

इस प्रकार परम्परागत बौद्धधर्म जो मूल बुद्ध-वचनों के अनुसार पालि-परम्परा का अनुयायी था अर्थात् जो पालि त्रिपिटक में उपदिष्ट बुद्ध-वचनों के अनुसार चलने वाला था, वह अब महायान के रूप में विभक्त होकर लोक-मंगल-परक कर्मकाण्डों, श्रद्धा-भक्ति-जनित व्यवहारों, मूर्ति-पूजा, स्तूप-पूजा-विधानों और दार्शनिक रूप से भी शीघ्र निर्वाण प्राप्त करने अर्थात् इसी जीवन में अर्हत्त्व के साक्षात्कार की भावना को त्यागकर बुद्ध होने की कामना करने लगा। जहाँ पारमिताओं को पूर्ण कर बिरले ही व्यक्ति सम्यक्सम्बुद्ध बन सकते थे, वहाँ अब सभी बुद्ध-बीजांकुर बन गये अर्थात् महायानधर्मावलम्बी सभी भिक्षु-भिक्षुणियाँ, उपासक, और उपासिकायें भविष्य में बुद्ध होने की कामना करने लगीं। उन्हें एक अद्भुत सम्बल और प्रेरणा प्राप्त हुई और उसी के बल पर उन्होंने महायान का प्राणपण से प्रचार किया। यह महायान का सबसे बड़ा ऐतिहासिक और महत्त्वपूर्ण कार्य था और उसी के बाद महायान का विकास बड़ी तेजी से होने लगा। उसने भारतमें तो अपना व्यापक स्थान बना ही लिया, प्रायः सभी पड़ोसी देशों में, यहाँ तक कि एशिया भू-खण्ड के प्रायः सभी

---

१. महापरिनिब्बानसुत्त, पृष्ठ ६२।

२. अंगुत्तरनिकाय ३, ३, ९, पृष्ठ १७३।

३. सद्धर्मपुण्डरीक, २, ८०-९७ पृष्ठ ३४-३७।

४. वही, पृष्ठ ४३।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

देशों में उसने अपना प्रभुत्व जमाया और ऐसा प्रभुत्व जमाया कि अभी भी उसके अधिकांश भू-भागों में वह जन-धर्म बना हुआ है। तिब्बत, चीन, जापान, मञ्चूरिया, कोरिया, सिक्किम, भूटान, लद्दाख, मङ्गोलिया इत्यादि देश अब भी महायान के प्रमुख गण हैं। रूस का वह भाग जो प्राचीनकाल में बौद्ध-धर्मावलम्बी था, अब भी महायान का अनुयायी बना हुआ है। भारत भी इसका अपवाद नहीं है। तिब्बत से जो शरणार्थी दलाई-लामा के साथ आये, वे सब महायानी ही हैं। इनके अतिरिक्त हिमांचल प्रदेश, कुमायूँ गढ़वाल, कलिंगपोंग, दार्जिलिंग, सिक्किम, जम्मू, कश्मीर और लद्दाख में महायानी बौद्धों की संख्या सर्वाधिक है।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

सप्तम अध्याय

बौद्ध-निकाय और उनके सिद्धान्त

स्थविरवादी परम्परा

स्थविरवाद

भगवान् बुद्ध ने उरुबेला (बुद्धगया) में बुद्धत्व प्राप्त करने के पश्चात् कुशीनारा में महापरिनिर्वाण-पर्यन्त पैंतालिस वर्षों तक जो उपदेश दिया था, उनका संकलन प्रथम संगीति के समय राजगृह में ५०० भिक्षुओं ने महाकाश्यप के नेतृत्व में किया था। द्वितीय और तृतीय संगीतियों में भी बुद्ध-वचनों का वही स्वरूप रहा, यद्यपि थोड़ा-बहुत परिवर्द्धन अवश्य हुआ था। जैसा कि हमने पहले कहा है, बुद्ध-वाणी के उस संकलन का नाम त्रिपिटक रखा गया था, और भिक्षुसंघ त्रिपिटक में उपदिष्ट मार्ग पर चलने का हृदय से प्रयत्न करता था। उसमें प्रज्ञप्त शिक्षापदों को खण्डित करना अपने लिए बड़ा अशोभन समझता था, किन्तु कुछ ऐसे भी भिक्षु थे जिन्हें संसार से पूर्ण विरक्ति नहीं हो पायी थी और वे अपनी आसक्तियों के वशीभूत हो, इन शिक्षापदों का नियमतः पालन नहीं कर पाते थे। यह बात प्रकटरूप में भगवान् के परिनिर्वाण के पश्चात् ही वृद्ध प्रव्रजित सुभद्र द्वारा सामने आयी थी। तत्कालीन भिक्षुओं ने उसे अधर्म समझा और सद्धर्म के लिए उसे घातक भी समझा[१]। उसकी रोक-थाम के लिए उन्होंने प्रथम संगीति की आयोजना की। वास्तव में प्रथम संगीति एक महान् ऐतिहासिक घटना थी, जब सम्पूर्ण बुद्ध-वचनों को संकलित किया गया था। कहा जाता है कि सुत्तनिपात के कुछ अंशों पर भाष्य भी लिखे गये थे, जिसके लेखक अग्रश्रावक सारिपुत्र थे और उन भाष्यों का नाम चुल्लनिद्देस और महानिद्देस था। किन्तु उन्हें अट्ठकथा या भाष्य नहीं कहा गया है, क्योंकि उनकी गणना मूल त्रिपिटक में की गयी है। कुछ लोग यह भी मानते हैं कि प्रथम संगीति के समय केवल विनय और सुत्तपिटक के ग्रन्थों का ही संकलन हुआ था। इस मत को माननेवाले अपने पक्ष में अनेक तर्क प्रस्तुत करते हैं कि अभिधर्मपिटक केवल सुत्तपिटक में आये गम्भीर दार्शनिक पदावलियों की केवल

१. महापरिनिब्बानसुत्त, पृष्ठ १८८।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

व्याख्या है, और इसके लिए अनेक तर्क भी प्रस्तुत करते हैं। इस मत के पोषक महापण्डित राहुल सांकृत्यायन, आचार्य धर्मानन्द, कौशाम्बी तथा कुछ यूरोपीय विद्वान् रहे हैं, परन्तु अधिकांश बौद्ध धर्मानुयायी इसे स्वीकार करने को तैयार नहीं। डॉ० भिक्षु धर्मरक्षित ने "क्या अभिधर्मपिटक पीछे लिखा गया है ?" शीर्षक लेख में इन मतों का प्रमाण-सहित खण्डन किया है और मज्झिमनिकाय के लोमसकंगियभद्देकरत्तसुत्त[1] में अपने इस वाक्य को उद्धृत किया है—"एकं समयं भगवा देवेसु विहरति तावतिंसेसु परिच्छत्तकमूले पण्डुकम्बलसिलायं, तत्र खो भगवा देवानं तावतिंसानं अभिधम्मकथं कथेसि।" (अर्थात् एक समय भगवान् त्रयस्त्रिंशदेवभवन में पारिच्छत्तक-वृक्ष के नीचे पाण्डुकम्बल शिला पर विहरते थे। वहाँ भगवान् ने त्रयस्त्रिंश के देवों को अभिधर्म का उपदेश किया[2] !

उपर्युक्त तथ्यों से प्रकट है कि समय एवं काल के अनुसार त्रिपिटक में कुछ परिवर्तन-परिवर्धन अवश्य हुआ है, किन्तु सम्पूर्ण एक पिटक की रचना बाद में हुई हो, यह सत्य नहीं है और उस समय अट्ठकथाओं की भी आवश्यकता नहीं पड़ी जब तक उसके अन्तर्गत कथाएँ तथा विषय-वस्तु विस्मृत न होने लगे। सम्पूर्ण त्रिपिटक भाणक—परम्परा द्वारा ही कण्ठस्थ करके सुरक्षित रखा गया। यही कारण है कि भाणक-परम्परा से आगत बुद्ध-वचनों में तो नहीं, किन्तु परम्परा पर आधारित कथा-वस्तुओं में कतिपय साधारण भेद दीख पड़ते हैं। त्रिपिटक-परीक्षण शीर्षक लेख में भिक्षु धर्मरक्षित ने इन पर विस्तृत प्रकाश डाला है[3]। महावंस में इन पर विस्तृत रूप से दर्शाया गया है। महावंश में आलोक विहार की संगीति में त्रिपिटक के लेख-बद्ध किये जाने की बात को लेख-बद्ध करते हुए लिखा है—

पिटकत्तयपालिञ्च तस्सा अट्ठकथम्पि च।
मुखपाठेन अनेसुँ पुब्बे भिक्खु महमती॥
हानिं दिस्वान सत्तानं तदा भिक्खू समागता।
चिरट्ठितत्थं धम्मस्स पोत्थकेसु लिखापयुं॥

(अर्थात्—त्रिपिटक पालि तथा उसकी अट्ठकथा को पहले के बुद्धिमान् भिक्षु कण्ठस्थ (मुखपाठ) करके आये, किन्तु प्राणियों की स्मरणशक्ति के

---

१. मज्झिमनिकाय ३, ४, ४।

२. धर्मदूत, वर्ष १९४५, पृष्ठ ९।

३. बौद्धधर्म-दर्शन तथा साहित्य, पृष्ठ ११७।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

ह्रास को देखकर भिक्षु एकत्र हुए, और धर्म की चिरस्थिति के लिए उन्हें पुस्तकों में लिखवाया)।

महावंस के इस विवरण से भी उक्त तथ्यों की पुष्टि होती है परन्तु एक तथ्य का और आभास होता है कि मूल त्रिपिटक पालि के साथ अट्ठकथायें भी थीं। यद्यपि वर्तमान अट्ठकथाओं का लेखन पाँचवीं शती ईस्वी में हुआ, फिर भी महावंस से ही यह भी स्पष्ट होता है कि पहले भी पालि में अट्ठकथायें थीं, जिनका भाषान्तर लंका में पालि से सिंहली भाषा में किया गया और जिन्हें आचार्य बुद्धघोष आदि अट्ठकथाचार्यों ने ग्रन्थारूढ़ किया[१]। इस प्रकार पीछे यह कहा जाने लगा कि अट्ठकथाओं सहित त्रिपिटक में आया समस्त धर्म स्थविरवाद है—

तेपिटकसंगहितं साट्ठकथं सब्बं थेरवादं।

यह सत्य एवं यथार्थ भी है, क्योंकि पालित्रिपिटक और उनकी अट्ठकथायें ही शुद्ध थेरवादी परम्परा है। स्थविरवाद के सभी ग्रन्थ पालि में हैं और हम इस परिभाषा से भी कुछ दूर आगे बढ़कर यह कह सकते हैं—"तेपिटकसंगहितं साट्ठकथं टीकानुटीकासहितं सब्बं थेरवादम्" अर्थात् टीकानुटीका भी थेरवादी परम्परा के ही अन्तर्गत हैं। पिटक, अनुपिटक, भाष्य, अनुभाष्य, प्रकरण, अनुप्रकरण सभी प्रकार के पालिभाषा के सद्धर्म-ग्रन्थ स्थविरवादी परम्परा के हैं और उनमें आया हुआ धर्म ही वास्तविक स्थविरवाद है।

स्थविरवाद के सम्बन्ध में पहले विस्तारपूर्वक कहा जा चुका है। भगवान् ने जो उपदेश पालि में दिये थे और जिनका संकलन एवं संगायन प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय संगीतियों में हुआ था, वही मूल स्थविरवाद था और वह अशोक के काल तक आते-आते हीनयान एवं महायान के रूप में विभक्त होकर १८ भिक्षु-निकायों में विभाजित हो गया था, जिनमें स्थविरवाद अपने उपनिकायों के साथ बारह की संख्या पूरी करने लगा था[२]। आगे चलकर इनमें अन्य अनेक भेद उत्पन्न हुए होंगे, किन्तु सबका प्रामाणिक वर्णन उपलब्ध नहीं है। महावस्तु, महावंस, दीपवंस, निकाय-संग्रह आदि ग्रन्थों तथा प्राप्त प्राचीन अभिलेखों आदि से कतिपय ही निकायों का विवरण प्राप्त है। इन निकायों में कुछ के नाममात्र उपलब्ध हैं और कुछ जीवित रूप में आज भी विद्यमान है।

१. हिन्दी सन्त-साहित्य पर बौद्धधर्म का प्रभाव, पृष्ठ ७९।
२. थेरवादेनसहते होन्ति द्वादसि मेपि च।—महावंस ५, १०।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

स्थविरवाद से जो निकाय विभक्त हुए थे, उनमें प्रमुख रूप से दो समूह थे—एक महिंसासक भिक्षुओं का और दूसरा बज्जिपुत्तकों का। महिंसासक वर्ग के पाँच उपनिकाय थे और वज्जिपुत्तक के चार। पूर्णरूप से स्थविरवादी होते हुए भी इनमें कुछ मत-मतान्तर थे। वे भी सूत्र, विनय और अभिधर्म को लेकर शिक्षापद-सम्बन्धी (विनय) अत्यल्प विभेद थे, किन्तु तत्कालीन दृष्टिकोण से उसे बहुत महत्त्वपूर्ण माना गया। आज के इस वैज्ञानिक युग में उन साधारण मतभेदों के लिए कोई अवकाश नहीं है और न इनसे उन्हें परस्पर भिन्न कहा जा सकता है। धार्मिक परम्परा के अनुसार उनके छोटे-छोटे भेद थे। हम यहाँ इन निकायों का परिचय मात्र देंगे, जो स्थविरवाद की परम्परा के हैं और जिन्हें महायानी भिक्षुओं द्वारा प्रदत्त नाम के अनुसार हम हीनयान के नाम से जानते हैं। यद्यपि यह हीनयान शब्द महायानियों द्वारा उन पर बलपूर्वक थोपा गया है। फिर भी यह ऐतिहासिक सत्य है कि बुद्धधर्म से जो ये प्रमुख निकाय फूट निकले थे, वे क्रमशः विकसित होते गये और प्रत्येक बौद्ध देश में उनका स्वरूप भी किसी-न-किसी रूप में विद्यमान रहा तथा सम्प्रति भी है। जैसे लंका, वर्मा आदि देश स्थविरवादी हैं तो चीन, जापान, तिब्बत, कोरिया आदि महायानी हैं।

महिंसासक

स्थविरवादी परम्परा के अन्तर्गत महिंसासक एक मुख्य निकाय था, किन्तु महिंसासक निकाय वाले भिक्षु कहाँ के रहने वाले थे, इसमें बहुत मतभेद है। डॉ० नलिनाक्षदत्त का कथन है कि ये उत्तर महिंसासक और पूर्व महिंसासक, दो विभागों में बँटे हुए थे और सर्वास्तिवादियों से प्राचीन थे[१]। प्रिलुस्की के अनुसार पूर्व महिंसासक आयुष्मान् पुराण के अनुयायी थे, क्योंकि महिंसासक-विनय से ज्ञात होता है कि पहली संगीति के बाद दक्षिणागिरि से लौटे हुए ५०० भिक्षुओं के साथ पुराण स्थविर ने अपनी धर्म-सम्पत्ति तब तक नहीं दी जब तक उनके सामने दुबारा संगायन नहीं हुआ। उन्होंने आहार-सम्बन्धी आठ विषयों का समावेश भी कर लिया। यह आठ विषय इस प्रकार थे—

अन्दर भोजन पकाना, अन्दर पकाना, स्वेच्छा से पकाना, स्वेच्छा से खाना, प्रातः उठते समय अन्न को स्वीकार करना, दाता की इच्छा से अन्न घर ले जाना,

१. बुद्धिस्ट सेक्ट्स इन इण्डिया, पृष्ठ १३४।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

विविध फल रखना एवं जलाशय में उत्पन्न वस्तुओं को खाना[1]। कुछ लोगों ने महिंसासकों को महिस-मण्डल से सम्बन्धित बतलाया है[2]। बनवासी से भी उनको सम्बन्धित कहा गया है[3]। चीनीयात्री फाहियान को उनका विनयपिटक सिंहल में मिला था और इत्सिंग ने उन्हें भारत में नहीं पाया था[4]। नागार्जुन कोण्डा के तीसरी शताब्दी ईस्वी के एक अभिलेख से स्पष्ट है कि महिंसासक भिक्षुओं का प्रभुत्व आन्ध्रप्रदेश में था और महिंसासक भिक्षुओं के लिए सातवाहन राजाओं द्वारा नागार्जुन कोण्डा में एक विहार का निर्माण कराया गया था[5]। पाँचवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में स्थापित पंजाब में नमक के पहाड़ के निकट "कूर" नामक स्थान में तोरमानशाह के समय का एक स्तम्भ प्राप्त हुआ है, जिस पर महिंसासक भिक्षुओं का उल्लेख है[6]। इससे ज्ञात होता है कि पंजाब में भी महिंसासक भिक्षुओं का प्रभाव था[7]।

जो लोग महिंसासकनिकाय का सम्बन्ध माहिष्मती और बनवास से बतलाते हैं, उनका कथन महावंस तथा दीपवंस के वर्णनों के अनुकूल नहीं है क्योंकि इन प्रदेशों में अशोक काल में धर्मप्रचारार्थ भिक्षु भेजे गये थे। तात्पर्यतः अशोक

---

१. ऐस्पेक्ट्स आफ महायान एण्ड इट्स रिलेशन टू हीनयान, डा० नलिनाक्षदत्त द्वारा लिखित, भाग दो, पृष्ठ ११।

२. बौद्धधर्म के विकास का इतिहास, पृष्ठ १८६।

३. वही, पृष्ठ १८६।

४. वही, पृष्ठ १८६।

५. एन आउट लाइन आफ अर्ली बुद्धिज्म, पृष्ठ ७४।
'सिध! नमो भगवतो सम-संबुद्धस्स। महाराजस वासेठिपुतस इखाकुंनं सिरि-एहुबुल-चातमूलस सब १० (+) १ जिय १ दिव ७। महाराजस अगिहोतागिधेन-वाजयेयासमेध पायिस-अनेक-हिरण-कोटि-गो-सत-सहस-दल-सतसहस-पदायिस सवथेसु अपतिहतसंकपस वासेठिपुतसइखाकुन सिरिचातभूलस नत्तिय महाराजस माठरीपुतस सिरिवीर-पुरिसदतस धुतुय महाराजस वासेठिपुतस इखाकुनं रिएहुवेल चातमूलस भगिनिय वानवासक महाराज महादेविय कोदवलिसिरिय इमं खानियं विहारो च आचारियानं महीसासकानं सुपरिगहे चातुदिसं संघं उदिसाय संतसतानं हितसुखतं उपितं। अचारयेन धमकथिकेन धमघोस थेरेन अनुठितंति।"

६. बुद्धिस्ट सेक्ट्स इन इण्डिया, पृष्ठ ५८।

७. एन आउट लाइन आफ अर्ली बुद्धिज्म, पृष्ठ ७४।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

काल से पूर्व महिंसासकनिकाय के भिक्षु इन प्रदेशों में नहीं हो सकते। जब इन प्रदेशों में बौद्धधर्म था ही नहीं, तब महिंसासक भिक्षुओं का सम्बन्ध इनसे कैसे हो सकता है ? कुछ लोगों का यह कथन है कि इन प्रदेशों में बौद्धधर्म था और उसके दृढ़ीकरण के लिए अशोक ने धर्म-प्रचारक भिक्षुओं को भेजा था,[1] कुछ अर्थों में मान्य है। आचार्य नरेन्द्रदेव ने महिंसासकनिकाय का केन्द्र माहिष्मती माना है[2]। महावंस[3], दीपवंस[4], कथावत्थुप्पकरण, अट्ठकथा[5] आदि ग्रन्थों से ज्ञात है कि अशोक के समय भिक्षु धर्मप्रचारार्थ गये थे। महादेव स्थविर के प्रधानत्व में पाँच भिक्षुओं ने वहाँ जाकर धर्म का प्रचार किया था[6]। किन्तु उन्नीसवीं शताब्दी ईस्वी के बर्मा के संघराज भदन्त प्रज्ञास्वामी द्वारा लिखित सासनवंस में कहा गया है कि महिंसमण्डल आन्ध्र राष्ट्र का नाम है[7]। उन्होंने यह भी लिखा है कि महामोग्गलिपुत्त स्थविर ने महारेवत स्थविर को धर्म-प्रचारार्थ महिंसमण्डल भेजा[8]। यह वर्णन सर्वथा ही अशुद्ध है क्योंकि महिंसासक महिष्मती ही है, न कि आन्ध्रप्रदेश और वहाँ अशोककाल में धर्म-प्रचारार्थ महादेव स्थविर भेजे गये थे, न कि महारेवत स्थविर। यह भी मत ग्राह्य नहीं है कि महिंसासक भिक्षु महिष्मती क्षेत्र के थे और अशोक से पूर्व यह स्थविरवाद से फूट निकले थे।

महिंसासकनिकाय के भिक्षुओं के क्या सिद्धान्त थे ? उसे जानने के लिए कथावत्थुप्पकरण की अट्ठकथा के अतिरिक्त हमारे पास कोई साधन उपलब्ध नहीं है। उक्त अट्ठकथा में महिंसासक भिक्षुओं के मूल बौद्धधर्म से भिन्न कुछ बातों की ओर संकेत किया गया है और उनका खण्डन भी किया गया है। कहा गया है कि वे निरोध दो प्रकार का मानते थे—(१) अप्रतिसंख्या

---

१. बौद्धधर्म के विकास का इतिहास, पृष्ठ १८९।

२. बौद्धधर्म-दर्शन, पृष्ठ ३७।

३. महावंस, हिन्दी अनुवाद, पाँचवाँ अध्याय, तृतीय संगीति का वर्णन।

४. दीपवंस, तृतीय संगीति का वर्णन।

५. कथावत्थुप्पकरणट्ठकथा, निदानकथा, पृष्ठ ८२-८३।

६. "आपेसयि महादेवत्थेरं महिंसमण्डलं"।—महावंस १२-३।
"गन्त्वानतट्ठं महिसं महादेवो महिद्धिको"—दीपवंस ८, ५।

७. सासनवंस, पृष्ठ ११।
"महिंसकमण्डलं नाम अन्धक रट्ठं यं यक्खपुरट्ठंति वुच्चति।"

८. सासनवंश पृष्ठ १५४।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

निरोध और (२) प्रतिसंख्यानिरोध[१] । वे यह भी मानते थे कि प्रतीत्य-समुत्पाद असंस्कृत होता है क्योंकि भगवान् ने कहा है कि तथागत उत्पन्न हों अथवा न उत्पन्न हों किन्तु यह धर्मस्वभाव वैसे ही स्थित रहता है[२] ।

वे तीनों प्रकार के आकाश को असंस्कृत मानते थे[३] । काय, वची विज्ञप्ति कहलाने वाला रूप ही काय-कर्म एवं वची-कर्म है । उसको लेकर उत्पन्न कुशल कुशल है और अकुशल अकुशल है[४] । सम्यक् वचन, सम्यक् कर्मान्त एवं सम्यक् आजीव रूप है[५] । काय-कर्म, वची-कर्म कुशल भी होता है और अकुशल भी होता है । इस बुद्ध-वाणी को लेकर काय एवं वची-कर्म कहलाने वाले काय-विज्ञप्ति और वची-विज्ञप्ति रूप भी कुशल और अकुशल होते हैं[६] । महिंसासकों का कथन था कि ध्यानी ध्यान की उपचार-समाधि के बिना ही एक ध्यान से दूसरे ध्यान में संक्रमण करता है[७]। उनका यह भी कथन था कि मार्ग पञ्चांगिक होता है क्योंकि पहले ही काय-कर्म, वची-कर्म और आजीविका परिशुद्ध होती है[८] । उनका यह भी कथन था कि लौकिक श्रद्धा श्रद्धा ही है; वह श्रद्धेन्द्रिय नहीं है । ऐसे लौकिक वीर्य, स्मृति, समाधि एवं प्रज्ञा प्रज्ञा ही हैं, प्रज्ञेन्द्रिय नहीं है ।[९] ।

वात्सीयपुत्र

वात्सीयपुत्रीय स्थविरवाद से निकला हुआ एक निकाय था, जिसे वज्जिपुत्तक भी कहते हैं । उनका बाहुल्य वज्जिदेश में था और वे बड़े क्रान्तिकारी थे । द्वितीय संगीति का आयोजन उन्हीं भिक्षुओं के कारण हुआ था, जिसका हम अध्ययन पहले कर आये हैं । ये केवल वज्जिदेश तक ही सीमित न थे, प्रत्युत ये सम्पूर्ण भारतवर्ष में व्याप्त थे । अनेक बौद्ध-तीर्थों से वात्सीयपुत्रीय भिक्षुओं के नामांकित अभिलेख प्राप्त हुए हैं ।

---

१. कथावत्थु १, २, ११ ।
२. वही, २, ६, २ ।
३. वही, २, ६, ६ ।
४. वही, २, ८, ९ ।
५. वही, २, १०, २ ।
६. वही, ४, १६, ७ ।
७. वही, ४, १८, ६ ।
८. वही, ४, २०, ५ ।
९. वही, ४, १९, ८ ।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

सारनाथ में विद्यमान अशोक-स्तम्भ पर एक गुप्तकालीन लेख उत्कीर्ण है, जिसमें वात्सीयपुत्रियों का वर्णन है और उससे यह जान पड़ता है कि गुप्तकाल के प्रारम्भिक युग में सारनाथ में वात्सीयपुत्रियों का प्रभाव था[१]। मथुरा और भरहुत में भी वात्सीयपुत्रियों के अभिलेख प्राप्त हुए हैं[२]। सातवीं शताब्दी ईस्वी में जब ह्वेनसांग ने भारत को यात्रा की थी, तब उसे वात्सीयपुत्रीय नाम से कोई बौद्ध-निकाय मिला नहीं था, किन्तु उसके उपनिकाय सम्मितीय के बहुसंख्यक स्थानों पर मिले थे, जिनका हम तुलनात्मक विवरण आगे प्रस्तुत करेंगे।

डॉ० गोविन्दचन्द्र पाण्डेय के इस मत से हम सहमत नहीं है कि वात्सीयपुत्रीय वत्स जनपद की राजधानी कौशाम्बी से सम्बन्धित थे और इनका मुख्य केन्द्र कौशाम्बी, मथुरा एवं अवन्ति थे[३]। उन्होंने वज्जिपुत्तक से वात्स्यपुत्र के ग्रहण करने को भ्रान्तिमूलक बतलाया है और यह भी लिखा है कि वात्सीयपुत्र निकाय का मूलतः वज्जिप्रदेश से सम्बन्ध असिद्ध था[४]। किन्तु महावंस, दीपवंस आदि पालिग्रन्थ एक स्वर से इन वज्जिपुत्तकों को उन्हीं वज्जिपुत्तकों के रूप में ग्रहण करते हैं, जिनके कारण द्वितीय संगीति हुई थी। भव्य के अनुसार भी यही प्रमाणित है[५]। तिब्बती परम्परा के अनुसार वात्सीयपुत्रीय सम्मितीय निकाय की उपशाखा थी, किन्तु डॉ० जे० पो० एच० वोगल ने भी इसमें सन्देह किया है, जिन्होंने इस लेख का सम्पादन किया था[६]।

वात्सीयपुत्रीय निकाय से सम्बन्धित सिद्धान्तों का परिपूर्ण विवरण दे सकना कठिन है, क्योंकि कथावत्थुप्पकरण की अट्ठकथा में एक ही सिद्धान्त का खण्डन वज्जिपुत्तकों के नाम से किया गया है, फिर भी केवल एक ही सिद्धान्त मूल बुद्धधर्म का विरोधी नहीं रहा होगा, प्रत्युत अन्य भी ऐसे सिद्धान्त होंगे, जो

---

१. सारनाथ का इतिहास, पृष्ठ १४१।
"आचार्यनं, सम्मितियानं वात्सीयपुत्रिकानम्।"

२. स्तूप आफ भरहुत, पृष्ठ १३००।
"सुगने रजे राजो गागीपुत्तस विसदेवस–पुतेन गो ति पुतस आगरजस पुतेन वाछिपुतेन धन भूति न करितं तोरणं सिलकंमत च उपं न"।

३. बौद्धधर्म के विकास का इतिहास, पृष्ठ १८४।

४. वही, पृष्ठ १८५।

५. ऐन आउट लाइन आफ अर्ली बुद्धिज्म, पृष्ठ ८५।

६. वही, पृष्ठ ८५-८६।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

मूल स्थविरवाद के विरोधी रहे होंगे। किन्तु हमें केवल एक ही सिद्धान्त का खण्डन प्राप्त है और उसमें कहा गया है कि वज्जिपुत्तक यह मानते थे कि अर्हत् के अर्हत्त्व की परिहानि हो सकती है—"परिहायति अरहा अरहन्ता"ति[१] "किन्तु मार्ग और फल की प्राप्ति के पश्चात् अर्हतों की परिहानि सम्भव नहीं है इसलिए स्वकवादी ने परवादी (=वज्जिपुत्तक) का निग्रह करते हुए कहा है--"क्या अर्हत् अर्हत्त्व से परिहानि को प्राप्त होते हुए चारो फलों से परिहानि को प्राप्त होने योग्य हैं?"

"ऐसा नहीं कहना चाहिए[२]।"

सर्वास्तिवाद

सर्वास्तिवाद भिक्षु-निकाय महिंसासक निकाय से निकला था। इसका बहुत अधिक प्रचार था। सारनाथ, कुशीनारा, श्रावस्ती, मथुरा आदि स्थानों में प्राप्त लेखों से ज्ञात होता है कि सातवीं शताब्दी ईस्वी में यह निकाय बहुत प्रबल था। इसके अनुयायी मगध, कोशल, उत्तर-पूर्व भारत, गुजरात और दक्षिण भारत में काफी संख्या में थे। एक समय प्रमुख बौद्ध स्थानों पर इन्हीं का आधिपत्य था। कहा जाता है कि कनिष्क से इस निकाय को संरक्षण प्राप्त था। कनिष्क द्वारा की गयी चतुर्थ संगीति सर्वास्तिवादी संगीति थी। सारनाथ से प्राप्त एक गुप्तकालीन लेख में कहा गया है—"आचार्य्यनं सर्वास्तिवादिने परिग्रहे।[३] (=सर्वास्तिवादी आचार्यों का दान)।

सम्मितीय तथा सर्वास्तिवादी भिक्षु-निकाय स्थविरवाद के अन्तर्गत हैं। इन्हें स्पष्ट रूप से समझने के लिए स्थविरवाद के निकायभेद को जानना चाहिए।

श्रावस्ती के अभिलेख से ज्ञात होता है कि भिक्षु बल ने सर्वास्तिवादी भिक्षुओं को प्रतिमा का दान दिया था[४]। श्रावस्ती के ही कोसम्ब कुटी के लिए कनिष्क प्रथम के द्वारा सर्वास्तिवादी आचार्यों को दान देने का उल्लेख मिलता है।[५] कुषाणकालीन अभिलेखों में सर्वास्तिवादी का उल्लेख है।[६] शाहजी की

१. कथावत्थु, परिहानि कथा, १, १, २।

२. वही, परिहानि कथा, १, १, २।

३. सारनाथ का इतिहास, पृष्ठ १४१।

४. कार्प्स इन्सक्रिप्शन इन डेकोरेम, भाग १, जिल्द २, पृष्ठ १३५।

५. इपिग्राफिया इण्डिका, जिल्द ८, पृष्ठ १८।

६. वही, जिल्द २१, पृष्ठ २५९।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

ढेरी के मंजूषा-अभिलेख, जैद[१] तथा कुर्रम[२] से प्राप्त कुषाणकालीन अभिलेख यह सिद्ध करते हैं कि अफगानिस्तान, पश्चिमी पंजाब तथा सिन्ध-प्रदेशमें यह निकाय अधिक लोकप्रिय था।[३] मथुरा के सिंहशीर्ष पर उत्कीर्ण अभिलेख में सर्वास्तिवादियों के प्रभुत्व का वर्णन है और यह अभिलेख प्रथम शताब्दी ईस्वी का है।[४] अफगानिस्तान के "बग्रमरैग" नामक विहार के समीप स्तूप के उत्खनन में जो बुद्ध धातुमंजूषा प्राप्त हुई थी, उस पर भी सर्वास्तिवादी भिक्षुओं का नाम उत्कीर्ण है।[५]

सर्वास्तिवादी पुराने आचार्यों के नाम अभिधम्म महाविभाषा ग्रन्थ में मिलते हैं, जिनमें पार्श्व, वसुमित्र, घोषक, बुद्धदेव, धर्मत्रात और एक अन्य भिक्षु के नाम उल्लेखनीय हैं। अन्य भी बहुत से आचार्यों के नामों का उल्लेख मिलता है[६], जिनका उल्लेख यहाँ विषयातिरेक होगा।

सर्वास्तिवादी निकाय का सातवीं शताब्दी में बहुत विस्तार हो गया था। ह्वेनसांग को सर्वास्तिवादी भिक्षु स्यालकोट के निकट तमसावन में ३००, मतीपुर में ५००, कन्नौज के निकट नवदेवकुल में ५००, हयमुख में २००, वाराणसी में २०००, नालन्दा में २००, हिरण्यपर्वत में १०० एवं मीनमल में १०० मिले थे। ऐसे ही भारतीय सीमा के बाहर भी कराशहर में २०००, कूचा में ५०००, बाल्हीक में १००, बलख और बामियान के बीच ३००, कबन्ध में ५०० बुसा में १००० और काशगर में १००० सर्वास्तिवादी भिक्षु मिले थे। ऐसे ही कश्मीर में ह्वेनसांग को १०० विहारों में ५०००

१. कार्प्स इन्सक्रिप्शन इन डेकोरेम, भाग १, जिल्द २, पृष्ठ १३५।
२. बुद्धिस्ट सेक्ट्स इन इण्डिया, पृष्ठ ५७।
३. इपिग्राफिया इण्डिका, जिल्द १९, भाग दो, पृष्ठ १३६।
४. वही, जिल्द ९, पृष्ठ १४१।
"सध भन्त अवुहलए चित्तमहि चिस्पसिज्ज भ्रतृ हपुअरण सघहण धिन्न। अन्तेदेरण होरकपरिवरेण इशे पुध्रवियुतेसे निस्सीमे शरीरं प्रतिट्ठवितौ भद्रावतौ शकमुनिस बुद्धस्स—राय सव्यए मुसविति ध्रव च संघरम च चतुदिस संघस्स सव्वास्तिवातां परिग्रहे।"
५. कार्प्स इन्सक्रिप्शन इन डेकोरेम, भाग २, पृष्ठ ११५, १२८। 'शिरे भगवतो धातु प्रथविते विहारं स्वमिश्र प्रतिथवितो द्रुवो नव विहारेम्मि अचरंपन सर्वास्थिवादिन परिग्रहं थुवम्मि भगवतो सकमुसिस शरीर।'
६. बौद्धधर्म के विकास का इतिहास, पृष्ठ २६३।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

सर्वास्तिवादी भिक्षु मिले थे। उड्डियान और गान्धार में भी पहले सर्वास्तिवादी[१] थे, जिनकी संख्या ३०,००० से कम नहीं रही होगी।

सर्वास्तिवादी सिद्धान्त उनके ग्रन्थों से ही स्पष्ट है किन्तु कथावत्थु की अट्ठकथा में इनके कुछ सिद्धान्तों का खण्डन किया गया है। वात्सीयपुत्रियों की भाँति इनकी भी मान्यता थी कि अर्हत् के अर्हत्त्व की परिहानि हो सकती है।[२] वे यह भी मानते थे कि जो कुछ अतीत, अनागत और वर्तमान काल के स्कन्ध हैं, वे सभी स्कन्ध स्वभाव को नहीं त्यागते, इसलिए सब हैं ही 'सब्बमत्थी[३]'ति। वे अतीत स्कन्ध को भी विद्यमान मानते थे।[४] ज्ञान की प्राप्ति को वे क्रमशः मानते थे।[५] वे चित्तसन्तति को ही समाधि मानते थे।[६]

धर्मगुप्तिक

यह भी महिंसासक निकाय से निकला हुआ एक प्रमुख निकाय था। इस निकाय वाले भिक्षु श्रद्धाबहुल थे, जो त्रिरत्न (=बुद्ध, धर्म, संघ) को भेंट चढ़ाना, स्तूपों को श्रद्धा-दृष्टि से देखना धर्म मानते थे। इनका अपना सूत्र, विनय और अभिधर्म साहित्य था[७]। इनके नाम से ही स्पष्ट है कि यह धर्म के प्रति अत्यन्त श्रद्धा रखने वाले और धर्म-मामक भिक्षुओं का निकाय था। मूल सर्वास्तिवाद के चार विभागों में धर्मगुप्तिक भी एक था।[८] आचार्य नरेन्द्रदेव जी का कथन है कि धर्मगुप्तिक नाम कदाचित् इस निकाय के आचार्य के नाम पर पड़ा। दीपवंस और महावंस के अनुसार धर्मरक्षित स्थविर अपरान्तक में धर्म प्रचार के लिए भेजे गये थे। क्या धर्मरक्षित और धर्मगुप्तिक एक तो नहीं हैं?[९] उन्होंने आगे यह भी कहा है कि अन्त में धर्मगुप्तिक निकाय वाले भिक्षु चीन में भी फैल गये थे।[१०] परमार्थ के अनुसार इस निकाय

१. बौद्धधर्म के विकास का इतिहास, पृ० २६६।
२. कथावत्थु १, १, २।
३. वही, १, १, ६।
४. वही, १, १, ७।
५. वही, १. २, ९।
६. वही, ३, ११, ८।
७. बौद्धधर्म के पच्चीस सौ वर्ष, पृष्ठ ७९।
८. ए रिकार्ड आफ दि बुद्धिस्ट रिलिजन, इत्सिंगकृत, पृष्ठ २०।
९. बौद्धधर्म दर्शन, पृष्ठ ३७।
१०. वही, पृष्ठ ३८।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

का प्रवर्तन धर्मगुप्त ने किया था जो महामौद्गल्यायन के शिष्य थे[1]। कुछ विद्वान् अपरान्तक के धर्म-प्रचारक यवन धर्मरक्षित के साथ धर्मगुप्त का अभेद प्रतिपादित करते हैं।[2] कालान्तर में धर्मगुप्तिक अपने त्रिपिटक में एक बोधिसत्त्व-पिटक और एक धारणीपिटक अथवा मन्त्रपिटक भी मानते थे। भारत में प्राप्त किसी भी अभिलेख में धर्मगुप्तिकों का उल्लेख नहीं मिलता. और न तो कथा-वत्थुप्पकरण की अट्ठकथा में ही इनके सिद्धान्तों का नामोल्लेख है। ह्वेनसांग और इत्सिंग को इस निकाय के भिक्षु उड्डियान एवं मध्य एशिया में मिले थे।[3]

कश्यपीय

कश्यपीय निकाय महिंसासक निकाय के अन्तर्गत सर्वास्तिवादी उपनिकाय से उद्भूत निकाय था और इसका नाम हिमवन्त प्रदेश में धर्मप्रचारक भिक्षु कश्यप गोत्र के नाम पर पड़ा था। महावंस के अनुसार मज्झिम स्थविर हिमवन्त प्रदेश में धर्मप्रचारार्थ भेजे गये थे[4]। महावंस की टीका में उनके साथ जाने वाले चार अन्य भिक्षुओं के भी नाम लिखे हुए हैं—कस्सपगोत्त, दुन्दुभीस्सर, सहदेव और मूलकदेव। साँची स्तूप के उत्खनन में अस्थि-मंजूषा के भीतरी भाग में मज्झिम तथा समूचे हिमालय के आचार्य (सब हेमवताचरिय) कश्यपगोत्र (कासपगोत) के नाम अंकित हैं। महावंस से हम यह भी जानते हैं कि मज्झिम स्थविर के साथ गए पाँचों धर्मप्रचारक भिक्षुओं ने हिमालय के पाँच अलग-अलग देशों में धर्मप्रचार किया था[5]। भिक्षु धर्मरक्षित ने अपनी नेपाल यात्रा में इन पाँचों हिमवन्त प्रदेश के क्षेत्रों का वर्णन करते हुए लिखा है कि इन पराक्रमी धर्मप्रचारकों ने चम्बा से जौनसार तक तथा गढ़वाल-कुमायूं से पूर्वी नेपाल तक प्रत्येक देश में भगवान् बुद्ध की विमल वाणी का प्रचार करने

---

१. बौद्धधर्म के विकास का इतिहास, पृष्ठ १८७।

२. वही, पृष्ठ १८७।

३. वही, पृष्ठ १८७।

४. पैसेसि मज्झिमं थेरं हिमवन्तपदेसकं"-महावंस, १२-६।

५. "गत्वा चतूहि थेरेहि पैसेसि मज्झिमो इसि।
हिमवन्त पदेसस्मिं धम्मचक्कप्पवत्तनं॥
मग्गफलं पापुणिसं असीति पाणकोटियो।
विसुं ते पञ्चरट्ठानि पंच थेरा पसादयुं॥"

—महावंस १२, ४१, ४२।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

का यत्न किया एवं बौद्ध संस्कृति की दुन्दुभि बजायी।[१] इससे स्पष्ट है कि हिमवन्त प्रदेश में धर्मप्रचारक पाँचों भिक्षुओं ने एक-एक क्षेत्र में प्रचार का कार्य किया था और इस प्रकार पाँचों ही अपने क्षेत्र में प्रमुख स्थविर थे। आचार्य नरेन्द्रदेव जी का भी यही मत है कि काश्यपगोत्र स्थविर के नाम पर ही इस निकाय का नाम पड़ा था और लेखों में काश्यपगोत्र स्थविर को सर्वत्र हैमवताचार्य कहा गया गया है। अतः यह ज्ञात होता है कि हैमवत और काश्यपीय एक ही निकाय के विभाग थे। वसुमित्र ने इन दोनों को अलग-अलग गिनाया है।[२]

पालिग्रन्थों से हम जानते हैं कि यह निकाय अशोक के समय में सर्वास्तिवादियों से फूटा था, किन्तु तिब्बती परम्परा इसके संस्थापक काश्यप को ही मानती है। अभिलेखों से ज्ञात होता है कि इस निकाय का जन्म ईसापूर्व पहली या दूसरी शताब्दी में हुआ था[३]। पमोसा के अभिलेख से ज्ञात होता है कि काश्यपीय अर्हतों के लिए आषाढ़ सेन द्वारा एक लेण का दान दिया गया था, जो ईसापूर्व का नहीं है।[४] पल्टू ढेरी से प्राप्त ताम्र अभिलेख में भी काश्यपीय निकाय के भिक्षुओं का उल्लेख है[५]। इससे यह अनुमान लगाया जाता है कि पूर्वी उत्तर प्रदेश और उत्तर-पश्चिमी भारत में इस निकाय का प्रभाव था, किन्तु यह प्रभाव अधिक नहीं था, क्योंकि इन स्थानों में अन्य निकायों का अधिक प्रभाव था। कार्ले से प्राप्त सातवाहन-नरेश वाशिष्ठी-पुत्र पुलमावी के अभिलेख से भी ज्ञात होता है कि नासिक, कार्ले आदि प्रदेशों में काश्यपीय निकाय के भिक्षु रहते थे।[६]

---

१. नेपाल-यात्रा, पृष्ठ ११६।

२. बौद्धधर्म दर्शन, पृष्ठ ३७।

३. ऐन आउट लाइन आफ अर्ली बुद्धिज्म, पृष्ठ ७९।

—राजोगोपालीपुत्रस बहसतिमितस मातुलेन गोपालीया बेहदरिपुत्रेण आसाढ़सेनेन लेशां कारितं उदाकस दसमे सवछरे कस्सपीयानं अरहन्तानं········।

४. इपिग्राफिया इण्डिका, भाग २, पृष्ठ २४२।

५. ऐन आउट लाइन आफ अर्ली बुद्धिज्म, पृष्ठ ८०।

६. वही, पृष्ठ ८०।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

तल्तैवाही[१], तक्षशिला[२], बेदादी[३], पाला-ट्रू-ढेरी[४], पमोसा[५] और कार्ले[६] की गुफाओं से मिले अभिलेखों से इन स्थानों पर काश्यपीय निकाय के भिक्षुओं का प्रभाव पहली शताब्दी से लेकर सातवीं शताब्दी तक होना प्रमाणित है।

काश्यपीय निकाय के भिक्षुओं के विनयपिटक, सूत्रपिटक और अभिधर्म-पिटक ग्रन्थ मिले हैं, जिनका विवरण इस प्रकार जानना चाहिए--

विनयपिटक

१. भिक्षु प्रातिमोक्ष।
२. भिक्षुणी प्रातिमोक्ष।
३. कठिन।
४. मातृका।
५. एकोत्तर।

सूत्रपिटक

१. दीर्घागम।
२. मध्यमागम।
३. एकोत्तरागम।
४. संयुक्तागम।
५. क्षुद्रकागम।

अभिधर्मपिटक

१. सप्रश्नक विभंग।
२. अप्रश्नक विभंग।
३. संग्रह।

काश्यपीय निकाय के केवल एक सिद्धान्त का खण्डन कथावत्थुप्पकरण में आया हुआ है। इसके अन्य सिद्धान्तों का भी निराकरण कथावत्थुप्पकरण में

१. कोनों, पृष्ठ ६३।
२. वही, पृष्ठ ८८।
३. वही, पृष्ठ ८९।
४. वही, पृष्ठ १२२।
५. लूडर्स, पृष्ठ ९०४।
६. वही, पृष्ठ ११०६।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

होना सम्भव है किन्तु अन्त:साक्ष्य के अभाव में उन्हें बतला सकना सम्भव नहीं है। काश्यपीय ऐसा मानते थे कि अतीतकालीन स्कन्धों में से कोई-कोई है और कोई नहीं भी है।

"अतीतं अत्थी"ति ? एकच्चं अत्थि, एकच्चं नत्थी"ति[1]।

संक्रान्तिक

यह भी स्थविरवाद के सर्वास्तिवादी निकायसमूह का एक निकाय था, जिसके सम्बन्ध में अन्त:साक्ष्य एवं बाह्य साक्ष्यों के अभाव में कुछ कह सकना सम्भव नहीं है। यह भिक्षुनिकाय किस क्षेत्र में विद्यमान था और इसकी अपनी क्या विशेषता थी, यह भी अभिलेखों अथवा कथावत्थुप्पकरण से ज्ञात नहीं है। किन्तु इतना हम जानते हैं कि यह काश्यपीय भिक्षुनिकाय की भाँति स्थविरवादी भिक्षुनिकायसमूह का एक निकाय था।

सूत्रवादी

थेरवाद के वे भिक्षु जो केवल सूत्र एवं विनय को ही मानने वाले थे, उनको सूत्रवादी या सौत्रान्तिक कहा जाता था। ये भी सर्वास्तिवादियों की भाँति ही थे। यह बहुत प्रसिद्ध निकाय था और इस निकाय के अनेक ग्रन्थ थे, "सत्य-सिद्धिशास्त्र" नामक सौत्रान्तिक निकाय के ग्रन्थ का चीनी अनुवाद इस समय भी उपलब्ध है। आचार्य नरेन्द्र देव ने अपनी पुस्तक में बताया है कि सौत्रान्तिक अभिधर्मपिटक को बुद्धवचन नहीं मानते हैं। उनका कहना है कि भगवान् बुद्ध ने सूत्र में ही अभिधर्म की शिक्षा दी है। इसीलिए उन्हें सौत्रान्तिक कहते हैं।[2] हेस्टिंग्स की इन्साइक्लोपिडिया में भी सौत्रान्तिक शब्द की व्याख्या इस प्रकार है—"सूत्रपिटक को विशिष्टता देने एवं उसी को प्रमाण मानने के कारण इनका नाम सौत्रान्तिक पड़ा।[3] इनका काल ईसा की दूसरी शती का उत्तरार्ध अथवा तीसरी शती का प्रथमार्ध माना जाता है। कुछ विद्वान् इन्हें नागार्जुन का समकालीन भी मानते हैं।[4] पण्डित बलदेव उपाध्यय जी ने भी इसी प्रकार का मत व्यक्त किया है—"अभिधर्म बुद्धवचन न होने से प्राप्त है,

---

१. कथावत्थुप्पकरण, १, १, ८।
२. बौद्धधर्म दर्शन, पृष्ठ ३०।
३. इन्साइक्लोपीडिया आफ रेलिजन एण्ड इथिक्स, जिल्द ९। सौत्रान्तिक शीर्षक में कीथ बुद्धिस्ट फिलासफी, पृष्ठ १५।
४. बौद्ध दर्शन तथा अन्य भारतीय-दर्शन, पृष्ठ ६३४, ६३५।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

परन्तु सूत्रान्त बुद्ध की शिक्षाओं का आधार होने से सर्वथा अभ्रान्त एवं प्रामाणिक है। इसी कारण ये सौत्रान्तिक नाम से अभिहित किए गये हैं।[१]

• सौत्रान्तिकों की दृष्टि में धर्म की सत्ता माननीय है। यह केवल चित्त की ही सत्ता न मानकर बाह्य पदार्थों की भी सत्ता स्वीकार करते हैं। महा-पण्डित राहुल सांकृत्यायन सौत्रान्तिकों को इस प्रकार बताते हैं—"सौत्रान्तिक अपने को बुद्ध के सूत्रान्तों (सूत्रों या उपदेशों) का अनुयायी बताते हैं। वे बाह्य विज्ञानवाद से उलटे बाह्यार्थवादी हैं, अर्थात् क्षणिक रूप ही मौलिक तत्त्व है।[२]

भरहुत और साँची के द्वितीय शताब्दी ईस्वी के शुंगकालीन अभिलेखों से यह ज्ञात होता है कि उस समय सौत्रान्तिक निकाय के भिक्षुओं का इन स्थानों पर प्रभाव था, क्योंकि इन स्थानों में सौत्रान्तिक भिक्षु बुद्ध रक्षित और सुत्तान्त-किनि भिक्षुणी अविसिना द्वारा वहाँ निर्माणकार्य कराये गये थे।[३]

धर्मोत्तरीय

यह वज्जिपुत्तक निकाय का एक उपनिकाय था और इसका भी पर्याप्त प्रचार था, किन्तु इसके सिद्धान्तों आदि के सम्बन्ध में विशेष जानकारी नहीं मिलती है। अतः ऐसा अनुमान है कि वज्जिपुत्तक निकाय से सम्बन्धित होने के कारण उनसे अत्यल्प बातों में ही भिन्नता रही होगी, क्योंकि यदि कोई बड़ा मतभेद होता तो इनका भी अपना अलग साहित्य होता। सम्भव है कि इनके धर्मग्रन्थों का अनुवाद चीनी आदि भाषाओं में हुआ और मूल नष्ट हो गये, किन्तु यह भी केवल अनुमान है। कार्ले[४] और जुन्नार[५] की गुफाओं से धर्मोत्तरीय आचार्यों से सम्बन्धित अभिलेख प्राप्त हुए हैं[६], जिनसे यह प्रकट होता है कि दूसरी शताब्दी ईस्वी में महाराष्ट्र प्रदेश में इसका अधिक प्रभाव था

१. बौद्ध दर्शन, पृष्ठ २४७।
२. बौद्ध दर्शन, राहुल सांकृत्यायन, पृष्ठ ९१।
३. स्तूप आफ भरहुत, पृष्ठ १३५।
४. बुद्धिस्ट केव टेम्पुल्स एण्ड इन्सक्रिप्शन, पृष्ठ ९१।
"सोपारका भयतना धमुत्तरनियान।"
५. वही, पृष्ठ ९३, "भिक्खुनो उपासयो (या) सा धम्मोत्तरियान अखय निविका (का)"
६. बुद्धिस्ट सेक्ट्स इन इण्डिया, पृष्ठ ५८।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

और इस निकाय के भिक्षुओं ने उन्हीं प्रदेशों में अपनी साधना की थी, जहाँ से इनके नामांकित अभिलेख प्राप्त हुए हैं।

भद्रयानिक

भद्रयानिक भिक्षु भी वात्सीयपुत्रीय समूह के ही थे और इनके सम्बन्ध में भी महावंस, दीपवंस आदि ग्रन्थों के अतिरिक्त अन्य जानकारी उपलब्ध नहीं है। कन्हेरी और नासिक से इनके कई अभिलेख प्राप्त हुए हैं।[१] वाशिष्ठीपुत्र पुलमावी के नासिक गुहा अभिलेख में कहा गया है कि महादेवी महाराज-माता, महाराजा पितामही भद्रयानिक निकाय के भिक्षुसंघ के लिए त्रिरश्मि पर्वत-शिखर पर विमान की भाँति श्रेष्ठ गुहा का दान दे रही है।[२] वाशिष्ठीपुत्र पुलमावी के नासिक गुहा लेख में भी भद्रयानिक भिक्षुओं को ग्रामदान देनेका वर्णन है।[३]

इस निकाय का भी केवल एक ही सिद्धान्त कथावत्थुप्पकरण में वर्णित है, जिसके अनुसार इस निकाय के भिक्षुओं का कथन था कि ज्ञान क्रमशः होता है।[४] किन्तु यह ठीक नहीं है, क्योंकि तीनों संयोजनों का प्रहाण एक साथ होता है।

छन्नागारिक

यह भी वज्जिपुत्तक निकाय का एक उपनिकाय था और इस समय बहुत प्रसिद्ध था। छन्नागारिक पालि शब्द है, जिसका अर्थ है छन्न = छाया हुआ + आगारिक = आवासिक (घर में रहने वाले)। इस प्रकार इसका अर्थ हुआ "छाये हुए घरों में रहने वाले भिक्षु।" ऐसा जान पड़ता है कि शून्यागार, वृक्षमूल, अरण्य, पर्वत, गुहा, श्मशान आदि स्थानोंको छोड़कर निर्मित संघारामों में रहकर ही ये भिक्षु साधनानिरत रहते थे। इस निकाय के भिक्षु समस्त

---

१. बुद्धिष्ट सेक्ट्स इन इण्डिया, पृष्ठ ५८-५९।

२. आन्ध्र सातवाहन साम्राज्य का इतिहास, पृष्ठ २४५।
"महादेवी महाराज माता महाराज पितामही ददाति निकायस भदावनीयान भिक्खु संघस"।

३. आन्ध्र सातवाहन साम्राज्य का इतिहास, पृष्ठ २४५।
"गाम सामलिपद भिखुहि देवि लेसा वासिहि निकायेन मदाय नियेहि पति गय्ह ओय पथेहि।"

४. कथावत्थुप्पकरण, १, २, ९।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

उत्तरी भारत में फैले हुए थे। इनके सिद्धान्त वज्जिपुत्तक भिक्षुओं से अल्प-भिन्न थे। भारत में प्राप्त अभिलेखों अथवा कथावत्थुप्पकरण में निगृहीत सिद्धान्त-समूहों में कहीं भी इस निकाय का उल्लेख नहीं है।

सम्मितीय

यह वज्जिपुत्तक भिक्षुओं का एक प्रसिद्ध उपनिकाय था और अपने समय में अत्यन्त प्रबल था। सम्मितीय भिक्षुओं ने बहुत से धर्मकार्य भी किये। अनेक संघारामों, स्तूपों आदि का जीर्णोद्धार भी इन्होंने कराया था। इनके द्वारा लिखित ग्रन्थों की संख्या अन्य निकायों की अपेक्षा अधिक थी, जिनके अनुवाद चीनी तथा तिब्बती भाषाओं में हुए थे। दक्षिणी तथा उत्तरी दोनों परम्पराओं के अनुसार यह उपनिकाय स्थविरवाद से सम्बन्धित था। भव्य के अनुसार इसे अवन्तक और कुरुकुल्लक भी कहा जाता था।

इसके संस्थापक सम्मत थे।[१] मथुरा के कुषाणकालीन एक विहार के अभिलेख से ज्ञात होता है कि सम्मितीय निकाय के धर्मक स्थविर की स्वीकृति से श्रीविहार में बोधिसत्त्व की एक प्रतिमा का प्रतिष्ठापन हुआ था[२]। उससे ज्ञात होता है कि कुषाणकाल में मथुरा में कम-से-कम एक विहार पर सम्मितीयों का अधिकार था। ऐसे ही गुप्तकाल में सारनाथ के विहारों पर सम्मितीयों के साथ वात्सीयपुत्रीय भिक्षुओं का सम्मिलित प्रभुत्व था[३]। ह्वेनसांग के वर्णन के अनुसार सातवीं शताब्दी में सारनाथ के विहारों पर सम्मितीय भिक्षुओं का ही प्रभुत्व था।[४]। इस प्रकार अभिलेख और ह्वेनसांग के वर्णन दोनों से यह प्रमाणित हो गया है कि गुप्तकाल में सारनाथ में सम्मितीयों का ही अधिकार था। तीसरी शताब्दी ईस्वी के सारनाथ में प्राप्त सर्वास्तिवादी निकाय के अभिलेखों[५] से यह भी प्रमाणित होता है कि उस समय सर्वास्तिवादी तथा सम्मितीय दोनों निकाय सारनाथ में समान रूप से प्रबल थे, किन्तु सम्मितीयों के अत्यधिक प्रभाव बढ़ जाने के कारण सर्वास्तिवादी बहिष्कृत कर

१. एन आउट लाइन आफ अर्ली बुद्धिज्म, पृष्ठ ८६।

२. इपिग्राफिया इण्डिका, भाग १९, पृष्ठ ६७।

३. सारनाथ का इतिहास, पृष्ठ १४१।
"आ (चा) र्य्यनं स (म्मि) तियानं वात्सीपुत्रीकानां"
(= यह वात्सीयपुत्रीय सम्मितीय आचार्यों का दान है)।

४. ह्वेनसांग का भारत-भ्रमण, पृष्ठ ३१९।

५. सारनाथ का इतिहास, पृष्ठ १४१ तथा १४४।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

दिये गये थे[१]। ह्वेनसांग के वर्णन के अनुसार सम्मितीय भिक्षु अहिच्छत्र में १०००, कपिथ में १०००, विशाखा में ३००, श्रावस्ती में ३००, कपिलवस्तु में ३०००, वाराणसी में ३०००, सारनाथ में १५००, कर्णसुवर्ण में २०००, मालवा में २०००, बलभी में ६०००, आनन्दपुर में १००० और सिन्ध में १०,००० से भी अधिक भिक्षु थे। इस प्रकार सम्मितीय निकाय के भिक्षुओं का प्रभाव सम्पूर्ण उत्तर भारत में समान रूप से था। ऐसा जान पड़ता है कि यह निकाय गुप्तकाल तक अत्यन्त प्रसिद्ध एवं लोकसम्मत था। इस निकाय के भिक्षु विशेष श्रद्धा एवं सम्मान की दृष्टि से देखे जाते थे तथा अपने आचरण की पवित्रता के लिए बहुत प्रसिद्ध थे। ह्वेनसांग सम्मितीय निकाय के सत्रह ग्रन्थ अपने साथ भारत से चीन ले गया था, किन्तु उसने किसी का भी अनुवाद नहीं किया था और वे सब नष्ट हो गये थे।[२]

कथावत्थुप्पकरण में सम्मितीय निकाय के बहुसंख्यक सिद्धान्तों का खण्डन किया गया है। हम यहाँ संक्षेप में उनका दिग्दर्शन मात्र करा रहे हैं। सम्मितीय मानते थे कि अर्हत् के अर्हत्त्व की परिहानि हो सकती है, किन्तु मार्गफल की प्राप्ति के पश्चात् परिहानि सम्भव नहीं है[३]। देवलोक में ब्रह्मचर्य-वास नहीं है[४]। स्रोतापन्न आदि व्यक्तियों के क्लेश समय-समय पर धीरे-धीरे दूर होते हैं[५]। यह ऐसा मानते थे कि ध्यानलाभी पृथक् जनों के काम, राग, व्यापाद आदि पाँच नीवरण दूर हो जाते हैं[६]। ज्ञान क्रमशः होता है। ये ऐसा मानते थे, जो ठीक नहीं है क्योंकि तीनों संयोजनों का प्रहाण एक साथ होता है[७]। सम्मितियों का कथन था कि अनुलोम गोत्रम् मार्ग के क्षण में आठवें स्रोतापत्ति मार्ग वाले पुरुष की मिथ्यादृष्टि दूर हो गयी है[८]। वे यह मानते थे कि चतुर्थ ध्यान में ध्यानी का मांस-चक्षु ही दिव्य चक्षु कहलाता है, अर्थात् मांस-चक्षु धर्म के आश्रित होता है[९]। एक ही श्रोत्र होता है दो नहीं[१०]।

१. एन आउट लाइन आफ अर्ली बुद्धिज्म, पृष्ठ ८६।

२. आन्ध्र सातवाहन साम्राज्य का इतिहास, पृष्ठ १४७।

३. कथावत्थु अट्ठकथा १, १, २।

४. वही, १, १, ३!

५. वही, १, १, ४।

६. वही, १, १, ५।

७. वही, १, १, ९।

८. वही, १, ३, ५।

९. वही, १, ३, ७।

१०. वही, १, ३, ८।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

यथाकम्मूपगत ज्ञान ही दिव्य-चक्षु हैं[१]। देवलोक में स्वयं संयम होता है। वहाँ पाँच बैर नही होते[२]। अन्तरापरिनिब्बायी सुत्तपद को लेकर यह कहते हैं, मृत्यु के पश्चात् प्राणी सप्ताह भर या सप्ताह से अधिक वहाँ रहता है। दिव्य-चक्षु वाला न होते हुए भी दिव्य-चक्षु वाले के समान अपने उत्पन्न होने के स्थान, माता, पिता, ऋतु आदि के समय का अवलोकन करता रहता है[३]। इनका मत था कि ब्रह्मकायिक ध्यान आदि निमित्त भी आयतन ही है इसलिए उनका भी आत्मभाव है अर्थात् शरीर छः आयतनों का ही है[४]। इनका मत था कि काय, वची विज्ञप्ति कहलाने वाला रूप ही काय-कर्म एवं वची-कर्म है। उसको लेकर उत्पन्न कुशल कुशल है और अकुशल अकुशल है[५]। सम्मितीय का मत था कि जितेन्द्रिय चित्त से रहित अरूपधर्म है, इसलिए रूप जीवितेन्द्रिय, नहीं है[६]। जिस अर्हत् द्वारा पूर्वजन्म में कोई अर्हत् गर्हित होता है वह कर्म के कारण अर्हत्त्व से परिहानि को प्राप्त हो जाता है[७]। सम्मितीयों का मत था कि सम्यक् वचन, सम्यक् कर्मान्त, सम्यक् आजीव, रूप है[८]। इनका मत था कि पृथक् जन कुशल अव्याकृत चित्त के रहने पर सानुशय (अनुशय के साथ) कहा जाता है। उस समय जो उसका हेतु होता है, उस हेतु में न होने पर अनुशय सहेतुक होते हैं। वे उस चित्त से युक्त भी नहीं होते, इसलिए वे अव्याकृत, अहेतुक चित्त से विप्रयुक्त होते हैं[९]। सम्मितीयों का कथन था कि काय-विज्ञप्ति, काय-कर्म होता है और वची विज्ञप्ति, वची-कर्म। इसलिए विज्ञप्ति ही शील है[१०]। सम्मितीयों का कथन था कि चूँकि पृथक् जन कुशल अव्याकृत चित्त के रहने पर सानुशय (अनुशय के साथ) कहा जाता है, उस समय जो उसका हेतु होता है, उस हेतु के न होने पर अनुशय सहेतुक होते हैं, उस चित्त से युक्त भी नहीं होते। इसलिए वे अव्याकृत अहेतुक चित्तमुक्त

१. कथावत्थु, अट्ठकथा, १, ३, ९।
२. वही, १, ३, १०।
३. कथावत्थु २, ७, ५।
४. वही, २, ८, २।
५. वही, २, ८, ७।
६. वही, २, ८, ९।
७. वही, २, ८, १०।
८. वही, २, ८, ११।
९. वही, २, १०, २।
१०. वही, ३, ११, १-३।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

होते हैं[1] । ये मानते थे कि परियापन्न दूसरा है और परियुट्ठित दूसरा[2] । कर्म से उत्पन्न कर्म से जन्य चित्त विप्रयुक्त होता है जो अव्याकृत एवं अनालम्बन होता है[3] । काय-कर्म, वची-कर्म कुशल भी होता है, अकुशल भी होता है। इस बुद्ध-वाणी को लेकर काय और वची-कर्म कहलाने वाले कायविज्ञप्ति एवं वचोविज्ञप्ति रूप भी कुशल और अकुशल होते हैं[4] । कर्म से उत्पन्न चित्त एवं चैतसिकों के समान कर्म के करने से उत्पन्न रूप भी विपाक होता है[5] । ध्यानी के उपचार के बाद ध्यान आनन्तरिक सानते थे[6] ।

(ख) महायानी परम्परा

महासांघिक

महायानी बौद्ध निकाय परम्परा के अन्तर्गत महासांघिक निकाय अग्रगण्य एवं प्रमुख निकाय है। इसका परिचय पहले दिया जा चुका है। इस नियम के अन्तर्गत पाँच उपनिकायों का उल्लेख दीपवंस, महावंस आदि ग्रन्थों में मिलता है, किन्तु कथावत्थुप्पकरण की अट्ठकथा में केवल गोकुलिक निकाय के ही सिद्धान्तों का परिचय मिलता है। इस निकाय-समूह को इस प्रकार जानना चाहिए—

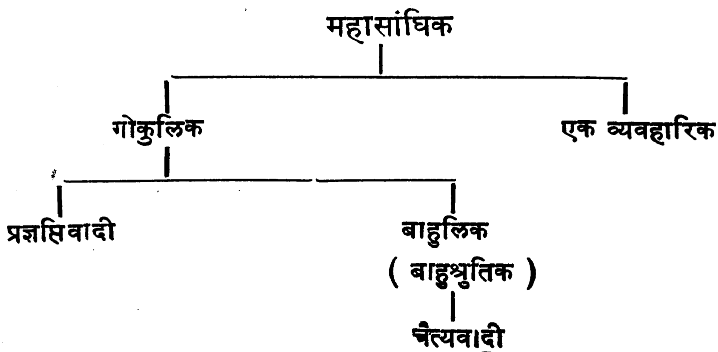

१. कथावत्थु ३, ११, १-३।
२. परियापन्न कथा ३, १४, ७।
३. वही, ३, १५, १०।
४. वही, ४, १६, ७।
५. रूपविपाकोति कथा ४, १६, ८।
६. वही, ४, १८, ७।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

महासांघिक निकाय भगवान् बुद्ध के परिनिर्वाण के १०० वर्षों के पश्चात् अपने स्वरूप में आया था और इसको अपनी अलग संगीतियाँ हुई थीं। तब से लेकर सातवीं शताब्दी ईस्वी तक इसका बाहुल्य रहा। पश्चात्कालीन वज्रयान-गर्भित निकाय भी इससे ही सम्बद्ध थे। प्राप्त पुरातात्त्विक अभिलेखों से विदित है कि एक समय मथुरा, महाराष्ट्र, आन्ध्र तथा बिहार के बौद्ध विहारों पर महासांघिक भिक्षुओं का स्वभाव था।

मथुरा से प्राप्त सिंहशीर्षयुक्त स्तम्भ पर पहली शताब्दी ईस्वी के लिखित अभिलेख में महासांघिक निकाय का उल्लेख है।[१] सातवाहनवंशी राजा वाशिष्ठी-पुत्र पुलमावी के समय के कार्ले गुहालेख से स्पष्ट है कि वहाँ महासांघिक भिक्षुओं का प्रभाव था और एक मण्डप बुद्धरक्षित और उसकी माता द्वारा बनवा कर दान दिया गया था[२]। अफगानिस्तान के वर्दक जिलान्तर्गत वग्रमरिग्र विहार से कनिष्ककालीन ईस्वी सन् १७९ के प्राप्त भगवान् बुद्ध के अस्थि-अवशेष की मंजूषा पर लिखित अभिलेख से प्रकट है कि वहाँ भी महासांघिक भिक्षुओं का दूसरी शताब्दी ईस्वी में प्रभाव था[३]। गौतमीपुत्र शातकर्णी तथा वासिष्ठीपुत्र पुलमावी के समय ईस्वी सन् १०६ से लेकर १५९ के मध्य लिखित कार्ले अभिलेखों से विदित है कि दूसरी शताब्दी ईस्वी के प्रारम्भ से लेकर अन्तिम चरणों तक महाराष्ट्र प्रदेश में महासांघिक भिक्षुओं का प्रभाव था[४]। नागार्जुनी कोण्डा (आन्ध्र) के इक्ष्वाकुवंशी राजाओं द्वारा

---

१. बुद्धिस्ट सेक्ट्स इन इण्डिया, पृष्ठ ५५।

२. आन्ध्र सातवाहन साम्राज्य का इतिहास, पृ० २४६।
"नवगम महासंघयानं परिमहो सघे चातुदिसे दिन माता
पितुनं पुजाये सव सतानं हितसूख्य स्थतये। एक विसे सं।"
"बछरे निहिते सहेत च मे पुन बुधरखितेन मातर चस्य दि-
उपसिकाय। बुधरखित मातु देयधम पिठो अनो।"

३. एन आउट लाइन आव अर्ली बुद्धिज्म, पृष्ठ १२२ तथा इपिग्राफिया इण्डिका, भाग ११, पृष्ठ २०२।
"कमगुल्य पुद्र वग्रमरेग्रस्य इय खवदग्रि कवलपिग्र
वग्र मरिग्रविहरग्रि तुम्बिग्रि भग्रवद शक्यमुने शरोर परिधवेति-
एवं विहरं असंत्रण महंसघियन परिग्रह।"

४. आर्कियोलाजिकल सर्वे आव वेस्टर्न इण्डिया, भाग ४, पृष्ठ ११२-११३।
"पवजितान भिखुन निकायस महासाधियान यापनाय।"
"महासाधियान परिग्रहे चतुदिसे दिन।"

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

अंकित ईस्वी सन् २५०-२७५ के मध्य के अभिलेख से विदित है कि उस समय आन्ध्रप्रदेश में महासांघिक भिक्षुओं का प्रभाव था[१]। महायान के उद्भवकाल से ही हम जानते हैं कि आन्ध्रप्रदेशीय कुछ निकायों के सिद्धान्तों का सम्मिश्रण ही महायान का आदि स्वरूप था और इनका मूलभूत अग्रगण्य निकाय महासांघिक ही था।

कथावत्थुप्पकरण में महासांघिकों के मतवादों का स्वकवादी द्वारा खण्डन किया गया है और अट्ठकथा में उनके मत के निराकरण की व्याख्या करते हुए स्पष्ट रूप से निर्देश किया गया है कि यह महासांघिकों का सिद्धान्त था। उसके अनुसार महासांघिकों के सिद्धान्तों को संक्षेप में इस प्रकार जानना चाहिए—

अर्हत् के अर्हत्त्व की परिहानि हो सकती है—कुछ महासांघिक ऐसा मानते थे[२]। उनका कथन था कि सम्यक् वचन, सम्यक् कर्मान्त एवं सम्यक् आजीव रूप है[३]। उनका मत था कि पंचविज्ञान से युक्त व्यक्ति ही मार्गभावना कर सकता है।[४] पंचविज्ञान सम्भोग है, (आभोगसहित है[५])। लौकिक शील से शीलवान् होकर लोकोत्तर मार्ग की भावना करता है, इसलिए पहले लौकिक से मार्गक्षण में लोकोत्तर होकर दोनों शीलों से युक्त होता है[६]। ये शील को अचैतसिक मानते थे।[७] इनके मत में समादान से शील बढ़ता है[८]। काय-विज्ञप्ति काय-कर्म है और वची-विज्ञप्ति वची-कर्म। इसलिए विज्ञप्ति भी शील है।[९] पृथक्जन कुशल अव्याकृत चित्त के रहने पर सानुशय (अनुशय के साथ) कहा जाता है, उस समय जो उसका हेतु होता है, उस हेतु के न होने पर अनुशय सहेतुक होते हैं। वे उस चित्त से युक्त भी नहीं होते, इसलिए वे अव्याकृत अहेतुक चित्त से विप्रमुक्त होते हैं।[१०] ज्ञान विप्रमुक्त चित्त के होने पर

१. बुद्धिस्ट सेक्ट्स इन इण्डिया, पृष्ठ ५५।
२. रूपविपाकोति कथा १, २, २।
३. वही, २, १०, २।
४. वही, २, १०, ३।
५. वही, २, १०, ५।
६. कथावत्थुप्पकरणट्ठकथा २, १०, ६।
७. वही, २, १०, ७।
८. वही, २, १०, ३।
९. वही, २, १०, १०।
१०. वही, ३, ११, १–३।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

मार्ग चित्त नहीं प्रवर्तित होता है, इसलिए उसे ज्ञानी नहीं कहा जा सकता है।[१] ऋद्धिबल-प्राप्त व्यक्ति एक कल्प तक रह सकता है।[२] संवर और असंवर भी कर्म है।[३] सभी कर्म सविपाक है।[४] शब्द ही विपाक होता है।[५] चूँकि छः आयतन कर्म के करने से उत्पन्न हैं, इसलिए वे विपाक हैं।[६] महासांघिकों का मत था कि एक ही वस्तु में व्यक्ति राग भी करता है और विराग भी करता है। इसलिए वे परस्पर एक दूसरे के पश्चात् होते रहते हैं।[७] जो धर्म हेतु-प्रत्यय से प्रत्यय होता है वह जिनका हेतु-प्रत्यय से प्रत्यय होता है वह उन्हीं का होता है।[८] लोकोत्तर धर्मो का जरामरण भी लोकोत्तर होता है।[९] महासांघिकों के अनुसार जो लोक में बल प्राप्त वशीभूत हैं, वे यदि दूसरे के चित्त का निग्रह नहीं कर सकते हैं तो उनकी बल-प्राप्ति क्या है? वशीभाव क्या है? वे बल-प्राप्ति और वशीभाव से अवश्य ही दूसरे के चित्त का निग्रह करते हैं।[१०] 'आँख से रूप को देखता है' इस वाक्य से प्रासाद चक्षु ही रूप को देखता है— ऐसा महासांघिकों का मत था।[११] चूँकि अर्हत् सब कुछ विषय को नहीं जानता है, इसलिए उसे यह अविद्या और विचिकित्सा से अप्रहीण होना चाहिए। इसलिए अर्हत्त्व-प्राप्ति में भी कुछ संयोजनों का अप्रहाण होता है।[१२] चारों दिशाओं में नीचे-ऊपर चारों ओर लोक धातुओं का निवास है तथा अनेक ब्रह्माण्ड हैं और सब लोक धातुओं में बुद्ध होते हैं, वे सभी दिशाओं में अपने विकल्प से रहते हैं।[१३]

---

१. कथावत्थुप्पकरणट्ठकथा ३, ११, ४।
२. वही, ३, ११, ७।
३. वही, ३, १२, १।
४. वही, ३, १२, २।
५. वही, ३, १२, १।
६. वही, ३, १२, ४।
७. वही, ३, १३, १०।
८. पच्चयता कथा, ३, १५, १।
९. जरामरण कथा, ३, १५, ५।
१०. कथावत्थु ४, ६, १।
११. वही, ४, १८, ९।
१२. वही, ५, २१, ५।
१३. वही, ५, २१, ८।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

गोकुलिक

गोकुलिक निकाय महासांघिक निकाय से उद्भूत एक निकाय था, जिसके सम्बन्ध में विद्वानों के विभिन्न मत हैं। दीपवंस और महावंस के अनुसार यह महासांघिक निकाय का उपनिकाय था। कुछ विद्वानों का यह कथन है कि गोकुलिक ही कौक्कुटिक कहलाता था। चूँकि महासांघिकों का प्रमुख केन्द्र पाटलिपुत्र का कुक्कुटाराम बिहार था, इसीलिए कुक्कुटाराम से कौक्कुटिक नाम पड़ना स्वाभाविक है। पीछे कौक्कुटिक शब्द विकृत होने के कारण कुक्कुलिक अथवा कौक्कुलिक बन गया और उसी का रूपान्तर गोकुलिक है।[1] किन्तु दीपवंस और महावंस में स्पष्ट रूप से उल्लेख है कि गोकुलिक ही मूल नाम था[2] और यह नाम कम से कम पाँचवीं शताब्दी तक विद्यमान था। यद्यपि इस निकाय का उल्लेख अब तक प्राप्त अभिलेखों में उपलब्ध नहीं हुआ है, किन्तु अशोक के गुरु आचार्य मुग्गलिपुत्त तिस्स द्वारा प्रणीत कथावत्थुप्पकरण तथा पाँचवीं शताब्दी ईस्वी में आचार्य बुद्धघोष द्वारा लिखित उसकी अट्ठकथा में इस निकाय के भिक्षुओं की चर्चा है और उनके केवल एक सिद्धान्त का निग्रह किया गया है, जिसमें कहा गया है कि गोकुलिक मानते थे कि सभी संस्कार गर्म, राख एवं लपटरहित आग के समान हैं—"सब्बे संखारा अनोधिकत्वा कुक्कुलाति[3]।" ऐसा कुछ जान पड़ता है कि इस कुक्कुल शब्द के ही कारण कौकुलिक तथा कौक्कुटिक आदि शब्दों का प्रयोग गोकुलिकों के लिए किया गया है। वास्तव में कुक्कुटाराम शब्द को लेकर यह भ्रम मात्र फैला हुआ है।

१. बौद्धधर्म के विकास का इतिहास, पृष्ठ १८२-१८३।

२. 'ततो अपरकालम्हि तस्मिं भेदो अजायथ।
गोकुलिका एकब्योहारि दिधा भिज्जथ भिक्खवो।'
—दीपवंस, पृष्ठ २५, गाथासंख्या ७९।
ततो गोकुलिका जाता एक ब्योहारिकापि'च
—महावंसो, पंचम परिच्छेद, पृष्ठ १९ गाथा ३३०।

३. कथावत्थु—कुक्कुलकथा १, २, ८।
कौशाम्बी में तीन बिहार थे—घोषिताराम, कुक्कुटाराम और पावारिकाराम—
घोसितसेट्ठि घोसितारामं, कक्कुटसेट्ठि कुक्कुटारामं, पावारिकसेट्ठि पावारिकारामन्ति तयो महाविहारे कारापेत्वा सत्थुआमनत्थाय पहिणिसु।—धम्मपदट्ठकथा, पृष्ठ १०५।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

कुक्कुटाराम बिहार कौशाम्बी में था न कि पाटलिपुत्र में। पाटलिपुत्र में महायान ग्रन्थों के अनुसार कुकुट्टागार था[1] और अशोक के गुरु उपगुप्त स्थविर की अध्यक्षता में वहीं तृतीय संगीति का आयोजन हुआ था, जो भगवान् बुद्ध के परिनिर्वाण के १०० वर्ष के पश्चात् आयोजित हुई थी।[2] किन्तु यह दोनों वर्णन स्थविरवाद के पालि ग्रन्थों के आधार पर मान्य नहीं है, क्योंकि पालि-ग्रन्थों में तृतीय संगीति मोग्गलिपुत्त तिस्सस्थविर की अध्यक्षता में पाटलिपुत्र के अशोकाराम में सम्पन्न हुई थी और भगवान् बुद्ध के महापरिनिर्वाण के २३६ वर्ष बाद यह संगीति अशोक द्वारा आयोजित की गई थी[3]। इस प्रकार कुक्कुटागार का पाटलिपुत्र में होना और उसमें तृतीय संगीति का आयोजन दोनों संदेहास्पद है। फिर कुकुटाराम के नाम पर कौकुटिक शब्द की व्युत्पत्ति ग्राह्य नहीं है। कौशाम्बी में अवश्य तीन बिहार थे, जिनका वर्णन हम ऊपर कर आये हैं और हम ऊपर यह भी अध्ययन कर आये हैं कि महासांधिकों की संगीति कौशाम्बी में ही सम्पन्न हुई थी।

जिन परिस्थितियों में गोकुलिक निकाय का प्रादुर्भाव हुआ था और स्थविर-वादी ग्रन्थों में इसके सम्बन्ध में जो वर्णन उपलब्ध हैं उनके अनुसार हम यह जानते हैं कि यह निकाय बहुत प्रबल था और इसका प्रभाव मथुरा, कौशाम्बी, संकास्य, बेरंजा आदि प्रदेशों में अधिक था। अवन्तिपुत्र[4] एवं पुरोहितपुत्र आयुष्मान् महाकात्यायन का निवास केन्द्र मथुरा नगर का वृन्दावन[5] महाबिहार था और यह स्थान तथागत की भी विचरण-भूमि थी। बुद्ध-काल में मथुरा क्षेत्र में बौद्ध धर्म का प्रभाव कम पड़ा था और वहाँ तैर्थिकों का ही बाहुल्य था[6]—ऐसा कुछ विद्वानों का कथन है, किन्तु यह ग्राह्य नहीं है, क्योंकि आयुष्मान् महाकात्यायन ने मथुरा में रहकर न केवल शूरसेन प्रदेश में ही प्रत्युत उत्तर के जनपदों में भी सद्धर्म का प्रचार किया था। डॉ० भिक्षु धर्मरक्षित का मत है

१. अवदानशतकम्, पृष्ठ २६२।

२. वही, पृष्ठ २६१।

३. दीपवंस, सातवाँ परिच्छेद, गाथासंख्या ४३, पृष्ठ ४२।

४. यह अवन्तिनरेश चण्डप्रद्योत की कन्या का पुत्र था।

—मज्झिमनिकायट्ठकथा २, ४, ४।

५. पालिग्रन्थों में इसे 'गुन्दावन' कहा गया है।

—अंगुत्तरनिकाय पंचक-निपात, ५, २, १० तथा मज्झिम निकाय २, ४, ४ कृष्ण का वृन्दावन—अट्ठकथा

६. मथुरा—श्रीकृष्णदत्त वाजपेयी द्वारा लिखित, पृष्ठ १४।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

कि मथुरा कम्मासदम्म (कुम्मा) और ब्राह्मणों का ग्राम थूण (थानेश्वर) एक ऋजु मार्ग पर अवस्थित थे और भगवान् बुद्ध ने वेरंजा से होकर मथुरा और वहाँ से यमुना नदी पारकर हरियाणा के कम्मासदम्मनिगम तथा कुरुओं के अनेक नगरों की चारिका करते हुए थूण की यात्रा की थी और विनयपिटक में बुद्ध-विचरण-भूमि की यही पश्चिमी सीमा मानी गयी है[१] ।

इन प्रदेशों में बुद्धकाल में ही बौद्ध धर्म काफी समृद्ध हो चुका था । इन प्रदेशों के राष्ट्रपाल जैसे सम्पन्न कुलपुत्रों ने गृह त्याग कर प्रव्रज्या ग्रहण की थी । मथुरा के सम्बन्ध में डा० नीलकण्ठ पुरुषोत्तम जोशी का भी यही मत है कि इस नगर से बौद्धधर्म का अतिनिकट का सम्बन्ध था ।[२] कुछ विद्वानों का कथन है कि गोकुल संस्कृत-साहित्य का अति प्रसिद्ध शब्द है और महासांघिकों के सभी ग्रन्थों की सभी रचनायें संस्कृत में ही हुईं । अतः उन्होंने वृन्दावन या गृन्दावन शब्दों का व्यवहार न कर अपने को गोकुलवासी ही माना और यह गोकुलिक नाम से प्रसिद्ध हुआ । बाद में गोकुलिक निकाय के भिक्षु समस्त भारतवर्ष में फैल गये थे और अपने सिद्धान्त के प्रतिपादन में इन्होंने अनेक ग्रन्थों की रचनाएँ भी की थीं ।[३]

एकव्यवहारिक

यह भी महासांघिकों का एक उपनिकाय था । इनका प्राधान्य दक्षिण की ओर अधिक था, किन्तु ये गोकुलिकों की भाँति बहुत प्रभावशाली नहीं थे । अतः इनके सम्बन्ध में अधिक जानकारी उपलब्ध नहीं है ।

परमार्थ के अनुसार एकव्यवहारिक सम्प्रदाय में सर्वधर्म—संसार और निर्वाण लौकधर्म और लोकोत्तर धर्म—प्रज्ञप्तिमात्र एवं अवस्तुमात्र माने जाते थे । इस समानवाचक पद का सब धर्मों में अभेदव्यवहार मानने के कारण वे एकव्यवहारिक कहे जाते थे ।

भव्य के अनुसार तथागत एक चित्त से एक क्षण में सब धर्म जानते हैं—इस मतको स्वीकार करने के कारण इस निकाय को एकव्यवहारिक कहते थे[४] ।

१. साप्ताहिक हिन्दुस्तान, ८ जून १९७५ के पृष्ठ १४ में प्रकाशित "बुद्धभूमि की पश्चिमी सीमा" शीर्षक लेख ।
२. मथुरा की मूर्तिकला, पृष्ठ १ ।
३. बौद्धधर्म के हीनयान के विकास का इतिहास, पृष्ठ २०३ ।
४. बौद्धधर्म के विकास का इतिहास, पृष्ठ २९ ।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

प्रज्ञप्तिवादी

यह भी महासांघिकों का ही एक उपनिकाय था, जो गोकुलिक निकाय से फूट निकला था। यह भगवान् बुद्ध के शिक्षापदों की प्रज्ञप्तियों पर ही अधिक बल देने वाला था। इस उपनिकाय का भी प्रभावक्षेत्र मथुरा एवं उसके आसपास का ही क्षेत्र था। बाद में यह अन्य प्रदेशों में फैला। पीछे महायान के प्राबल्य के समय इसका प्रभाव कम पड़ गया और यह भी उसका ही अंग माना जाने लगा। यद्यपि महायान अन्य निकायसमूह का एकीकरण तथा महासांघिक भिक्षु-संघ का रूपान्तर था। प्रज्ञप्तिवादी इस निकाय के अंगभूत समूह थे। अतः ये अलग होते हुए भी उनसे सर्वथा भिन्न नहीं थे।

परमार्थ के अनुसार प्रज्ञप्तिवाद का जन्म बहुश्रुतियों से अभ्यन्तर सुधार से हुआ, इसी कारण उन्हें बहुश्रुतिय, विभज्यवादी भी कहा जाता है। महाकात्यायन इस निकाय के प्रवर्तक कहे गये हैं। भव्य के अनुसार प्रज्ञप्तिवादियों के विवरण में दुःखस्कन्ध नहीं है। बारह (१२) आयतन परिनिष्पन्न अर्थ वाले नहीं हैं। संस्कार अन्योन्यपरतन्त्र हैं। दुःख परमार्थतः सत्य है। चैतसिक प्रज्ञप्तिमार्ग नहीं है। अकाल-मरण नहीं होता। पुरुष कर्ता नहीं है। सब दुःख का कारण कर्म है। वसुमित्र के अनुसार पुण्य से आर्य मार्ग की प्राप्ति होती है। मार्ग भावयितव्य नहीं है और न भंगयोग्य है।[१]

बाहुलिक

यह भी महासांघिक का एक उपनिकाय था इसे बाहुश्रुतिक भी कहते हैं। यह उन भिक्षुओं का निकायसमूह था, जो स्वयं को बहुश्रुत बताते थे। निकाय-ग्रन्थों के पठन-पाठन और उनमें पारंगत होने को यह उत्तम मानते थे। इस निकाय के भिक्षु भी सम्पूर्ण उत्तर भारत एवं दक्षिण के कुछ प्रदेशों में फैले हुए थे। सूनापरान्त, माहिष्मती, गुजरात आदि क्षेत्रों में भी इस निकाय के भिक्षु रहते थे। यह प्रायः आगम-ग्रन्थों का ही मनन करते थे। इनके सिद्धान्त-प्रतिपादक अनेक ग्रन्थ थे, जिनमें से कुछ के तिब्बती और चीनी में अनुवाद उपलब्ध हैं।

प्लाट्टढेरी से एक घड़े के ऊपर अंकित पहली शताब्दी ईस्वी के लेख से प्रकट है कि तक्षशिला से लेकर अफगानिस्तान तक बाहुश्रुतिकों का प्राधान्य था[२]। नागार्जुनी कोण्डा के प्रस्तरस्तम्भ से प्राप्त तीसरी शताब्दी ईस्वी के

---

१. बौद्धधर्म के विकास का इतिहास, पृष्ठ २१२।

२. ऐन आउट लाइन आफ अर्ली बुद्धिज्म, पृष्ठ ९३।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

अन्तिम चरण के अंकित दो अभिलेखों से प्रकट है कि आन्ध्रप्रदेश में भी बाहुश्रुतिकों का प्राधान्य था[१]।

इस प्रकार प्राप्त अभिलेखों से स्पष्ट है कि पहली शताब्दी ईस्वी से लेकर तीसरी शताब्दी ईस्वी तक बाहुलिकों का गान्धार तथा आन्ध्रप्रदेश में बाहुल्य था। परमार्थ के अनुसार अर्हत् याज्ञवल्क्य इस निकाय के प्रवर्तक थे। हरिवर्मन का सत्यसिद्धिशास्त्र भी इसी सम्प्रदाय से सम्बन्ध रखता था। इस शास्त्र में पाँच पिटकों का उल्लेख मिलता है। वह वसुमित्र के अनुसार इस निकाय में बुद्ध के पाँच स्वर, देशना की पाँच वस्तुएँ शान्त या लोकोत्तर माने जाते थे—अनित्यता, दुःख, शून्यता, अनात्म और निर्वाण। ये वस्तुएँ नैरयाणिक हैं और विमुक्तिमार्ग में पहुँचाती हैं। देशना की शेष बातें लौकिक हैं। महादेवकी अर्हत्-विषयक पाँच बातें इस निकाय में स्वीकृत थी।

भव्य के अनुसार नैरयाणिक मार्ग इनके मत में निर्विचार हैं। दुःख सत्य, सम्वृति सत्य, एवं आर्यसत्य सत्य हैं। समापत्ति का लाभ संस्कार-दुःखता के बोध से होता है—दुःख, दुःखता और परिणाम-दुःखता के बोध से नहीं। संघ लोकोत्तर है[२]।

चैत्यवादी

यह भी महासांधिक निकाय से प्रादुर्भूत एक निकाय था। इसका प्राधान्य दक्षिण भारत में था। आन्ध्रप्रदेश का धान्यकटक इस निकाय का प्रमुख गढ़ था। धान्यकटक के महाचैत्य महाविहार के भिक्षु ही चैत्यवादी कहलाते थे, जो साँची, उज्जैन, भरहुत और कौशाम्बी तक फैले हुए थे। एक समय इन

१. इपिग्राफिया इण्डिका, भाग, २०, पृष्ठ २३-२४।
सिन्ध नमो भगवतो तेलोकन्ध मधुरा वहस महाराजस विरुपखपति महासेन। परिगहितस अगिहोतागिठोम वाजपेयासमेधय जिस हिरंण-कोटि गो-सत-सहस पदायिस सवपेसु अपतिहत-संकपस वासेठिपुतस इसकुनं सिरि चातमूलस सुन्हायमहाराजस माढरीपुतस इखकुन-सिरि-विरपुरिस दतस भयाय महाराजस सिरिएहु वुल-चातमूलस मातुय महादेविय मठिदेवाय—इमं विहारो सवबातवियुतो आचरियानं बहुसुतीयानं पतिथापित ३२ पुनं बुधिणसर्वधरं वितियं गिन्हपखं सुघायति।

२. बौद्धधर्म के विकास का इतिहास, पृष्ठ २९१।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

चैत्यवादियों का बड़ा प्रभाव था और बड़े-बड़े नरेशों का इन्हें संरक्षण प्राप्त था। महायान के प्राबल्य की पूर्वपीठिका के रूप में चैत्यवादियों ने एक महान् भूमिका निभायी थी। इसलिए महायान बौद्धधर्म के इतिहास के अध्ययन में चैत्यवाद का एक अपना विशिष्ट स्थान है, जिसका स्पष्ट बोध सम्प्रति नेपाल में प्राप्त महायानी धर्मग्रन्थों के अध्ययन से होता है। चैत्यनिर्माण की दिशा में भी इस निकाय का अपना एक प्रबल पक्ष रहा है। यद्यपि सभी बौद्ध नित्यप्रति चैत्यों की वन्दना करते हैं और "वन्दामि चेतियं सब्बं सब्बठानेसु पतिट्ठितं" (सभी स्थानों में प्रतिष्ठित चैत्यों की वन्दना करता हूँ)। फिर भी महायानी देशों में चैत्यों का जो महत्त्व है, वह केवल इस वन्दना मात्र से नहीं जाना जा सकता। सम्प्रति नेपाल, लद्दाख, हिमाचलप्रदेश, भूटान, सिक्किम, तिब्बत आदि महायानी बौद्धप्रदेशों में छोटे-बड़े सब चैत्यों की प्रदक्षिणा करके ही गमनागमन करना होता है। प्रत्येक ग्राम अथवा नगर-द्वार पर चैत्य बने होते हैं। गमनागमन में प्रदक्षिणा का विस्मरण महाघातक एवं अक्षम्य अपराध माना जाता है किन्तु स्थविरवादी "हीनयानी" देशों में चैत्यों का गौरवपूर्ण स्थान होते हुए भी इतने प्रतिबन्धात्मक नियम नहीं हैं। सर्वप्रथम एक हीनयानी देश के बौद्ध को महायानी देश में जाकर इन चैत्यों के गौरव का अनुभव होता है और यह समस्त प्रथाएँ चैत्यवादियों की देन हैं। ऊपर हम कह आये हैं कि धान्यकटक का महाचैत्य इनका केन्द्र था और वहीं से ये चारों ओर फैले थे। इन आन्ध्रवासी चैत्यवादी भिक्षुओं का प्रभाव न केवल भारत में ही पड़ा, प्रत्युत बर्मा और लंका के इतिहास के साथ ही इनका प्रगाढ़ सम्बन्ध है। बर्मी इतिहासकारों ने इन पर काफी प्रकाश डाला है[1] और आन्ध्रवासियों के सद्धर्म के प्रति किये गये महान् कार्यों का भी उल्लेख किया है। ऊपर हम देख आये हैं कि महायान की उत्पत्ति का स्थान भी आन्ध्र ही था।

चैत्यवाद महासांघिकों का एक उपनिकाय था, जिसके संस्थापक महादेव थे[2]। प्राप्त अभिलेखों में इस निकाय का नाम चेतिक[3], चेतकिया[4] तथा चेतिवाद[5] मिला है। नासिक के गुहा-अभिलेख संख्या २२ में अंकित

---

१. आउट लाइन आव बर्मीज हिस्ट्री, पृष्ठ १९२।

२. बौद्धधर्म के २५०० वर्ष, पृष्ठ ११७।

३. अमरावती स्तूप, जेम्सबर्गेस द्वारा लिखित, पृष्ठ २७।

४. वही, पृष्ठ २७।

५. वही, पृष्ठ ४१।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

है कि चैत्यवादी उपासक मृगदास द्वारा इस गुहा का दान किया गया था[१]। अमरावती के वासिष्ठीपुत्र पुलमावो के समय के अभिलेख से ज्ञात होता है कि धर्मचक्र, चैत्यवादी निकाय के भिक्षुओं के लिए दान किया गया था[२]। जुन्नार[३] और अजन्ता[४] के गुहालेखों में भी चैत्यवादियों का भी उल्लेख है। इस प्रकार स्पष्ट है कि सातवाहनकाल में चैत्यवादियों का प्रभाव आन्ध्रप्रदेश का अमरावती और पश्चिमी भारत के प्रदेशों में था। वसुमित्र के चीनी अनुवाद के अनुसार चैत्यवादियों में बोधिसत्त्व के लिए स्वेच्छया दुर्गति-प्राप्ति सम्भव है, स्तूप की पूजा से महाफल नहीं होता तथा पहले महादेव की पाँच वस्तुएँ स्वीकार की जाती हैं[५]।

(ग) विभिन्न नये निकाय

हेमवत

हेमवत निकाय हिमवन्तप्रदेश के उन प्रदेशों में विद्यमान था, जहाँ मज्झन्तिक स्थविर के नेतृत्व में धर्म-प्रचारार्थ प्रथम बार भिक्षु भेजे गये थे। हम इस सम्बन्ध में हिमवन्तप्रदेश के पाँचों राष्ट्रों में मज्झन्तिक स्थविर के सहयोगी भिक्षुओं द्वारा धर्म-प्रचार करने का वर्णन कर आये हैं। उन राष्ट्रों में एक-एक भिक्षु ने एक-एक राष्ट्र में धर्म-प्रचार का भार लिया था। काश्यप-गोत्र स्थविर द्वारा प्रचारित भू-भाग में काश्यपीय निकाय का जन्म हुआ था। इस सम्बन्ध में भी हम ऊपर वर्णन कर आये हैं। कालान्तर में उन्हीं हिमवन्त प्रदेश के पाँचों राष्ट्रों में एक नये निकाय का प्रादुर्भाव हुआ, जिसका नाम हेमवत (=हैमवत=हिमालय का) पड़ा। इस निकाय ने पूर्व के सभी भिक्षुओं ने परिवेश, लिंग, परिष्कार, नाम आदि का परित्याग कर अन्य प्रकार के

१. इपिग्राफिया इण्डिका, पृष्ठ ७७।

२. "सिध राजो वासिठीपुतस सामिसिरि पूलुमाविस सबधरं पिण्ड-सुत्त-रियानं कहुतर-गह पतिस पुरिगदपतिस च पुतस इसिलस समतुकस समगिनिकस भयाय सनाकनिकाय सपुसकस भगवतो महाचेतियों चेतकियानं निकायस परिग्रहे अपरदारे धमधक देवधमं मातापुतु उदिस।"

—अर्ली बुद्धिज्म, पृष्ठ ९५

३. "चैतवदकस भयं बुधिनो मातुनो उपयानों आनुगामिक सुचि दानं।"

—अर्ली बुद्धिज्म, पृष्ठ ९५।

४. सर्वे आव वेस्टर्न इण्डिया, भाग १०, पृष्ठ ८५।

५. बौद्धधर्म के विकास का इतिहास, पृष्ठ २९२।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

आकल्प (आकप्प) को ग्रहण किया। सम्प्रति हिमाचलप्रदेश, कुल्लू, कांगड़ा, लद्दाख और नेपाल में इस निकाय के परम्परागत अनुयायी पाये जाते हैं। इनके सिद्धान्तों के सम्बन्ध में तिब्बती, चीनी आदि भाषाओं में उपलब्ध ग्रन्थों से बहुत कुछ ज्ञात होता है कि यह भिक्षुनिकाय भी स्थविरवादी परम्परा का ही एक परिवर्तित स्वरूप था और देश-काल के अनुसार यह परिवर्तनसापेक्ष भी था। मध्य मण्डल के भिक्षुओं के लिए भगवान् बुद्ध ने निम्नलिखित आठ परिष्कारों (=सामग्रियों) को धारण करने की अनुमति दी थी—

"तिचीवरं च पत्तं च वासी सूची च बन्धनं।
परिस्सावनेन अठ्ठेते मुत्तयोगस्स भिक्खुनो[१] ॥

अर्थ—तीन चीवर, पात्र, छुरा, सूई, कायबन्धन और जल छाका योग में लगे हुए भिक्षुओं के ये आठ परिष्कार हैं।

किन्तु मध्यमण्डल की इस वेश-भूषा में हिमवन्तप्रदेश के शीत-प्रधान प्रदेशों में उनका रह सकना सम्भव न था। आजकल हिमवन्तप्रदेशवासी हेमवत निकाय के भिक्षु लामाओं के वेश में रहते हैं। वे ऊपर से देखने में महायानी जान पड़ते हैं, किन्तु अनेक बातों में वे महायानी लामाओं से भिन्न होते हैं।

भव्य और विनीतदेव ने हेमवत निकाय को महासांघिक निकाय का ही एक उपनिकाय बतलाया है, किन्तु वसुमित्र ने इनको सर्वास्तिवादियों से सम्बन्धित बतलाया है[२]। उन्होंने मूल स्थविरवाद से निकले हुए भिक्षुओं को ही हेमवत कहा गया है, किन्तु दीपवंस और महावंस में हेमवत को उत्तरकालीन कहा गया है। प्रोफेसर प्रेजीलुस्की ने हेमवत को निम्नलिखित कारणों से कश्यपीय से सम्बन्धित कहा है—

(१) सिंहली ग्रन्थों के आधार पर हम जानते हैं कि मज्झिम, दुन्दुभिसर और काश्यपगोत्र हिमवन्तप्रदेश में धर्म-प्रचारार्थ भेजे गये थे।

(२) साँची और सोनारी से पायी गयी अस्थिमंजूषाओं पर यह अभिलेख अंकित है—

(अ)—सपुरिसस कासपगोतस सव हेमवता चरियस।

(ब)—सपुरिसस गोतिपुतस कासपगोतस स हेमवता चरियस।

१. जातकट्ठकथा पठमो भागो अविदूरे निदान, पृष्ठ ४९।
२. बुद्धिस्ट सेक्ट्स इन इण्डिया, पृष्ठ १८९।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

(३) एक और भी अभिलेख मिला है जिसमें मज्झिम और दुन्दुभिसर का वर्णन मिला है[१]।

प्रसिद्ध इतिहासलेखक श्री जयचन्द्र विद्यालंकार[२], डॉ० भिक्षु धर्मरक्षित[३] आदि विद्वानों का कथन है कि साँची और उससे पाँच मील की दूरी पर स्थित सोनारी के स्तूपों से प्राप्त अस्थिमंजूषाओं पर सब हेमवताचार्य शब्द से स्पष्ट है कि हिमवन्तप्रदेश में गये धर्मप्रचारक भिक्षुओं के लिए ही हेमवताचार्य शब्दों का प्रयो। किया गया था और दीपवंस तथा महावंस से हम यह भी जानते हैं कि कौन-कौन से भिक्षु वहाँ भेजे गये थे और उन्हीं के नाम इन अस्थि-मंजूषाओं पर अंकित हैं। अतः ऊपर लिखित विवरण इन लेखों से प्रमाणित है।

वसुमित्र ने हेमवतों के सिद्धान्तों की चर्चा करते हुए कहा है कि उनके सिद्धान्त सर्वास्तिवादियों से मिलते हैं और इस प्रकार है—बोधिसत्त्व प्रायः पृथक्जन हुआ करते हैं। बोधिसत्त्व जब माँ के गर्भ में आते हैं, तब उनमें राग और काम नहीं होता, वंशानुगत पाँच लोकोत्तर शक्तियाँ नहीं प्राप्त होतीं। देवताओं में ब्रह्मचर्यवास नहीं होता और अर्हत् भी प्रमादी और संशयी हो हो सकते हैं। वे लोभ के भी वशीभूत हो सकते हैं। दूसरों की सहायता से ही वे आध्यात्मिक शक्ति को प्राप्त कर सकते हैं तथा निर्वाण की प्राप्ति उन्हें हो सकती है[४]।

राजगिरिक

यह अन्धक निकाय से प्रादुर्भूत उपनिकाय था। कथावत्थु में इसके दस सिद्धान्तों का खण्डन प्राप्त है जिनमें आठ सिद्धार्थकों के समान हैं। इससे ज्ञात होता है कि सिद्धार्थकों से इनकी निकट की घनिष्ठता थी। निकायसंग्रह के अनुसार इन्होंने अंगुलिमालपिटक नामक ग्रन्थ लिखा था। जैसा कि ऊपर हमने कहा है, सिद्धार्थकों से अधिक केवल दो ही मत इनमें अपने थे। सिद्धार्थकों के विवरण में हम उनके सिद्धान्तों का वर्णन करेंगे। इनके अपने दो मतों में पहला यह था कि संघ में फूट उत्पन्न करने वाला व्यक्ति सम्पूर्ण कल्प नरक में रहता है[५]। चूँकि अमुक मरने वाला है, अमुक नहीं मरने वाला है—ऐसा मरने वालों

---

१. बुद्धिस्ट सेक्ट्स इन इण्डिया, पृष्ठ १९०।

२. भारतीय इतिहास की रूपरेखा जिल्द दो, पृष्ठ ६७३।

३. बौद्धधर्म-दर्शन तथा साहित्य, पृष्ठ २४७-२४८।

४. बुद्धिस्ट सेक्ट्स इन इण्डिया, पृष्ठ १९०-१९१।

५. कथावत्थुप्पकरणं ३, १३, १।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

का समय नियत नहीं है इसलिए संज्ञा-वेदयित निरोधसमापत्ति में रहने वाले की मृत्यु भी हो सकती है[1]।

अमरावती के एक अभिलेख में राजगोरनिवासिक भिक्षुओं का वर्णन है[2] और यह स्पष्ट है कि यह राजगिरिक भिक्षुओं का ही आवास था। पालि के इतिहास-ग्रन्थ दीपवंस और महावंस में इनका उल्लेख है और कथावत्थुप्पकरण में इनके सिद्धान्तों का भी वर्णन है। इस प्रकार अशोककाल से लेकर शुंगकाल तक इनका इतिहास मिलता है, किन्तु ह्वेनसांग के यात्रा-विवरण में इनका उल्लेख नहीं है। आचार्य बुद्धघोष ने पाँचवीं शताब्दी ईस्वी में लिखित अपने अट्ठकथा-ग्रन्थों में इन्हें अन्धक निकाय के अन्तर्गत गिनाया है, जिससे प्रकट होता है कि राजगिरिक भिक्षु भी आन्ध्रवासी थे। अमरावती में इनके द्वारा अंकित अभिलेख से भी यह बात प्रमाणित है। अतः राजगृह, नालन्दा आदि के निकटवर्ती क्षेत्रों में ही इनका निवासस्थान था या इनका बाहुल्य था—यह कहना समीचीन नहीं जान पड़ता है। इनके नाम से ऐसा भ्रम मात्र होता है, किन्तु वास्तव में ये आन्ध्रवासी थे।

सिद्धार्थिक

अन्धक भिक्षुओं के अन्तर्गत चार भिक्षुनिकाय आते हैं—राजगिरिक, सिद्धार्थिक, पूर्वशैलीय और अपरशैलीय। इनमें से हम राजगिरिक का वर्णन कर आये हैं। अन्धकों का दूसरा प्रमुख उपनिकाय सिद्धार्थिक था। इनके मतानुसार कोई धर्म किसी दूसरे धर्म से संगृहीत नहीं है, इसलिए ऐसा होने पर एक प्रकार से रूपसंग्रह आदि का होना निरर्थक है[3]। तिलों में तेल होने के समान वेदना, संज्ञा आदि अनुप्रविष्ट माने जाते हैं, इसलिए कोई धर्म किसी धर्म से सम्प्रयुक्त नहीं है, ऐसा होने पर भी ज्ञान सम्प्रयुक्त है, आदि कहना निरर्थक है[4]। चूँकि स्पर्श आदि नहीं है, इसलिए चैतसिकों को भी नहीं होना चाहिए। अतः चैतसिकों में धर्म नहीं है[5]। इनका मत था कि चैतसिक धर्म ही दान है[6]। यह मानते थे कि परिभोगमय पुण्य होता है[7]। लोग यहाँ

१. कथावत्थुप्पकरण ३, १५, ८।
२. बुद्धिस्ट सेक्ट्स इन इण्डिया, पृष्ठ ५६।
३. कथावत्थु, संग्रहकथा, २, ७, १।
४. सम्पयुत्तकथा २, ७, २।
५. चैतसिककथा, २, ७, ३।
६. दानकथा, २, ७, ४।
७. वही, २, ७, ५।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

जो चीवर आदि दान करते हैं, इसीसे परलोक में जीवननिर्वाह करते हैं[१]। अर्हतों को सभी धर्म विपाकों का अनुभव करके ही परिनिर्वाण को प्राप्त होना चाहिए। इसलिए अर्हतों की अकाल मृत्यु नहीं होती है[२]। यह सारा कर्म क्लेश और विपाक कर्म से होता है[३]।

पूर्वशैलीय

अन्धकनिकाय का तृतीय उपनिकाय पूर्वशैलीय था। कुछ विद्वानों का भी मत है कि पूर्वशैलीय और अपरशैलीय निकाय चैत्यवादियों के उपनिकाय थे[४]। ईस्वी शताब्दी के प्रथम चरण में इनके बहुत विवरण प्राप्त होते हैं। वासिष्ठीपुत्र पुलमावी के समय में धान्यकटक के महाविहार के पूर्वी द्वार पर धर्मचक्र ध्वज के ऊपर इनका नामांकन है[५]। कृष्णा जिला के एल्लूर में प्राप्त शिलालेख में भी आर्यपूर्वशैलीय भिक्षुओं का वर्णन है।[६]

इसी प्रकार नागार्जुनी कोण्डा के एक विहार में भी पूर्वशैलियों का उल्लेख है[७]। इससे स्पष्ट है कि पूर्वशैलीय भिक्षुओं का बाहुल्य आन्ध्रप्रदेश में ही था और धान्यकटक पर्वत इनका प्रधान केन्द्र था। महापण्डित राहुल सांस्कृत्यायन ने लिखा है कि भोटिया ग्रन्थों से ज्ञात होता है कि पूर्व शैल और अपर शैल नामक दो पर्वत धान्यकटक के पूर्व और पश्चिम में थे। इन्हीं के ऊपर के विहार पूर्वशैलीय कहे जाते थे[८]। यह स्तूपपूजा, चैत्यपूजा आदि के फल को नहीं मानते थे। इन्होंने "राष्ट्रपाल गर्जित" नामक ग्रन्थ की रचना की थी[९]।

---

१. 'इतोदिन्नोनियापि'ति इति दिन्नकथा, २, ७, ६।

२. अत्थि अरहतो अकालमच्चूति ४, १७, २।

३. वही, ४, १७, ३।

४. २५०० इयर्स आव बुद्धिज्म, पृष्ठ ११८।

५. ऐन आउट लाइन आव अर्ली बुद्धिज्म, पृष्ठ ९६।

६. आर्कियोलाजिकल सर्वे रिपोर्टर्स आफ इण्डिया, १९२३-२४ पृष्ठ ९३।
"अतपोरेन धमकडस महाविहारे पुवदारे पवजितान्
भिक्खुसघस पुवसेलियान निगायस परिगहे धमचकधयो
पदिठापितो सवलोक-सत्त्व-हित-सुखाय।"

७. इपिग्राफिया इण्डिका, भाग २०, पृष्ठ २२।

८. पुरातत्त्व-निबन्धावली, पृष्ठ १०४।

९. निकायसंग्रह, पृष्ठ ६।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

पूर्वशैलियों के मतानुसार अर्हत् भी शुक्र (वीर्य) त्याग करते हैं और मारकायिक देवता अर्हत् के लिए अशुचि उपस्थित करते हैं, किन्तु शीलवानों को स्वप्नदोष नहीं होता है और अर्हत् को तो सर्वथा नहीं, क्योंकि भगवान् ने कहा है—अट्ठानं मेतं भिक्खुवे अनवकासो यं अरहतो असुचि मुच्चेयाति[१]। स्त्री-पुरुष दोनों के गोत्र आदि के अभाव में अर्हत् को भी अज्ञान होता है[२]। पूर्वशैलीय ऐसा मानते थे कि अर्हत् को भी स्त्री-पुरुषों के गोत्र आदि के निश्चित ज्ञान न होने के कारण कांक्षा (= विमति = सन्देह) होता है[३]। इनके मत से चूँकि अर्हतों को स्त्री-पुरुष के गोत्रादि को पूछना पड़ता है, इसलिए अर्हतों को दूसरे के सहारे रहना होता है[४]। स्रोतापत्ति मार्ग के क्षण में प्रथम ध्यानप्राप्ति की अवस्था में वचन भेद होता है[५]। दुःख बोलते हुए, दुःख में ज्ञान होता है और वही मार्गांग और मार्ग से युक्त होता है[६]। पूर्वशैलीय मानते थे कि प्रतीत्यसमुत्पाद असंस्कृत होता है, क्योंकि भगवान् ने कहा है कि तथागत उत्पन्न हों अथवा न उत्पन्न हों किन्तु यह धर्म स्वभाव (प्रकृति) वैसे ही स्थित रहता है[७]। चारों सत्य, नित्य और असंस्कृत हैं[८]। उन्हीं का कथन था कि चारों अरूप्य असंस्कृत हैं[९]। पूर्वशैलीय अन्तरापरिनिब्बयी सूत्रपद को लेकर यह कहते थे कि अन्तराभव है। मृत्यु के बाद प्राणी सप्ताह या सप्ताह से अधिक वहाँ रहता है और दिव्य-चक्षु वाला न होता हुआ भी दिव्य-चक्षु वाले के समान अपने उत्पन्न होने के स्थान, माता, पिता, ऋतु आदि के समय का अवलोकन करता रहता है[१०]। पाँच ही कामगुण कामधातु हैं[११]। रूपादि पाँचों कायतन ही काम हैं[१२]। जितेन्द्रियचित्त से रहित

१. अत्थि अरहतो असुचि सुकविस्सट्ठिते १, २, १।
२. वही, १, २, १।
३. "अत्थि अरहतो कङ्खाति"ते १, २, ३।
४. वही, १, २, ४।
५. कथावत्थु, समापन्नस्स अत्थि वची भेदोति १, २, ५।
६. वही, १, २, ६।
७. वही, २, ६, २।
८. वही, २, ६, ३।
९. वही, २, ६, ४।
१०. वही, २, ८, २।
११. वही, २, ८, ३।
१२. वही, २, ८, ४।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

अरूपधर्म है, इसलिए रूप जितेन्द्रिय नहीं है[1]। जिस अर्हत् द्वारा पूर्वजन्म में कोई अर्हत् गर्हित होता है, वह उस कर्म के कारण अर्हत्त्व से परिहीन हो जाता है[2]। अमृत का आलम्बन अर्थात् निर्वाण का आलम्बन भी संयोजन होता है[3]। चूँकि वितर्क, विचार, वची संस्कार कहे गये हैं, इसलिए सब प्रकार से वितर्क और विचार करते हुए यहाँ तक कि मनोधातु की प्रवृत्ति के समय में भी वितर्क विचार शब्द होता ही है[4]। वचन विना चित्त के भी परिवर्तित होते हैं, वे चित्तानुरूप और चित्तानुगतिक नहीं होते[5]। बिना चित्त के भी कायकर्म होता है, कायकर्म चित्तानुरूप यथाचित्त नहीं होता[6]। चूँकि अर्हत् चक्षुविज्ञान आदि से युक्त होकर प्राप्त मार्ग ज्ञान से ज्ञानी कहलाता है, किन्तु यह उस चित्त से युक्त नहीं होता। इसलिए ज्ञान चित्त विप्रयुक्त कहलाता है। चूँकि द्वेष से युक्त चित्त वाला ही जीव हिंसा करता है और दृष्टियुक्त भी होता है, इसलिए दृष्टियुक्त व्यक्ति जानबूझ कर जीवहिंसा कर सकता है। इनका मत था कि चूँकि बोधिसत्त्व का अन्तिम जन्म में बुद्धत्व प्राप्त करना नियत होता है, इसलिए ज्ञान-प्राप्ति भी नियत होती है[8]। धर्म की तृष्णा भी अव्याकृत होती है[9]। धर्म-तृष्णा दुःख समुदय नहीं है[10]। एक कर्म के विपाक स्वरूप वृक्षों की शाखा और डाली से अङ्कुर निकलने के समान अथवा बीज के अङ्कुरित होने की तरह से प्रतिसन्धि के समय ही माँ के पेट में षडायतन उत्पन्न हो जाता है[11]। दृष्टिगत भी अपरियापन्न होता है[12]। अनित्य, दुःख और अनात्म के स्वरूप का मनस्कार (मनन) करते हुए अधिग्रहण करके[13], सभी संस्कारों को एक में ही

१. कथाबत्थु २, ८, १०।
२. वही, २, ८, ११।
३. वही, २, ९, २।
४. वही, २, ९, ८।
५. वही, २, ९, ९।
६. वही, २, ९, १०।
७. वही, ३, १२, ८।
८. वही, ३, १३ ४।
९. वही, २, १३, ९।
१०. वही, ३, १३, १०।
११. सलायतन उत्पत्ति कथा ३, १४, २।
१२. अपरियापन्न कथा ३, १४, ९।
१३. वही, ४, १९, ४।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

करके मनस्कार करता है। चूँकि प्रथम ध्यान के लिए भगवान् ने शब्द को कण्टक कहा हैं और यदि समापन्न व्यक्ति उसे न सुने तो कण्टक कैसे होगा? इसलिए समापन्न शब्द सुनता है[१]। क्लेश का प्रहाण एवं फल की उत्पत्ति श्रामण्य फल है इसलिए असंस्कृत है[२]। जो-जो प्राप्त होता है वह प्रतिलाभ प्राप्ति कहलाता है और वह असंस्कृत है[३]। हर प्रकार का ज्ञान लोकोत्तर होता है, क्योंकि धर्मचक्रप्रवर्तन के समय भगवान् ने बारह प्रकार के ज्ञान का उपदेश दिया था[४]! सभी धर्म अनित्य हैं, इसलिए एकचित्त क्षण वाले (किन्तु अनिच्चता के कारण एक शीघ्र भंग होता है और एक देर से[५]।

अपरशैलीय

अपरशैलीय निकाय भी आन्ध्रकनिकाय-समूह का ही एक निकाय था और यह धान्यकटक पश्चिमी पहाड़ी पर बसने वाला निकाय था[६]। कुछ विद्वानों का मत है कि यह चैत्यवादियों से उद्भूत था[७]। इन्होंने आलवक गर्जित नामक ग्रन्थ की रचना की थी[८]। दूसरी शताब्दी ईस्वी के प्राप्त पाँच अभिलेखों से प्रकट है कि इनका प्रभाव नागार्जुनी कोण्डा, घण्टशाला, कन्हेरी आदि में था। कन्हेरी पश्चिमी तट पर स्थित बौद्ध विहार था और नागार्जुनी कोण्डा आन्ध्र में। तात्पर्य यह कि अन्धक निकाय का यह उपनिकाय आन्ध्र से लेकर पश्चिमी समुद्र के तटीय विहारों तक फैला हुआ था। कन्हेरी में प्राप्त सातवाहनकालीन एक अभिलेख में कहा गया है कि अपरशैलीय भिक्षुओं के लिए चार कोठरियों का निर्माण करके दान किया गया था[९]। इसी प्रकार नागार्जुनी कोण्डा में अपरशैलीय भिक्षुओं के लिए एक गुहा का दान किया गया

१. अपरियापन्न कथा ४, १८, ८।
२. वही, ४, १९, ३।
३. पत्तिकथा ४, १९, ४।
४. कथावत्थु ४, २०, ६।
५. खडिग कथा, ४, २२, १०।
६. पुरातत्त्व निबन्धावली, पृष्ठ १०४।
७. बौद्धधर्म के विकास का इतिहास, पृष्ठ २९५।
८. निकायसंग्रह पृष्ठ ६।
९. इपिग्राफिया इण्डिका, भाग ३४, पृष्ठ २१०।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

था[१]। नागार्जुनी कोण्डा के एक अन्य अभिलेख में अपरशैलीयनिकाय अपर-महाविनयशैलीय कहा गया है[२] और इसी प्रकार अमरावती की भी एक लेख में अपरशैलीय भिक्षुओं का वर्णन है। यह अभिलेख अमरावती की घण्टशाला में अंकित है[३]। अमरावती के घण्टशालानामक विहार में जो प्राकृत-लेख मिला है, उसमें भी अपरशैलीयनिकाय का वर्णन है[४]। नागार्जुनी कोण्डा के ईस्वी सन् की तीसरी शताब्दी के मध्य भाग का मातृपुत्र वीरपुरुषदत्त के शासनकाल के छठें वर्ष में अंकित एक स्तम्भलेख में अपरमहाविनयशैलीय-निकाय का वर्णन है[५]। वहीं दूसरा अभिलेख इसी निकाय का और इसी नरेश के समय का मिला है[६]। एक तीसरा भी अभिलेख उसी नरेश के अट्ठाहरवें वर्ष में अंकित उसी स्थान के विहार से प्राप्त हुआ है, जिसमें अपरमहाविनय-शैलीय भिक्षुओं का मिलाप है[७]।

अमरावती के घण्टशालानामक विहार से अपरशैलीय भिक्षुओं के नामांकन-सहित एक अभिलेख मिला है[८]। इसी प्रकार कन्हेरी की गुफाओं से भी सातवाहनकालीन लेख में अपरशैलीय भिक्षुओं का अभिलेख है[९]। कुछ विद्वानों ने चैत्यशैलीय, अपरशैलीय और पूर्वशैलीय निकायों का जन्म महासांघिकों से बतलाया है और कहा है कि द्वितीय महादेव के कारण ऐसा हुआ था[१०]। किन्तु जैसा कि हमने ऊपर निर्दिष्ट किया है कि आचार्य बुद्धघोष ने पूर्वशैलीय, अपर-शैलीय, राजगिरिक और सिद्धार्थिकनिकायों को अन्धकनिकाय-समूह का एक उपनिकाय बतलाया है और कथावत्थु में उनके अनेक मतों का निराकरण किया

१. इपिग्राफिया इण्डिका, भाग २०, पृष्ठ २२।
"देयधन पानियपोढ़ि च सह भगिनिय रति किनाय सह च सवेन अति सवधि वगेन चतुदिसे भिखुसधे अठसु अपर सेलेसु पतितपित मतपितु....।"
२. अमरावती ऐण्ड जगेयापेठ, बाई बर्गेस, पृष्ठ १०५।
३. इपिग्राफिया इण्डिका, भाग २७, पृष्ठ १।
४. वही, पृष्ठ १।
५. वही, भाग २०, पृष्ठ १७।
६. वही, पृष्ठ १९।
७. वही, पृष्ठ २१।
८. वही, भाग २७, पृष्ठ ४।
९. बुद्धिस्ट सेक्ट्स इन इण्डिया, पृष्ठ ५५।
१०. बौद्धधर्म के विकास का इतिहास, पृष्ठ २९२।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

गया है। नागार्जुनी कोण्डा में प्राप्त एक अभिलेख में अपरशैलीय भिक्षुओं के दीघनिकाय, मज्झिम, संयुक्त एवं पंचमातुक का वर्णन है[१]।

अपरशैलीय भी ऐसा मानते थे कि अर्हत् भी शुक्र (वीर्य) त्याग करते हैं और मारकायिक देवता अर्हत् के लिए अशुचि उपस्थित करते हैं[२]।

वाजिरिय

वाजिरिय निकाय भी पिछले भारतीय छः निकायों में से एक निकाय था[३], जो पीछे वज्रयान नाम से प्रसिद्ध हुआ और इसका प्रमुख केन्द्र आन्ध्र-प्रदेश का नागार्जुनी कोण्डा ही था। पीछे यह निकाय भारत के विभिन्न प्रदेशों में फैला। निकायसंग्रह के अनुसार इस निकाय के कुछ भिक्षु लंका भी गये थे[४]। बाद में यह हिमवन्तप्रदेश में और विशेषकर नेपाल में दृढ़मूल हो गया (सम्प्रति नेपाल के महायानी गुभाजू (गुह्यवादी) एवं वज्राचार्य (वज्रयानी) इसी निकाय के जीवन्त रूप हैं। दीपवंस और महावंस में इस निकाय का नामोल्लेख मात्र है[५]।

निकायसंग्रह में इन्हें वज्रपर्वतवासी भी कहा गया है और निम्नलिखित[६] ग्रन्थ इस निकाय से सम्बन्धित बतलाये गये हैं—गूढ़विनय, मायाजालतन्त्र, समाजतन्त्र, महासमयतत्त्व, तत्त्वसंग्रह, भूतचामर, वज्रामृत, चक्रसमवर, द्वादश-चक्र, भेरुकादवुद, महामाया, पदनिक्षेप, चतुषष्टि, परामदी, मचुंद्भव, सर्वबुद्ध, सर्वगुह्य, समुच्चयतन्त्र।

मरीचिकल्प, हेरम्बकल्प, त्रिसमयकल्प, राजकल्प, वज्रगन्धारकल्प, मरीचि-गुह्यकल्प, शुद्धसमुच्यकल्प, मायामरीचिकल्प[७]।

---

१. बौद्धधर्म के विकास का इतिहास, पृष्ठ २९६।

२. खडिग कथा, १, २, १।

३. महावंस, ५, १२, १३।

"हेमवता राजगिरिया तथा सिद्धत्थकापि च।
पुब्बसेलिय भिक्खु च तथा अपरसेलिया ॥ १२ ॥
वाजिरिय छ एते हि जम्बूदीपम्हि भिन्नका।
धम्मरुचि सागलिया लङ्कादीपम्हि भिन्नका ॥ १३ ॥

४. निकायसंग्रह, पृष्ठ १०।

५. दीपवंस, ५, ९३, तथा महावंस ५, १३।

६. निकायसंग्रह, पृष्ठ १०।

७. पुरातत्त्वनिबन्धावली, पृष्ठ १०६-१०७।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

वैतुल्य

वैतुल्यवादी को कथावत्थु में शून्यवादी भी कहा गया है और महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने नागार्जुन के शून्यवाद से इसकी तुलना करते हुए कहा है कि वैतुल्य और वैपुल्य एक ही है और महायान का उद्भव इसीसे हुआ है[१]। वैपुल्यवादी यह मानते थे कि भगवान् का जन्म तुषितभवन में हुआ था। वे वहीं रहते थे। वे मनुष्यलोक में नहीं आते थे। उनके द्वारा निर्मित रूप ही यहाँ दिखायी देता था[२]। भगवान् तुषित भवन में रह कर ही धर्मोपदेश के लिए निर्मित रूप को भेजते थे। आयुष्मान् सारिपुत्र उनसे सुनकर और ग्रहण करके धर्मोपदेश देते थे। भगवान् बुद्ध द्वारा कोई उपदेश नहीं दिया गया[३]। वैपुल्यवादी मानते थे कि करुणा से या विचार से लोक में एक साथ उत्पन्न होने का संकल्प करके स्त्री के साथ बुद्ध-पूजा आदि करके मैथुन सेवन किया जा सकता है[४]। वे यह नहीं मानते थे कि संघ दक्षिणा को ग्रहण करता है। वास्तविक संघ मार्ग एवं फलों से ही निष्पन्न होता है। इनके अतिरिक्त दूसरा कोई संघ नहीं है। ये यह भी नहीं मानते थे कि संघ दक्षिणा का विशोधन करता है। वे यह भी मानते थे कि संघ को दान देने का कोई महान् फल नहीं होता। केवल बुद्ध को ही दान देने में बड़ा फल होता है[५]। राहुलजी ने लिखा है कि वैपुल्यवाद के बारे में हमें निम्नलिखित बातें ज्ञात हैं—

१—ईसा[६] पूर्व पहली शताब्दी में यह सिंहल पहुँचा था।

२—इसके कुछ सूत्रों का चीनी में अनुवाद ईसा की दूसरी शताब्दी में हो चुका था।

३—इसके प्रचारकों में सबसे ऊँचा स्थान आचार्य नागार्जुन का है।

४—नागार्जुन का वासस्थान श्रीपर्वत और धान्यकटक था।

५—आन्ध्र राजा सातवाहन नागार्जुन का घनिष्ठ मित्र था।

६—कुछ क्रान्तिकारी सिद्धान्त उनके और अन्धकों के आपस में मिलते थे।

---

१. कथावत्थु ४, १८, १।
२. वही, ४, १८, २।
३. वही, ४, १८, २।
४. वही, ५, २२, १०।
५. वही, ४, १७, ५।
६. महावंस १३, १३।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

इससे अनुमान होता है कि वैतुल्यवाद का केन्द्र भी श्रीधान्यकटक के पास ही था। इस बात की पुष्टि मंजुश्रीमूलकल्प का यह श्लोक भी करता है—

"गच्छेद् विदिशं तन्त्रज्ञः सिद्धिकामफलोद्भवाम्।
पश्चिमोत्तरयोर्मध्यं स देशः परिकीर्तितः[१] ॥

राहुलजी ने अन्त में लिखा है कि मंजुश्रीमूलकल्प महावैपुल्य सूत्रों में से है। हमारी समझ में यह स्थान श्रीपर्वतधान्यकटक ही हो सकता है[२]।

आचार्य नरेन्द्रदेव का मत है कि सद्धर्मपुण्डरीक में वैतुल्यवादियों का यह वाद सुपल्लवित हुआ है कि तथागत वास्तव में तुषितलोक में रहते हैं। मनुष्यों और देवताओं में केवल उनकी छाया देखी है। इस ग्रन्थ में शाक्यमुनि-माहात्म्य वर्णित है। उनका यथार्थकाय संभोगकाय है। यह धर्मदेशना के लिए समय-समय पर लोक में प्रादुर्भूत होते हैं। यह उनका निर्माणकाय है। इसी की स्तूपपूजा होती है। पाँचवीं-छठीं शताब्दी में कुछ बौद्ध आदिबुद्ध भी मानने लगे, जिनसे अन्य बुद्धों का प्रादुर्भाव हो सकता था। किन्तु यह विचार तीर्थक-विचार माना जाता था[३]।

निकायसंग्रह में वैतुल्यवादियों के धर्म-ग्रन्थ का नाम वैतुल्यपिटक है[४]। ये वैतुल्यवादी श्रीलंका भी गये थे और वहाँ पर अभयगिरि में अपना प्रभुत्व जमाया था, जिनका कपिल नामक अमात्य द्वारा निग्रह किया गया। निकाय-संग्रह में यह भी कहा गया है कि श्रीलंका का धर्मरुचिनिकाय वैतुल्यवादी ही था[५]।

अन्धक

ऊपर हम कह आये हैं कि अन्धकनिकाय आन्ध्र के चार निकाय-समूहों का एक महानिकाय था। उसके सिद्धान्तों का खण्डन कथावत्थुप्पकरण में किया गया है। इसके अन्तर्गत आने वाले चारों उपनिकायों तथा उनके सिद्धान्तों का वर्णन हम कर चुके हैं। कथावत्थुप्पकरण में आये हुए इनके सिद्धान्तों को इस प्रकार जानना चाहिए—

१. पुरातत्त्वनिबन्धावली, पृष्ठ १०८।
२. वही, पृष्ठ १०८।
३. बौद्धधर्म-दर्शन, पृष्ठ १०४।
४. निकायसंग्रह पृष्ठ १०।
५. वही, पृष्ठ १०।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

अन्धक ऐसा मानते थे कि सभी धर्म स्मृतिप्रस्थानवाले हैं[१]। इनके मत से अतीत, अनागत और वर्तमान के धर्म हैं भी और नहीं भी हैं[२]। समापत्ति चित्त एवं भवांग चित्त एक ही चित्त होता है, जो चिरस्थायी होता है। कथावत्थु में क्या एक चित्त दिन भर रहता है[३]? ऐसा प्रश्न करके इसका निग्रह किया गया है। ये मानते थे कि 'ज्ञान क्रमशः होता है' यह भी ठीक नहीं है क्योंकि तीनों संयोजनों का ग्रहण एक साथ होता है[४]। ये भगवान् बुद्ध को लोकोत्तर मानते थे[५]। ये दो प्रकार का निरोध मानते थे—प्रतिसंख्या निरोध एवं अप्रतिसंख्या निरोध[६]। ये मानते थे कि तथागत का बल श्रावकों को भी प्राप्त हो सकता है[७]। ये केवल आश्रवक्षय-ज्ञान को ही आर्य नहीं मानते थे अपितु पूर्व के नव बलों को भी आर्य मानते थे[८]। अन्धकों का कथन था कि वीतराग चित्तवालों के लिए विमुक्ति का कोई प्रयोजन नहीं हैं[९]। यह मानते थे कि ध्यान विष्कम्भन विमुक्ति से मुक्त होता है और मार्ग-क्षण में समुच्छेद विमुक्ति से विमुक्त होता है[१०]। ये मानते थे कि अनुलोम गोत्रम् मार्ग के क्षण में आठवें स्रोतापत्ति-मार्ग वाले पुरुष की मिथ्या दृष्टि दूर हो गयी होती है[११]। इनके मत से आठवाँ स्रोतापन्न मार्ग क्षण से इन्द्रियों का लाभ करता है। वे पूर्व से नहीं प्राप्त होती हैं[१२]। चतुर्थ ध्यान में ध्यानी का मांस-चक्षु ही दिव्यचक्षु कहलाता है अर्थात् मांसचक्षु धर्म से उपस्तम्भित हो जाता है[१३]। यह एक ही श्रोत्र मानते थे, दो नहीं[१४]। ये यथा-कम्मूपगत ज्ञान को ही

१. कथावत्थु, सब्बे धम्मा सत्तिपट्ठानाति, सत्तिपट्ठानि कथा १, १, ९।
२. वही, १, १, १०।
३. वही, एकचित्तं दिनसन्ति तिथि, ११, २, ७।
४. वही, १, २, ९।
५. वही, १, २, १०।
६. वही, १, २, ११।
७. वही, १, ३, १।
८. वही, १, ३, २।
९. वही, १, ३ ३।
१०. वही, १, ३, ४।
११. वही, १, ३, ५।
१२. वही, १, ३, ६।
१३. वही १, ३, ७।
१४. वही १, ३, ८।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

दिव्यचक्षु मानते थे[१]। अन्धक मानते थे कि देवलोक में स्वयं संयम होता है। वहाँ पाँच वैर नहीं होते हैं[२]। इसके अनुसार बिना विज्ञान के प्रतिसन्धि नहीं हो सकती और संज्ञा के उत्पन्न होने पर ही असंज्ञी देवलोक से देवता च्युत होते हैं, इसलिए असंज्ञी सत्त्वों को ही च्युति और प्रतिसन्धि के क्षण संज्ञा होती है[३]। ये मानते थे कि नवसंज्ञानासंज्ञायतन लोक में संज्ञा है ऐसा नहीं कहा जा सकता[४]। घटिकारसुत्त में ज्योतिपाल की प्रव्रज्या को लेकर बोधिसत्त्व काश्यप भगवान् के धर्मोपदेश में ज्ञानप्राप्त होकर ब्रह्मचर्य का पालन कर रहे थे[५]। यह इनका मत था। इनके अनुसार सभी संयोजनों का प्रहाण ही अर्हत्त्व है[६]। विपश्यना, मार्ग, फल, प्रतिवेक्षण इन चारों ज्ञानों को विमुक्ति-ज्ञान कहते हैं, किन्तु इन चारों को यथार्थ रूप से न जानकर अन्धक कहते थे कि ज्ञान की विमुक्ति ही विमुक्ति है "विमुत्तिञ्जाण विमुत्तन्ति"[७]। यह पृथ्वी कसिण में पृथ्वी-संज्ञावाली समापत्ति होती है और उसका ज्ञान विपरीत ज्ञान होता है[८]। ये आर्यों के समस्त ज्ञान को लोकोत्तर मानते थे। इसलिए सब ज्ञान प्रतिसंविद है[९]। ये दो सत्यों को न मानकर सम्मुत्ति ज्ञान को ही सत्यालम्बन मानते हैं[१०]। अन्धकों के अनुसार चेतोपरिज्ञान चित्तालम्बन मात्र ही है[११]। अन्धक सब में अनन्तर ज्ञान ही बताते हैं[१२]। ये सभी वर्तमान में ज्ञान मानते हैं[१३]। बुद्धों एवं श्रावकों द्वारा प्राप्तव्य स्वयं उनका ज्ञान है[१४]। ये नियाम को असंस्कृत मानते हैं[१५]। ये निरोध समापत्ति को असंस्कृत मानते हैं, संस्कृत

१. कथावत्थु १, ३, ९।
२. वही, १, ३, १०।
३. वही, १, ३, ११।
४. वही, १, ३, १२।
५. वही, १, ४, ८।
६. वही, १, ४, १०।
७. वही, १, ५, १।
८. वही, १, ५, ३।
९. वही, १, ५, ५।
१०. वही, १, ५, ६।
११. वही, १, ५, ७।
१२. वही, १, ५, ८।
१३. वही, १, ५, ९।
१४. वही, १, ५, १०।
१५. वही, २, ६, १।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

नहीं[१] । काय-कर्म और आकाश को अन्धक सनिदर्शन मानते थे[२] । इनका मत था कि पृथ्वी कर्मविपाक है क्योंकि कर्मविपाक से ही पृथ्वी, ऐश्वर्य, आधिपत्य आदि की प्राप्ति होती है[३] । अन्धकों का कथन था कि कुरूपता, सौन्दर्य, अल्पायु आदि कर्म हैं, इसलिए बुढ़ापा, अल्पायु, मृत्यु भी कर्म हैं । इसलिए जरा-मरण विपाक है[४] । यह क्लेश-प्रहाण मात्र श्रामण्यफल है, चित्त चैतसिक धर्म नहीं[५], ऐसा मानते थे । अन्धक सभी रूपी धर्म को रूपधातु मानते थे[६] । इनका मत था कि अरूपी धर्म अरूप धातु है[७] । इनका मत था कि ब्रह्म-कायिक ध्यान आदि निमित्त भी आयतन ही है, इसलिए उनका भी आत्मभाव अर्थात् शरीर छः आयतनों का ही है[८] । अन्धकों का कथन था कि अरूप भव में भी सूक्ष्मतः रूप है[९] । ये ऐसा मानते थे कि आनृशंस्य (गुण) देखने वालों को ही संयोजनों का प्रहाण होता है[१०] । इनका कथन था कि अनुशय चित्त से विप्रमुक्त, अहेतुक और अव्याकृत धर्म है, इसलिए वे अनालम्बन हैं[११] । ये मानते थे कि ज्ञान, आलम्बन बिना होता है, 'नाणं अनारम्भणति[१२] ।' अन्धक ऐसा मानते थे कि लोकोत्तर मार्ग क्षण में योगावचर (योगी) 'यह दुःख है', इस प्रकार बोलता है, इस प्रकार कहने से 'यह दुःख है' यह ज्ञान उत्पन्न होता है[१३] । अन्धकों का कथन था कि प्रतीत्यसमुत्पाद संस्कृत धर्म स्थित (प्राकृत स्वभाव) है और वह परिनिष्पन्न है[१४] । अन्धकों के मत से अनित्य रूपादि की अनित्यता भी रूपादि के समान परिनिष्पन्न है[१५] । अन्धकों का मत था, चूंकि

१. कथावत्थु २, ६, ५ ।
२. वही, २, ६, ७ ।
३. वही, २, ७, ७ ।
४. वही, २, ७, ८ ।
५. वही, १, ५, १ ।
६. वही, १, ५, ३ ।
७. वही, १, ५, ५ ।
८. वही, १, ५, ६ ।
९. वही, १, ५, ७ ।
१०. वही, १, ५, ८ ।
११. वही, १, ५, ९ ।
१२. वही, १, ५, १० ।
१३. वही, २, ६, १ ।
१४. वही, २, ६, ५ ।
१५. वही, २, ६, ७ ।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

ध्यानप्राप्तों को भूत-भविष्यत् के भी ध्यान होते हैं इसलिए वे भूत एवं भविष्यत् से युक्त होते हैं[१]। पंचस्कन्धों के न उत्पन्न होने पर ही भवांग के विरुद्ध हो जाने पर सन्तति का विच्छेद हो जाता है[२]। अन्धकों का कथन था कि ध्यान समापत्ति में व्यक्ति उस ध्यान का आस्वाद लेता है और उसकी वह ध्यान की कामना ही ध्यानालम्बन है[३]। इनका मत था कि पृथक्जन कुशल और अव्याकृत चित्त के रहने पर अनुशय सहित कहा जाना चाहिए, न कि उनसे आवृत। इसलिए अनुशय दूसरा है और आवेष्टित करने वाला दूसरा है[४]। अन्धक ऐसा मानते थे कि परिपुट्टित चित्त, चित्त विप्रमुक्त होता है[५]। परियापन्न दूसरा है और परिपुट्टित दूसरा[६]। अन्धकों का कथन था कि पहले के अव्याकृत के समान दृष्टिगत अव्याकृत होता है[७]। अन्धक मानते थे कि कर्म से उत्पन्न कर्म से अन्य चित्त विप्रयुक्त होता है जो अव्याकृत एवं आलम्बन होता है[८]। अन्धकों का मत है कि कर्म के करने से उत्पन्न चित्त और चैतसिकों के समान कर्म के करने से उत्पन्न रूप भी विपाक होता है[९]। अन्धकों का कथन था कि कामावचर कर्म के करने से जो रूप होता है, चूंकि वह कामावचर होता है, इसलिए रूपावचर, अरूपावचर कर्मों के करने से जो रूप होता है उसे रूपावचर और अरूपावचर होना चाहिए[१०]। जिस प्रकार रूप-राग, रूप-धातु परियापन्न होता है, उसी प्रकार अरूप-राग, अरूप-धातु परियापन्न होता है[११]। अर्हत् दानसंविभाग करते हैं, चैत्यवन्दना करते हैं इसलिए अर्हतों को भी पुण्य होता है। किन्तु यह कथन ठीक नहीं है, क्योंकि अर्हत् पुण्य तथा पाप दोनों से विगत होता है[१२]। अन्धकों का कथन था कि भगवान् बुद्ध के

१. कथावत्थु २, ९, ११।
२. वही, २, १०, १।
३. वही, ३, १३, ७।
४. वही, ३, १४, ५।
५. वही, ३, १४, ६।
६. वही, परियापन्न कथा, ३, १४, ७।
७. वही, अव्याकृत कथा, ३, १४, ८।
८. वही, ३, १५, १०।
९. वही, ४, १६, ८।
१०. वही, ४, १६, ९।
११. वही, ४, १६, १०।
१२. वही, ४, १७, १०।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

पेशाब-पाखाने से ऐसी सुगन्धि निकलती है, जो अन्य सुगन्धियों से बढ़ कर होती है[1]। अन्धकों का ही कथन था कि भगवान् स्रोतापन्न होकर सकृदागामी हुए। सकृदागामी होकर अनागामी हुए, अनागामी होकर उन्होंने अर्हत्त्व का साक्षात्कार किया। एक ही कार्य-मार्ग से उन्होंने चार फलों का साक्षात्कार किया[2]। अन्धकों का कथन था कि ध्यानी ध्यान की उपचार समाधि के बिना ही एक ध्यान से दूसरे ध्यान में संक्रमण करता है[3]। अन्धक ध्यानी के उपचार के बाद ध्यान को आनन्तरिक मानते हैं[4]। अन्धकों का मत था कि शून्यता संस्कार स्कन्धों से युक्त है[5]। अभिप्राय वृद्धि होती है, क्योंकि आयुष्मान् मिलिन्दवच्छ ने अपने संकल्प से राजा के प्रासाद को सोने का बना दिया[6]। एक बुद्ध दूसरे बुद्ध से छोटा-बड़ा नहीं होता है, किन्तु अन्धकों का मत था कि बुद्धों में भिन्नता होती है[7]। अन्धकों के मतानुसार रूप आदि, रूप आदि के स्वभाव से नियत हैं, वे अपने स्वभाव को नहीं छोड़ सकते। इसलिए सभी धर्म नियत हैं[8]। अन्धक मानते थे कि दृष्ट धर्म वेदनीय है, आदि दृष्ट धर्म वेदनीय आदि से नियत है। इसलिए सब धर्म नियत हैं[9]। इनका मत था कि अर्हत् सर्वज्ञ के विषय में संयोजनों से रहित न होते हुए ही परिनिर्वाण को प्राप्त होते हैं। इसलिए कुछ संयोजनों को बिना त्यागे ही परिनिर्वाण होता है[10]। अन्धकों का कथन था कि भगवान् चतुर्थ ध्यान में रहते हुए ही परिनिब्बान को प्राप्त होते हैं, इसलिए अर्हत् भी ध्यान में रहते हुए ही परिनिब्बान को प्राप्त होते हैं[11]। अन्धकों का मत था कि 'करुणा से या विचार से संसार में एक साथ रहेंगे' ऐसा संकल्प करके स्त्री के साथ बुद्ध-पूजा आदि करके प्रार्थना के तौर पर

१. बुद्धस्स भगवतो उच्चार पस्सावों अतिविय अञ्ञे गन्धजाते अधिग्गण्हातों ति—कथावत्थु, गन्धजात कथा ४, १८, ४।
२. वही, ४, १८, ६।
३. वही, ४, १८, ६।
४. वही, ४, १८, ७।
५. वही, ४, १९, १-२।
६. इद्धिकथा ५, २१, ६।
७. बुद्धकथा ५, २१, ७।
८. धम्मकथा ५, २१, ९।
९. कम्मकथा ५, २१, १०।
१०. कथावत्थु, परिनिब्बान कथा, ५, २२, १।
११. वही, ५, २२, २-३।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

एक संकल्प हुआ, ऐसे ही दोनों के संकल्प भी सांसारिक जीवन बिताने के लिए सम्भव है। तात्पर्यतः दोनों के एक विचार, एक मत, एक संकल्प सम्भव हैं, किन्तु यह असम्भव बात है। कभी भी दोनों के एक चित्त नहीं हो सकते हैं[१]। अन्धकों का कथन था कि बोधिसत्त्व भी ऐश्वर्य, भोग, विलास आदि के कारण नरक में पड़ते हैं[२]।

उत्तरापथक

उत्तरापथक पश्चिमोत्तर भारत के भिक्षुओं का एक उत्तरकालीन निकाय था, जिनका कथन था कि गृहस्थ भी अर्हत् हो सकता है। वे ऐसा इसलिए कहते थे कि यश कुलपुत्र आदि को गृहस्थ वेश में रहते हुए भी अर्हत्त्व प्राप्त हो गया था[३]। उनका यह भी कथन था कि शुद्धावास देवलोकों में उत्पत्ति से ही अर्हत् होते हैं[४]। अर्हत् के सभी धर्म अनास्रव होते हैं[५]। अर्हत् चारों फलों से युक्त होता हैं[६]। बोधिमार्ग, ज्ञान का भी नाम है और सर्वज्ञ ज्ञान का भी नाम है। इसलिए उत्तरापथ वाले श्वेत रंग से श्वेत और काले रंग से काला, ऐसे ही बोधि से बुद्ध मानते थे[७]। बोधिसत्त्व लक्षणों से युक्त होते हैं[८]। शैक्ष्य को भी अशैक्ष्य ज्ञान होता है[९]। अनियत का नियत में जाने के लिए ज्ञान होता है[१०]। निरोध समापत्ति असंस्कृत होती है, संस्कृत नहीं[११]। तीनों प्रकार के आकाश असंस्कृत होते हैं[१२]। असुरकाय के साथ छः गतियाँ हैं[१३]। चूंकि रूप प्रत्यय के साथ आलम्बन वाला होता है, वह दूसरे का अलम्बन नहीं करता ऐसा उत्तरापथक

१. कथावत्थु ५, २३, १।
२. वही, ५, २३, ३-७।
३. वही, १, ४, १।
४. वही, सह उपपत्तिया अहोति १, ४, २।
५. वही, १, ४, ३।
६. वही, १, ४, ४।
७. वही, १, ४, ६।
८. वही, १, ४, ७।
९. वही, १, ५, २।
१०. वही, १, ५, ४।
११. वही, २, ६, ५।
१२. वही, २, ६, ६।
१३. वही, २, ८, १।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

मानते थे[१]। अनुशय से विप्रयुक्त अहेतुक और अव्याकृत धर्म है, इसलिए वे आलम्बन हैं[२]। चूंकि अतीत और अनागत का आलम्बन होना चाहिए और इस प्रकार अतीत, अनागत अनालम्बन है[३]। सब चित्त वितर्क में पड़े हुए रहते हैं। कोई भी ऐसा चित्त नहीं है जो वितर्क से रहित हो[४]। चूंकि सात बार उत्पन्न होना कहा गया है, इसलिए सात बार उत्पन्न होने वाले व्यक्ति की सातवीं बार उत्पत्ति नियत है[५]। दृष्टियुक्त की दुर्गति दूर हो जाती है[६]। कल्पस्थ अपने धर्म में कामावचर को ही प्राप्त होता है, जो उस उपत्ति को हटा कर उस महद्गत अथवा लोकोत्तर को नहीं पाता है, किन्तु उत्तरापथ वालों के मतानुसार वह कुशल चित्त का लाभ नहीं करता है[७]। आनन्तरिक आपत्ति अर्थात् माता, पिता की हत्या आदि कर्म के अनियत होने पर भी ज्ञान प्राप्त करने के लिए व्यक्ति अभव्य (=असमर्थ) होता है[८]। निवरणों से ढँका हुआ व्यक्ति निवरणों को त्यागता है[९]। दुःख, वेदना में भी राग के आस्वाद के रूप में अभिनन्दन होता है। इसलिए असत् राग है[१०]। चूंकि सम्यक् वचन, सम्यक् कर्मान्त रूप है और वह रूप चारों पराभूतों के कारण उत्पन्न रूप है, इसलिए उपादाय रूप भी होता है[११]। विज्ञान एक दूसरे के पश्चात् उत्पन्न होते रहते हैं[१२]। चूँकि सम्यक् वचन, सम्यक् कर्मान्त रूप हैं और वही रूप चारों महाभूतों के कारण उत्पन्न रूप हैं, इसलिए उपादाय रूप भी होता है[१३]। उत्तरापथ वालों का मत था कि पहले के अव्याकृत के समान

---

१. कथावत्थु २, ९, ३।
२. वही, २, ९, ४।
३. वही, २, ०, ६।
४. वही, २, ९, ८।
५. वही, ३, १२, ५।
६. वही, ३, १२, ९।
७. वही, ३, १३, २।
८. वही, ३, १३, ३।
९. वही, अपरिरूपककथा ३, १३, ५।
१०. वही, ३, १३, ८।
११. वही, ३, १४, ३।
१२. वही, ३, १४, ४।
१३. वही, ३, १४, ४।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

दृष्टिगत भी अव्याकृत ही होता है[१]। भगवान् ने कहा है कि चारों महाभूत हेतु हैं, इसलिए रूप भी हेतु हैं[२]। दक्षिणा व्यर्थ है, दान-दक्षिणा से शुद्धि नहीं होती है[३]। प्रिय और अप्रिय वस्तुओं की विपत्ति के कारण राग के रूप में करुणा उत्पन्न होती है, अतः राग ही करुणा है और वह भगवान् में नहीं है, इसलिए भगवान् को करुणा नहीं है[४]। इनके अनुसार भगवान् बुद्ध के साथ पेशाब-पाखाने से ऐसी सुगन्धि निकलती है जो अन्य सुगन्धियों से बढ़ कर है, अन्य कोई सुगन्धि उससे बढ़ कर नहीं हैं[५]। भगवान् स्रोतापन्न होकर सकृदागामी हुए, सकृदागमी होकर अनागामी हुए, अनागामी होकर उन्होंने अर्हत्त्व का साक्षात्कार किया। एक मार्ग से उन्होंने चार फलों का साक्षात्कार किया। उत्तरापथ वालों का कथन था कि रूपादि सब धर्म रूपादि भाव कहलाने वाले तथता है और यह संस्कृत रूपादि के कारण असंस्कृत हैं[७]। पृथक्जन की अत्यन्त नियामता है, क्योंकि कहा गया है कि एक बार डूबा डूबा नहीं होता है[८]। आनन्तरिक कर्म गूढ़ और भारी होता है इसलिए उन कर्मों के बिना जान-बूझ कर हो जाने पर भी आनन्तरिक हो जाता है[९]। उत्तरापथ वालों का कथन था कि तीनों संगीतियों से भगवान् का शासन नया किया गया। इसलिए तथागत के शासन को कार्य नया करने वाला है और तथागत के शासन को नया किया जा सकता है[१०]। चूँकि पृथक्जन, त्रैधातुक धर्म को नहीं जानता है, इसलिए वह एक क्षण में ही सभी त्रैधातुक धर्मों से अविमुक्त होता है[११]। चूँकि रूपादि रूप आदि के स्वभाव से नियत है, वे अपने स्वभाव को छोड़ नहीं सकते, इसलिए सभी धर्म नियत हैं[१२]। चूँकि

१. अव्याकृतकथा ३, १४, ८।

२. वही, ४, १६, ५।

३. वही, ४, १६, ५।

४. वही, ४, १६, १०।

५. कथावत्थु, गन्धजातकथा ४, १८, ४।

६. एकमग्गकथा ४, १८, ५।

७. वही, ४, १९, ५।

८. वही, ४, १९ ७।

९. वही, ४, २०, १।

१०. शासनकथा ५, २१, १-३।

११. वही, ५, २१, ९।

१२. वही, ४, २१, ९।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

दृष्टधर्म वेदनीय आदि से नियत है, इसलिए सब कर्म नियत हैं[१]। चूँकि भगवान् चतुर्थ ध्यान में रहते हुए ही परिनिर्वाण को प्राप्त होते हैं, इसलिए अर्हत् भी ध्यान में रहते हुए भी परिनिर्वाण को प्राप्त होते हैं[२]। अर्हतों के रूप में ईर्यापथ युक्त (चाल-ढाल सम्पन्न) पापी भिक्षु की तरह से, अमनुष्य भी मैथुन धर्म का सेवन करते हैं[३]। कहा गया है कि दुःख ही उत्पन्न होता है, दुःख ही रहता है और दुःख ही विनष्ट हो जाता है। दुःख के अतिरिक्त अन्य कुछ उत्पन्न नहीं होता, न दुःख के बिना अन्य कुछ निरुद्ध होता है, इस वचन के कारण दुःख ही, शेष स्कन्ध आयतन, धातु, इन्द्रिय, धर्म अपरिनिष्पन्न है[४]। उत्तरापथ वालों का मत था कि गर्भ में रहते हुए भी धर्मदेशना, धर्मश्रवण, धर्मसत्संग, शीलग्रहण आदि सम्भव है[५]। स्वप्न में रहने वाले का सारा चित्त अव्याकृत होता है, किन्तु भगवान् ने स्वप्न के चित्त को अव्यावहारिक कहा है, इसलिए यह बात यथार्थ नहीं है।[६] आसेवन प्रत्यय नहीं है, अर्थात् शील, समाधि, प्रज्ञा आदि किसी के निरन्तर अभ्यास से कोई लाभ होता है, यह संभव नहीं है[७]। उत्तरापथ वालों का कथन था कि माँ के पेट में रहने वाला सत्त्व भी अर्हत्त्व प्राप्त कर सकता है[८]।

हेतुवादी

हेतुवादी भी उत्तरकालीन निकाय था। इनका कथन था कि चूँकि चारों आश्रव कामाश्रव, भवाश्रव, दृष्टाश्रव और अविद्याश्रव साश्रव हो सकते हैं इसलिए चारों आश्रव-अनाश्रव भी हो सकते हैं[९]। संज्ञा वेदयित निरोध में कोई धर्म नहीं है, प्रत्युत चार स्कन्धों का निरोध मात्र है। इस प्रकार न तो वह लौकिक है और न तो लोकोत्तर। चूँकि वह लौकिक नहीं है इसलिए वह लोकोत्तर भी नहीं है[१०]। संज्ञावेदयित निरोध चूँकि लोकोत्तर नहीं होता है, इसलिए लौकिक है[११]। असंज्ञा भव में रहने वाले प्राणियों को भी

१. कम्मकथा ५, ११, १०।
२. वही, ५, २२, २-३।
३. वही, ५, २३, २।
४. कथावत्थु ५, २३, ५।
५. धम्मावितमय, ५, २२, ४।
६. अव्याकृतकथा ५, २२, ८।
७. आसेवन पच्चयकथा ५, २२, ९।
८. तिस्सोपिकथा, ५, २३, ५-७।
९. कथावत्थु ३, १५, ९।
१०. आसवकथा ३, १५, ४।
११. वही, ४, १६, ३।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

च्युति के समय संज्ञा संभव है[१]। हेतुवादियों का कथन था कि दूसरा दूसरे को सुख प्रदान करता है[२]। जिसके त्याग के लिए भगवान् के धर्म का आचरण करता है, वह इन्द्रियबद्ध दुःख है, वह दूसरा कुछ नहीं है[३]। चूँकि आर्य मार्ग दुःखनिरोधगामिनी प्रतिपदा कहलाती है, इसलिए आर्यमार्ग को छोड़ कर अन्य सभी संस्कार दुःख हैं[४]। मार्ग-फल ही संघ है, वह दक्षिणा को विशुद्ध नहीं कर सकता। इसलिए दक्षिणा को विशुद्ध करता है—ऐसा नहीं कहा जा सकता[५]। संघ भोजन करता है, अर्थात् दान ग्रहण करता है, कहना उचित नहीं है[६]। संघ को देने में महाफल नहीं होता है और न तो कोई लाभ ही होता है[७]। भगवान् बुद्ध के नाम पर दान देने से कोई फल नहीं होता[८]। लौकिक श्रद्धा ही श्रद्धा है, वह श्रद्धेन्द्रिय नहीं है, ऐसे ही लौकिक वीर्य, स्मृति, समाधि, प्रज्ञा, प्रज्ञा ही है प्रज्ञेन्द्रिय नहीं है[९]। हेतुवादियों का कथन था कि जो यह कहा गया है कि दुःख ही उत्पन्न होता है, दुःख ही रहता है और दुःख ही विनष्ट होता है, दुःख के अतिरिक्त अन्य कुछ उत्पन्न नहीं होता है, शेष स्कन्ध, आयतन, धातु, इन्द्रिय धर्म अपरिनिष्पन्न हैं[१०]।

नीलपटदर्शन

नीलपटदर्शन-निकाय दक्षिण भारत में प्रादुर्भूत एक महत्त्वपूर्ण निकाय था और इसका अपना एक विशेष सिद्धान्त था, किन्तु उसके सम्बन्ध में सिंहली के निकायसंग्रह से भी हमें जानकारी प्राप्त होती है, किन्तु निकायसंग्रह में एकांगी दृष्टिकोण को ही अपनाकर इस निकाय के सम्बन्ध में अनेक अनर्गल बातें दी गयी हैं जो ऐतिहासिक दृष्टिकोण से ग्राह्य नहीं हैं। निकायसंग्रह में कहा गया है—

---

१. कथावत्थु ४, १७, ४।
२. वही, ४, १७, ५।
३. वही, ४, १७, ४।
४. वही, ४, १७, ५।
५. वही, ४, १७, ६।
६. वही, ४, १७, ७।
७. वही, ४, १७, ८।
८. वही, ५, २३, ५।
९. वही, ४, १९, ८।
१०. वही, ५, २३, ५।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

जब श्रीलंका में कुमारदास राजा राज्य कर रहे थे, दक्षिण भारत के मदुरा नगर में श्रीहर्ष नामक राजा राज्य कर रहा था। उस समय सम्मितीय निकाय का एक दुष्ट भिक्षु रात्रि में नील वस्त्र पहन कर वेश्या के पास जाया करता था। एक दिन उसके शिष्यों ने उससे पूछा, "क्या यह वेश उचित है ?" उस समय उसने उस वेश की बड़ी प्रशंसा की। उसके शिष्यों ने भी ऐसे ही वेश धारण किये। उसने सुरा, काम-भोग, मैथुन की प्रशंसा की और नीलपट-दर्शन नामक ग्रन्थ की रचना भी कर डाली जिसमें लिखा—

"वेश्यारत्नं सुरारत्नं, रत्नं देवो मनोभवः।
एतद् रत्नत्रयं वन्दे, ह्यन्यत् काचमणित्रयं ॥"

जब श्रीहर्षदेवको इस बात का पता चला तब वे उस भिक्षु के पास आये और उन्होंने यथार्थ की जानकारी चाही। तब उस भिक्षु ने उससे कहा—

"न किं पिबसि दुर्मेध, नरकं गन्तुमिच्छसि।
लवणोदकसंयुक्तास्सुराः स्वर्गेऽपि दुर्लभाः ॥"

इस बात को सुनकर श्रीहर्ष बहुत रुष्ट हुआ और उसने समझ लिया कि यह बुद्ध-शासन-विरोधी बात है। उसने सभी नीलपटधारी भिक्षुओं को, उस निकाय के नेता को तथा उनके द्वारा रचित ग्रन्थ को एकत्र करके अग्नि-पूजा की। इस प्रकार नीलपटदर्शन-निकाय समाप्त हो गया[१]।

किन्तु जैसा कि हमने ऊपर कहा है, यह कथा विश्वसनीय नहीं है, क्योंकि अब भी सिक्किम, भूटान, तिब्बत, लद्दाख आदि महायानी भू-भागों में इस प्रकार के वज्रयानगर्भित निकाय हैं। नेपाल भी इसका अपवाद नहीं। प्रत्येक पूजा-पाठ में शराब का उपयोग होता है। कुछ निकायों के भिक्षु विवाहित भी होते हैं और उनके वस्त्र भी दूसरे रंग के होते हैं। नेपाल का वज्रयान और उसके विकृत रूप को देखकर इसका अनुमान लगाया जा सकता है। उत्तरकालीन चौरासी सिद्ध भी इन बातों से वंचित नहीं थे। वे घरों में रहते थे। उनके साथ उनकी पत्नियाँ होती थीं। राहुलजी ने लिखा है—

मद्य, मन्त्र, हठयोग और स्त्री यह चार ही वस्तुएँ वज्रयान के मुख्य रूप हैं[२]। आगे उन्होंने लिखा है कि स्त्री में तो उन्होंने जाति, कुल ही नहीं बल्कि माता-बहन के सम्बन्ध तक की अवहेलना करने की शिक्षा दी

१. निकायसंग्रह, पृष्ठ, १८-१९।
२. पुरातत्त्वनिबन्धावली, पृष्ठ ११६।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

है[१]। यह बुद्ध की मूल शिक्षा से दूर तो थो ही, महायान के लिए भी इसे जल्दी हजम करना मुश्किल था। इसलिए महायान से साधारण मन्त्र यान में होकर वज्रयान तक पहुँचना था[२]।

निकायसंग्रह के अनुसार उत्तरकालीन तथा अन्धकनिकाय से सम्बन्धित उपनिकायों द्वारा रचित निम्नलिखित ग्रन्थ थे, जिनमें उनके सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया था—

१—हेमवत = वर्णपिटक।

२—राजगीरिक = अंगुलिमालपिटक।

३—सिद्धार्थक = गूल्ह वेसन्तर।

४—पूर्वशैलीय = आलवक गर्जन।

५—वज्र पर्वतवासी (वज्रयानी) = गूढ़विनय, मायाजालतन्त्र, समाजतन्त्र, महासमय-सत्त्व, तत्त्वसंग्रह, भूतचामर, वज्रामृत, चक्रसमवर-द्वदश चक्र, भरुकाविद, महामाया।

पदनिक्षेप, चतुष्षष्टि, परामदी, मच्चुद्भव, सर्वबुद्ध, सर्वगुह्यसनुच्चय = तन्त्र।

मरीचिकल्प, हेरम्बरकल्प, त्रिसमयकल्प, राजकल्प, वज्रगन्धारकल्प, मरीचिगुह्यकल्प, शुद्धसमुच्चयकल्प, मायामरीचिकल्प = कल्प।

६. वैतुल्यवादी = वैतुल्यपिटक।

७. अन्धक = रत्नकूट।

८. अन्धमहासांघिक = अक्षरसारीय।

आगे निकायसंग्रह में यह भी कहा गया है कि मतबलसेन के ससय में वैतुल्यवादी वाजिरिय (बज्रयानी) श्रीलंका गये थे और उनके साथ ही रत्नकूटशास्त्र भी लंका गया था। उन्होंने अभयगिरि में निवास किया था और धर्मरुचि-निकाय का प्रादुर्भाव हुआ था, जो वास्तव में वैतुल्यवाद ही था। उनसे सागलीय निकाय उत्पन्न हुआ, जिसके अगुवा सागल स्थविर थे किन्तु यह निकाय बहुत दिन नहीं रह सका[३]।

१. गायकवाड़ ओरियण्टल सिरीज, बड़ौदा से प्रकाशित "गुह्यसमाजतन्त्र" में लिखा है—

"प्राणिनश्च त्वया घात्या वक्तव्यं च मृषा वचः।
अदत्तं च त्वया ग्राह्यं सेवनं योषितामपि॥
अनेन व्रजमार्गेण वज्रसत्त्वान् प्रचोदयेत्।
एषो हि सर्वबुद्धानां समयः परमाशाश्वतः॥" पृष्ठ १२०।

२. वही, पृष्ठ ११६।

३. निकायसंग्रह पृष्ठ २०-३१।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

अष्टम अध्याय

उपसंहार

बौद्ध-निकायों के क्रमिक विकास का सर्वेक्षण

भगवान् बुद्ध ने उरुवेला में बोधिवृक्ष के नीचे बुद्धत्व प्राप्त किया था और वहीं उनके मुख से यह उदान-वाक्य निकला था—"बिना रुके अनेक जन्मों तक संसार में दौड़ता रहा। इस काया-रूपी गृह को बनाने वाले (=तृष्णा) को खोजते पुनः-पुनः दुःख में पड़ता रहा। हे गृहकारक! (=तृष्णे) मैंने तुझे देख लिया, अब तू घर नहीं बना सकेगा। तेरी सभी कड़ियाँ भग्न हो गयीं, गृह-शिखर गिर गया। चित्त संस्काररहित हो गया। अर्हत्त्व (तृष्णा-क्षय) प्राप्त हो गया[१]।

यह उनका प्रथम उदान था, जिसे प्रथम बुद्ध-वचन कहते हैं। यहीं से बौद्ध-शिक्षा का प्रारम्भ हुआ और पैंतालीस वर्षों तक भगवान् गौतम बुद्ध ने सम्पूर्ण मध्यमण्डल में पैदल चारिका करते हुए धर्मोपदेश दिया था। अस्सी वर्ष की अवस्था में कुशीनगर में यमक शालवृक्षों के मध्य उनका महापरिनिर्वाण हुआ था। इन पैंतालीस वर्षों के दीर्घकाल में भिक्षुसंघ में तनाव के अनेक अवसर आये। कभी देवदत्त ने विद्रोह किया, तो कभी कौशाम्बी के भिक्षुओं ने तथागत की बात अनसुनी कर दी। फिर भी भिक्षुसंघ एक बना रहा। उसमें संघभेद की स्थिति नहीं आयी। इन परिस्थितियों से बचने के लिए तथागत ने अनेक उपाय किये, किन्तु उनके महापरिनिर्वाण के तुरन्त बाद ही वृद्ध प्रव्रजित सुभद्र द्वारा कुछ ऐसी बातें कही गयीं, जिन्हें सुनकर महाकाश्यप जैसे संघ-स्थविर ने संघभेद के लक्षण समझे और प्रथम संगीति का आयोजन कराया। राजगृह में सप्तपर्णी गुफा में पाँच सौ भिक्षुओं द्वारा प्रथम संगीति सम्पन्न हुई। उस समय भी भिक्षुसंघ में एकता बनी रही, केवल आयुष्मान् पुराण ने उस

१. अनेकजातिसंसारं सन्धाविस्सं अनिब्बिसं।
गहकारकं गवेसन्तो, दुक्खा जाति पुनप्पुनं॥
गहकारक! दिट्ठोसि पुन गेहं न काहसि।
सब्बा ते फासुका भग्गा, गह कूटं विसंखितं॥
—धम्मपद ११, ८, ९।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

संगीति की पूरी बात मानने से इनकार कर दिया, किन्तु उन्हें भिक्षुओं ने समझाया और उन्होंने भी अपने कान से सुने हुए बुद्ध-वचनों को मानने में कोई आपत्ति नहीं की। धीरे-धीरे समय व्यतीत हुआ और भगवान् के परिनिर्वाण के १०० वर्ष होते ही भिक्षुसंघ में कुछ विनय-विरोधी बातें दृष्टिगोचर होने लगीं और उसके निराकरण के लिए वैशाली में द्वितीय संगीति हुई। पुनः सौ वर्षों के व्यतीत होने पर अर्थात् भगवान् बुद्ध के परिनिर्वाण के दो सौ वर्षों के पश्चात् सम्राट् अशोक के समय में तृतीय संगीति का आयोजन करना पड़ा क्योंकि उस समय तक सम्पूर्ण भिक्षुसंघ अट्ठारह निकायों में विभक्त हो चुका था। यद्यपि महायान संस्कृत-साहित्य अशोक के समय को बुद्ध-परिनिर्वाण से सौ वर्षों बाद ही बतलाता है[1], किन्तु ऐतिहासिक तथ्यों के परिप्रेक्ष्य में पालि-ग्रन्थों में वर्णन यथार्थ हैं। सम्राट् अशोक ने पाटलिपुत्र के अशोकाराम में तृतीय संगीति करायी और भिक्षुसंघ का संशोधन किया। मूल स्थविरवाद और उससे निकले हुए भिक्षुओं ने अपने अलग-अलग निकाय बनाये। उन्होंने अलग संगीतियाँ कीं और उनके बनाये सिद्धान्तों के प्रतिपादक अपने-अपने धर्मग्रन्थ भी बनाये। पीछे आन्ध्रप्रदेश के धान्यकटक, नागार्जुनी कोण्डा आदि स्थानों में उत्तरकालीन निकायों का जन्म हुआ, जिनमें पूर्वशैलीय, अपरशैलीय, राजगिरिक और सिद्धार्थिक निकाय-समूह को आन्ध्रक कहा जाता था और यहीं आन्ध्रक निकाय महायान के रूप में परिवर्तित हुआ, क्योंकि इन निकायों के सिद्धान्त महायान से सर्वथा साम्य रखते थे। उत्तरापथ, हेतुवादी, वैतुल्यवादी, नीलपटदर्शन और लंका के धर्मरुचि, सागलीय आदि निकाय क्रमशः उत्पन्न हुए। इन निकायों का इतिहास बड़ा ही रोचक और ज्ञानवर्धक है। एक ओर स्थविरवाद और महायान ने भारत में अपने को पल्लवित किया और दूसरी ओर कनिष्ककालीन चतुर्थ संगीति के उपरान्त महायान ने उत्तर के पर्वतीय क्षेत्रों में अपना विस्तार किया। यद्यपि हमने सातवीं शताब्दी ईस्वी तक ही अपने अध्ययन को सीमित रखा है और वह भी भारत में हुए निकायों

---

१. अवदानशतकम्, संगीति, पृष्ठ २६१।
"वर्षशतपरिनिवृते बुद्धे भगवति पाटलिपुत्रे नगरे राजा अशोको राज्यं कारयति।"
"वर्षशतपरिनिवृतस्य मम पाटलिपुत्रे नगरे अशोको नाम राजा भविष्यति चतुर्भागचक्रवर्ती धर्मराजः।"
—दिव्यावदान, पृष्ठ २३९।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

सम्बन्धी सर्वेक्षण तक ही, अतः सुदूर तथा पड़ोसी स्थविरवादी एवं महायानी देशों में हुए निकायों के विकास के इतिहास पर दृष्टिपात नहीं कर रहे हैं। श्रीलंका-सम्बन्धी कतिपय निकायों का विवरण इसका अपवाद है, क्योंकि निकाय सम्बन्धी कुछ विवरण सिंहली में लिखित निकायसंग्रह नामक ग्रन्थ में उपलब्ध है और दीपवंस तथा महावंस पालिग्रन्थों की भी रचनायें श्रीलंका में ही हुई थीं और इनका भारतीय इतिहास के साथ एक प्रगाढ़ सम्बन्ध है। हमने ऊपर देखा है और आगे भी इस पर विचार करेंगे कि ग्रन्थों में वर्णित अधिकांश निकायों के नामोल्लेख प्राप्त पुरातात्त्विक अभिलेखों में हुए हैं। कुछ के नाम यात्रियों के यात्रा-विवरणों में उपलब्ध हैं। इस प्रकार भारतीय भिक्षु-निकाय के इतिहास के सम्बन्ध में प्राप्त जानकारी सर्वथा प्रमाणित है और यह अध्ययन का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। भारत के इतिहास की पूर्णरूपेण जानकारी के लिए भारतीय भिक्षु-निकायों के इतिहास की जानकारी भी परमावश्यक है, क्योंकि भारतीय जीवन के साथ इन निकायों का अटूट सम्बन्ध रहा है और उसके उत्थान-पतन में इसका महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है।

भारत में स्थित तथा पालिग्रन्थों में वर्णित भिक्षु-निकायों के तुलनात्मक विवरण को इस प्रकार समझना चाहिए—

स्थविरवादी निकाय

१. महीशासक।
२. सर्वास्तिवाद।
३. काश्यपीय।
४. वज्जिपुत्तक।
५. भद्रयानिक।
६. सम्मितीय।

महासांघिक

१. महासांघिक। २. गोकुलिक।

अन्धक

१. पूर्वशैलीय।
२. अपरशैलीय।
३. राजगिरिक।
४. सिद्धार्थिक।
५. अन्धक।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

उत्तरकालीन निकाय

१. उत्तरापथक।
२. वैपुल्यवादी।
३. हेतुवादी।

उपर्युक्त निकायों के कथावत्थु में खण्डित सिद्धान्तों के तुलनात्मक वर्गीकरण को इस प्रकार जानना चाहिए।

निकाय-समूह		खण्डित मतों की संख्या
१—स्थविरवाद		
(१) महीशासक		९
(२) वज्जिपुत्तक		१
(३) सर्वास्तिवाद		५
(४) धर्मगुप्तिक		—
(५) काश्यपीय		१
(६) सांक्रान्तिक		—
(७) सूत्रवादी		—
(८) धर्मोत्तरीय		—
(९) भद्रयानिक		१
(१०) छन्नागारिक		—
(११) सम्मितीय		२७
	योग—	४४
२—महासांघिक		
(१) महासांघिक		२४
(२) गोकुलिक		१
	योग—	२५
३—अन्धक		
(१) अन्धक		७१
(२) पूर्वशैलीय		३१

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

निकाय-समूह		खण्डित मतों की संख्या
(३) अपरशैलीय		५
(४) राजगिरिक		१०
(५) सिद्धार्थक		८
	योग—	१२५

४—उत्तरकालीन		
(१) वैपुल्यवादी		३
(२) हेतुवादी		१३
(३) उत्तरापथक		४४
	योग—	६०

निकाय-समूह		खण्डित मतों का योग
(१) स्थविरवाद		४४
(२) महासांघिक		२५
(३) अन्धक		१२५
(४) उत्तरकालीन		६०
	महायोग—	२५४

इस प्रकार खण्डित मतों का योग २५४ होता है, किन्तु कथावत्थुप्पकरण में २२७ मतों का निराकरण (=खण्डन) करते हुए एक मत में दूसरे मत की एकरूपता का भी वर्णन किया गया है अर्थात् निकायों के अनुसार २५४ सिद्धान्तों का खण्डन किया गया है और इन निकायों का वर्णन २२७ निकाय-सिद्धान्तों के अन्तर्गत ही आ गया है।

ह्वेनसांग-द्वारा वर्णित भारत के भिक्षु-निकाय तथा उनके विहार

चीनी यात्री भिक्षु ह्वेनसांग ने सातवीं शताब्दी ईस्वी में भारत की यात्रा की थी और यहाँ के भिक्षुओं, उनके विहारों, निकायों, कार्यों, अध्ययन, अध्यापन, विद्यालयों आदि का विस्तृत वर्णन अपने यात्रा-वृत्तान्त में दिया है, जिससे प्रकट होता है कि सातवीं शताब्दी ईस्वी में भारत में प्रायः महायान और हीनयान दोनों ही निकायों के भिक्षु थे, जिनमें ह्वेनसांग ने सर्वास्तिवादी

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

और सम्मितीय निकायों का प्रचुरता से उल्लेख किया है। अन्य निकाय भी उस समय विद्यमान रहे होंगे। पुरातात्त्विक अभिलेखों से उनकी विद्यमानता सिद्ध हो चुकी है। ह्वेनसांग के अनुसार सातवीं शताब्दो में भारत के विभिन्न स्थानों में निम्नलिखित निकाय और उनके विहार विद्यमान थे, जिनमें उन विहारों में रहने वाले भिक्षुओं की संख्या भी दी गयी है[1]।

स्थानों के नाम	निकायों का नाम तथा संख्या
१. चिनापोटी (चिनापटी)	सर्वास्तिवादी ३०० भिक्षु
२. जालन्धर (चेलनटालो)	हीनयान एवं महायान के २०० भिक्षु
३. कुलूट	महायान के १०० भिक्षु
४. लाहुल	महायान के भिक्षु
५. परयान	हीनयान एवं महायान दोनों भिक्षु
६. मथुरा	हीनयान एवं महायान दोनों भिक्षु
७. थानेश्वर	हीनयानी ७०० भिक्षु
८. मतिपुर	सर्वास्तिवादी ८०० भिक्षु
९. गोविशन	हीनयान निकाय के १०० भिक्षु
१०. अहिच्छत्र	सम्मितीय भिक्षु के १००० भिक्षु
११. वीरासन	महायान के ३०० भिक्षु
१२. कपिथ	सम्मितीय १०० भिक्षु
१३. कान्यकुब्ज	हीनयानी एवं महायानी १०,००० भिक्षु
१४. अयोध्या	हीनयानी एवं महायानी ३००० भिक्षु
१५. कौशाम्बी	हीनयान के भिक्षु
१६. प्रयाग	हीनयान के भिक्षु[2]
१७. विशाखा	सम्मितीय ३०० भिक्षु
१८. श्रावस्ती	सम्मितीय भिक्षु
१९. कपिलवस्तु	सम्मितीय ३००० भिक्षु
२०. वाराणसी	सम्मितीय ३००० भिक्षु
२१. ऋषिपत्तन मृगदाव	सम्मितीय १५०० भिक्षु
२२. वैशाली	हीनयान एवं महायान के १००० भिक्षु

१. ह्वेनसांग का भारत-भ्रमण।

२. ह्वेनसांग के भारत-भ्रमण के आधार पर।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

स्थानों के नाम	निकायों का नाम तथा संख्या
२३. नेपाल	हीनयान एवं महायान के १००० भिक्षु
२४. राजगृह	महायानी १००० भिक्षु
२५: नालन्दा	सर्वास्तिवाद के २०० भिक्षु
२६. चम्पा	हीनयान के २०० भिक्षु
२७. पुण्ड्रवर्धन	हीनयान एवं महायान दोनों के भिक्षु
२८. कामरूप	हीनयान एवं महायान
२९. समतट	स्थविरवादी २०० भिक्षु
३०. ताम्रलिप्ति	हीनयान एवं महायन के भिक्षु
३१. कर्णसुवर्ण	सम्मितीय २००० भिक्षु
३२. उड़ीसा (उद्र)	महायानी १०,००० भिक्षु
३३. कलिंग	स्थविरवादी एवं महायानी ५०० भिक्षु
३४. धान्यकटक	महायानी १००० भिक्षु
३५. कांजीवरम्	स्थविरवादी एवं महायानो भिक्षु
३६. कोकंगपुर	हीनयानी तथा महायानी १०,००० भिक्षु
३७. महाराष्ट्र	हीनयान एवं महायान के भिक्षु
३८. भरुकच्छ	स्थ वरवादी एवं महायानी ३०० भिक्षु
३९. मालवा	सम्मितीय २००० भिक्षु
४०. कच्छ	हीनयान एवं महायान के १००० भिक्षु
४१. वल्लभो	सम्मितीय ६००० भिक्षु
४२. आनन्दपुर	सम्मितीय १००० भिक्षु
४३. सौराष्ट्र	स्थविरवादी एवं महायानो ३००० भिक्षु
४४. गुजरात	सर्वास्तिवादी १०० भिक्षु
४५. उज्जैन	हीनयान एवं महायान के ३०० भिक्षु
४६. सिन्ध	सम्मितीय १०,००० से अधिक भिक्षु

उपर्युक्त विववरण से ज्ञात होता है कि सातवीं शताब्दी ईस्वी में महायान और स्थविरवादी दोनों ही निकायों के भिक्षुओं का बाहुल्य था, किन्तु सर्वास्तिवादी और सम्मितीय भिक्षु अधिक थे। अन्य निकाय भी इस समय रहे होंगे, जिनका प्रमाण हमें पुरातात्त्विक अभिलेखों से मिल चुका है। निकायों के अनुसार इन भिक्षुओं और उनके संघारामों की संख्या इस प्रकार जाननी चाहिए—

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

स्थविरवाद

स्थान	विहारों की संख्या	भिक्षुओं की संख्या
१. समतट	३०	२००
२. द्राविण	१००	१०,०००
योग—	१३०	१०,२००

महायानी (स्थविरवादी)

स्थान	विहारों की संख्या	भिक्षुओं की संख्या
१. बोध गया, महाबोधि संघाराम	१	१०००
२. कलिंग	१०	५००
३. भरुकच्छ (भड़ौंच)	१०	३००
४. सौराष्ट्र	५०	३०००
योग—	७१	४,८००

महासांघिक

स्थान	विहारों की संख्या	भिक्षुओं की संख्या
१. पाटलिपुत्र	१	१००
२. धान्यकटक	२०	१०००
योग	२१	११००

सर्वास्तिवादी

१. तमसावन	१	३००
२. मतिपुर	२०	८००
३. नवदेवकुल	३	५००
४. कपोत बिहार	१	२००
५. हिरण्यपर्वत	२	१०००
६. गुजरात	१	१००
योग	२८	२९००

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

सम्मितीय

स्थान	विहारों की संख्या	भिक्षुओं की संख्या
१. अहिच्छत्र	१०	१०००
२. कपिथ	४	१०००
३. हैमुख	५	१०००
४. विशोक	२०	३०००
५. श्रावस्ती	जीर्ण शीर्ण	कतिपय
६. कपिलवस्तु	,,	३०
७. वाराणसी	३०	३०००
८. सारनाथ	१	१५००
९. वैशाली	१	कतिपय
१०. हिरण्यपर्वत	१०	४०००
११. कर्णसुवर्ण	१०	२०००
१२. मालवा	कतिपय	२०,०००
१३. वल्लभी	१००	६०००
१४. आनन्दपुत्र	१०	१०००
१५. सिंध	अनेक	१०,०००
१६. अविद्ध कर्ण	८०	५०,०००
१७. कदक्शा	५०	३०००
१८. मध्य सिंध	२०	२०००
योग	३५१	१०,८५३०

हीनयानी

१. पुष्करावती (पेशावर)	१	कतिपय
२. सब्जगढ़ी	१	५०
३. सागल	१	१००
४. कुल्लू	....	कतिपय
५. प्रियात्रे (वैराट)	....	,,
६. थानेश्वर	३	७००
७. स्रुघ्न	५	१०००

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

स्थान	विहारों की संख्या	भिक्षुओं की संख्या
८. मतिपुर	१	२००
९. गोविशन	२	कतिपय
१०. प्रयाग	२	,,
११. कौशाम्बी	१०	३००
१२. गाजीपुर	१०	१०००
१३. मगध	१	५०
१४. चम्पा	कुछ दर्जन	२००
योग	३७	२६००

महायानी

स्थान	विहारों की संख्या	भिक्षुओं की संख्या
१. उद्यान	१४०	१८,०००
२. तक्षशिला	कतिपय	कतिपय
३. सिंहपुर	१	१००
४. कुल्लू	२०	१०००
५. वरण	कतिपय	३००
योग	१६१	१९,४००

महायानी और हीनयानी दोनों

स्थान	विहारों की संख्या	भिक्षुओं की संख्या
१. पुनाच	कतिपय	कतिपय
२. शतद्रु	१०	,,
३. मथुरा	२०	....
४. अयोध्या	१००	३००
५. प्रयाग	२	कतिपय
६. वैशाली	जीर्ण-शीर्ण	,,
७. श्वेतपुर	१०	....
८. नेपाल	....	२०००

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

स्थान	विहारों की संख्या	भिक्षुओं की संख्या
९. कजंगल	६	३००
१०. पुण्ड्रवर्धन	२०	३०००
११. ताम्रलिप्ति	१०	१०००
१२. मलयकूट	?	....
१३. कोंकणपुत्र	१००	१०,०००
१४. उज्जयिनी	३ या ४	३००
१५. महाराष्ट्र	१००	५०००
१६. खेद	१०	१०००
योग	३९७	२२,९००

इत्सिंग द्वारा वर्णित तत्कालीन भिक्षु-निकाय

ह्वेनसांग के पश्चात् भारत आनेवाले चीनी यात्री इत्सिंग ने भी निकायों का एक विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया है,[१] जिसके अनुसार पाँच निकायों के भिक्षु उस समय भारत में विद्यमान थे, जिनका विवरण निम्नलिखित प्रकार से जानना चाहिए—

१. आर्य महासांघिक निकाय

इनके सात महा उपनिकाय थे। इनके त्रिपिटक में सात लाख श्लोक थे और यह मगध में फैला हुआ था। इनमें से कुछ लाट और सिन्ध में थे। साथ ही उत्तरी और दक्षिणी भारत में भी ये फैले हुए थे।

२. आर्य स्थविर निकाय

इनके तीन उपनिकाय थे। इनके त्रिपिटक में तीन लाख श्लोक थे और ये दक्षिणी भारत तथा मगध में फैले हुए थे। कुछ लाट, सिन्ध और पूर्वी भारत में भी विद्यमान थे।

३. आर्यमूल सर्वास्तिवाद

इनके चार उपनिकाय थे, जिनमें मूल सर्वास्तिवाद, धर्मगुप्तिक, महिसासक

---

१. इत्सिग द्वारा लिखित "ए रिकार्ड आफ् बुद्धिस्ट रेलिजन" के आधार पर।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

और काश्यपोय के नाम उल्लेखनीय हैं। इनके त्रिपिटक में तीन लाख श्लोक थे। ये अधिकांश मगध, उत्तरी तथा पूर्वी भारत में फैले हुए थे। कुछ लाट, सिन्ध और दक्षिणी भारत में भी थे। धर्मगुप्तिक, महिंसासक और काश्यपीय निकाय भारत में उस समय विद्यमान नहीं थे, किन्तु उद्यान और चम्पा में ये विद्यमान थे।

४. आर्य सम्मितीय

इनके चार उपनिकाय थे। इनके त्रिपिटक में दो लाख श्लोक थे और विनयपिटक में तीस हजार श्लोक थे। ये प्रायः लाट, सिन्ध और दक्षिण भारत में फैले हुए थे।

५. महायान और हीनयान

ये दोनों निकाय उत्तरी भारत में एक साथ निवास करते थे और सम्पूर्ण भारत में इस निकाय के भिक्षु फैले हुए थे।

विभिन्न निकायों का पुरातात्त्विक साक्ष्य

भारत में विभिन्न स्थानों से प्राप्त पुरातात्त्विक अभिलेखों से इन भिक्षु निकायों में से अनेक के उल्लेख पाये गये हैं, जिनका हमने यथास्थान वर्णन किया है। स्थविरवाद, धर्मोत्तरीय, सर्वास्तिवादी, सम्मितीय, वात्सीपुत्रीय, महासांघिक, महायानिक, वज्रयानिक, काश्यपीय, भद्रयानिक आदि निकायों के नामोल्लेख इन अभिलेखों में प्राप्त हो चुके हैं, जिनसे उनको ऐतिहासिकता सिद्ध है। निकायों का अभिलेख किस स्थान से किस समय का प्राप्त है, इसका भी उल्लेख हम पहले उन निकायों के साथ वर्णन के समय कर चुके हैं और उनके साक्ष्य तथा समीकरण पुरातात्त्विक अभिलेखों से हो चुके हैं और यह सिद्ध हो चुका है कि ये निकाय उक्त स्थानों पर उस समय प्रबल थे। अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से हम यहाँ उनका संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत कर रहे हैं—

निकाय	स्थान	समय
१. महासांघिक	मथुरा	प्रथम शताब्दी ईस्वी
	वर्दकवासे	कनिष्ककालीन १७९ ई. सन्
	कार्ले की गुफा से प्राप्त गौतमी शातकर्णी के काल का	ईस्वी सन् १०६-१३० ।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

निकाय	स्थान	समय
	कार्लेगुफा वासिष्ठीपुत्र पुलमावी के चौबीसवें वर्ष में लिखित	ईस्वी सन् १३०-१५९
	नागार्जुनी कोण्डा का स्तम्भ-लेख	मातृपुत्र वीर पुरुषदत्त इच्छ्वाकुवंशी के छठें वर्ष में लिखित, ई. सन् २५०-२७५
२. पूर्वशैलीय	धरनी कोट के धर्मचक्र स्तम्भ पर लिखित	वासिष्ठी पुत्र पुलमावी के समय का ई. सन् १३०-१५२
	अल्लूरू (कृष्णा जिला)	ईस्वी सन् उपरोक्त
३. अपरशैलीय	नागार्जुनकुण्डा	ईस्वी सन् २५०-२७५
	घण्टसाल	,, ,, उपर्युक्त ।
	कन्हेरी गुफा	,, ,, ,,
४. राजगिरिक	अमरावती	,,
५. चैत्यवादी	वही	ईस्वी सन् १३०-१५९
	नासिक गुहा	उपर्युक्त ।
	जुन्नार गुहा	,,
६. हेमपत	सोनारी	द्वितीय शताब्दी ई० पू० ।
७. सर्वास्तिवादी	मथुरा	प्रथम शताब्दी ईस्वी ।
	शाहजी की ढेरी	ईस्वी सन् १२८-१५१
	जेन्दा० का कनिष्क-स्तम्भ	उपर्युक्त ।
	कुरुंम स्तूप	,,
	ढेरी	,,
	कामन	तिथि अङ्कित नहीं ।
	सारनाथ	गुप्तकालीन ।
	मथुरा	तिथिरहित ।
८. काश्यपीय	तख्तेवाही	तिथि अङ्कित नहीं ।
	तक्षशिला	ई० सन् ५-१९
	वेदादी	तिथि अङ्कित नहीं ।
	प्लाट्ट ढेरी	,, ,,
	पमौसा	शुंगकालीन ।
	कार्ले	ईस्वी सन् १३०-१५९ ।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

निकाय	स्थान	समय
९. बहुश्रुतीय	प्लाट्ट ढेरी	तिथि अङ्कित नहीं।
	नागार्जुनी कुण्डा	ई० सन् २५०-२७५।
१०. वात्सीपुत्रीय	सारनाथ	चौथी शताब्दी ई. गुप्तकाल।
११. महिशासक	नागार्जुनी कुण्डा	तृतीय शताब्दी ई. सन् का अन्तिम चरण।
	पंजाब के कुरा-नामक नमक की पहाड़ी शृङ्खला में प्राप्त	ई० सन् पाँचवीं शताब्दी।
१२. सौत्रांतिक	मरहुत सांची	दूसरी शताब्दी ई. शुंगकालीन
१३. धर्मोत्तरी	सुप्पारक, जुन्हार की गुफा	तिथि अङ्कित नहीं।
१४. भद्रयानिक	कन्हेरी गुफा	ई० सन् १७४-२०३।
१५. सम्मितीय	सारनाथ	चौथी शताब्दी ई० सन् गुप्त-कालीन।
१६. ताम्रपर्णीनिकाय तम्मपन्निक	नागार्जुनी कुण्डा	नागार्जुनी कुण्डा, ई० सन् २५०-२७५।

बौद्धधर्म के उत्थान-पतन में भिक्षु-निकायों की भूमिका

भगवान् बुद्ध के शिष्यों ने अपने शास्ता द्वारा प्राप्त आदि-कल्याणक, मध्य-कल्याणक और पर्यवसान-कल्याणक धर्म का बड़े उत्साह, लगन और श्रद्धा से प्रचार किया। तथागत ने ऋषिपत्तन मृगदाव में पञ्चवर्गीय भिक्षुओं के साथ बौद्धधर्म की जो नींव डाली थी, वह उन उत्साही भिक्षुओं के प्रयत्न से दिनों-दिन दृढ़मूल होती गयी और भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में ही सम्पूर्ण उत्तर भारत तथा अन्य निकटवर्ती प्रदेशों एवं देशों में उसका प्रचार हुआ। पूर्ण जैसे महात्यागी सहनशील भिक्षुओं ने सूनापरान्त जैसे कर्कश प्रदेशों में सद्धर्म का प्रचार किया। महाकात्यायन और उनके शिष्यों ने अवन्ति प्रदेश में, बावरी तथा उसके शिष्यों ने नर्मदा से लेकर गोदावरी के तीर तक बौद्धधर्म की दुन्दुभि बजायी, जिसके शब्दश्रवण से सुप्पारक से बाहियदारुचीरिय, क्वेटा से पुक्कुसाति, बंगहार से बंगीस आदि भिक्षुओं ने आकर बौद्धधर्म ग्रहण किया था और उसका प्रचार किया था। इसी प्रकार भिक्षुणियों ने भी अपने त्याग, तप, श्रद्धा और प्रज्ञा से सद्धर्म को आलोकित किया था। उनके समक्ष लोक-कल्याण की भावना थी। वे बहुजन-हिताय, बहुजन-सुखाय के आकांक्षी थे और इसी भावना से प्रेरित होकर उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन सद्धर्म

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

को अर्पित कर दिया था। जबतक यह भावना एवं प्रेरणा बनी रही, जबतक तथागत की वाणी उनके कानोंमें गूँजती रही और उनकी हृत्तन्त्री को स्फुरित करती रही, तबतक सद्धर्म की पताका ऊपर से और ऊपर फहराती रही और उसके साथ ही जन-जीवन सभी प्रकार की समृद्धियों से उन्नतिशील होता रहा। उनके मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा——इन चार ब्रह्मविहारों की भावना से ओतप्रोत होकर उनके संसर्ग में रहनेवाली जनता भी अपने ऐहिक तथा पारलौकिक सांख्यों से समृद्ध होती रही। किन्तु जब उनमें शिथिलता आयी, विनय-विरोधी आचरण आये, सांघिक भेद उत्पन्न हुआ, महन्ताई की भावना उत्पन्न हुई, तब इन विभेदों के कारण उनकी स्वयं अपनी हानि हुई और उसके साथ ही देश का भी अधःपतन हुआ, फिर जब सम्राट् अशोक जैसे धर्म मामकों ने उन्हें सम्बल प्रदान किया, तब पुनः उसी भिक्षुसंघ ने एक नये उत्साह और लगन से भारत के अतिरिक्त अन्य नौ पड़ोसी देशों में सद्धर्म की पताका को लहराया, किन्तु फिर जब उनसे सम्राटों का वरदहस्त हट गया और उनमें सांसारिक सुख-कामना के भाव जागृत होते गये, तब वे मठाधीश बन गये, संघनायक बन गये, निकाय-नेता बन गये, ग्रन्थ-प्रणेता तथा नाना प्रकार के परिवेश-निवेष्ठित होकर नीलपटदर्शन आदि वज्रयान गर्भित मैथुन, मद्य आदि के सम्भोगी बन गये। अपने चरित्र को उन्होंने पतन के गर्त में डाल दिया। चौरासी सिद्धों का इतिहास हमारे सामने है।

वे विवाहित जीवन व्यतीत करने लगे। उनकी योगिनियाँ निम्नकुलोद्भव हुआ करती थीं और उनके संसर्ग से सर्वज्ञता की प्राप्ति का विश्वास करते थे। बौधि (=ज्ञान) का बास सर्वत्र मानने लगे। अब उन्हें अरण्य, एकान्तवास, ध्यान-भावना से कोई मतलब नहीं रहा। लिंग, वेश आदि में भी परिवर्तन हो गया। तथागत-प्रवेदित सद्धर्म से ये कोसों दूर जा पड़े। अब इन्हें रुपये पैसे चाहिए था। भरण-पोषण के लिये खेती-बारी की आवश्यकता थी। चाटुकार शिष्यों की मण्डली अपेक्षित थी। ऐसे आचरण-विहीन भिक्षु-निकायों का अधः-पतन अवश्यम्भावी था और वही हुआ।

एक ओर जनता इनके भूल-भुलैये में थोड़े-से लौकिक चमत्कारों में फँसकर अपना उद्धार नहीं कर पा रही थी और दूसरी ओर अन्य धर्मावलम्बियों द्वारा अनेक प्रकार से इनपर प्रहार किये गये। अन्त में यवन-आक्रमण ने हमारे देश के साथ ही इन सद्धर्म-प्रचारकों के प्रतिरूपक भिक्षुओं को भस्मसात् कर डाला। इस प्रकार हम देखते हैं कि बौद्धधर्म के उत्थान-पतन में भिक्षु-निकायों

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

की एक महत्त्वपूर्ण भूमिका है। एक समय ऐसा रहा है जबकि हिन्दी के सन्तों-द्वारा वही बातें प्रचारित की गई थीं। उन्हीं गुण-धर्मों को बतलाया गया था, जो परम्परागत बौद्ध भिक्षुओं, सिद्धों, नाथों से होकर उन्हें प्राप्त हुए थे, किन्तु वे बौद्धधर्म का प्रवचन करते हुए भी बौद्ध धर्म को बुरा-भला कहते थे। वे यह नहीं जानते थे कि जो हम कह रहे हैं, वह बौद्ध धर्म ही है। उन्हें इसबात को बतलाने वाला भी ऐसा कोई नहीं रह गया था जो स्वयं इससेपरिचित हो।

बौद्धधर्म के उत्थान-पतन का इतिहास भी एक विशेष अध्ययन का विषय है, जिसमें न केवल बौद्ध-भिक्षुयों का चारित्रिक दोष, सद्धर्मविहीनता ही कारण थे, प्रत्युत यवन आक्रमणकारियों का प्रहार भी एक मुख्य कारण था, किन्तु यदि भिक्षु-निकाय अपने को संगठित रखा होता, तथागत द्वारा प्रवेदित सद्धर्म का आचरण करता रहता तो उसे पतन का यह दिन नहीं देखना पड़ता। भारत में बौद्ध-धर्म के उत्थान और पतन का इतिहास एक विस्मयकारी बात है, जिसके मूल में तत्कालीन भिक्षु-निकाय की भूमिका रही है। कुछ लोग यह कहकर बौद्ध-भिक्षुओं पर दोष थोपते है कि उनका चारित्रिक पतन ही उनके ह्रास का कारण था, किन्तु ऐतिहासिक दृष्टिकोण से यह ग्राह्य नहीं है। डॉ० भिक्षु धर्मरक्षित के शब्दों में—"कुछ इतिहासकार भिक्षुओं की चारित्रिक निर्बलता की बात कहकर बौद्धधर्म के प्रति अपना रोष प्रगट करते हैं, किन्तु यह स्मरण रखना चाहिए कि मुसलमान आक्रमणकारियों के सामने चारित्रिक सबलता ने भी कहीं विजय नहीं पायी और यह सत्य है तो बौद्ध-भिक्षुओं को ही इस दोष से क्यों कलंकित करने का प्रयास किया जाता है?" महायान-गर्भित वज्रयान का कुछ प्रभाव अवश्य कुछ भिक्षु-भिक्षुणियों पर पड़ा था और सिद्ध कहलानेवाले भिक्षु तो एक प्रकार से बौद्धधर्म से भी दूर जा पड़े थे, फिर भी सारा समाज ही वैसा नहीं था, उस समय भी योग्य, सच्छील एवं तपस्वी भिक्षु थे।

नालन्दा विश्वविद्यालय के भिक्षु उस समय भी धर्म, दर्शन, साहित्य एवं संस्कृति की शिक्षा देश-देशान्तर को देते थे, जब कि उनपर भीषण प्रहार हुआ था और देश के वीर एवं प्रतापी कहलाने का दम्भ भरनेवाले नरेश तथा इतर सभी ने उनकी सहायता करना अपना कर्तव्य नहीं समझा। उनमें अराष्ट्रीयता की ऐसी भावना भर गयी थी कि वे अपने ही बन्धुओं की बहती हुई रुधिर-धारा को देखकर भी शान्त पड़े रह गये।[1] इसका यह तात्पर्य नहीं

१. सारनाथ का इतिहास, पृष्ठ ९९।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

है कि भिक्षु-निकायों के कारण बौद्ध-धर्म का उत्थान-पतन नहीं हुआ। बौद्ध-धर्म के उत्थान और पतन में तो भिक्षुओं का ही प्रबल हाथ था। यद्यपि उन भिक्षुओं में दोनों पक्ष के भिक्षु थे अर्थात् सदाचारी और आचारविहीन दोनों प्रकार के निकायधारी भिक्षु विद्यमान थे, किन्तु उनपर से लोगों की श्रद्धा हटती जा रही थी और ठीक उसी समय यवनों के आक्रमण हुए, जिन्होंने बौद्ध-भिक्षुओं तथा उनके विहारों एवं विद्या-केन्द्रों को भस्मसात् कर डाला।

एक शास्ता तथा एक लक्ष्य के विभिन्न स्वरूप

बौद्ध-धर्म यद्यपि अनेक निकायों में विभक्त हो गया। हीनयान, महायान और इनके विभिन्न उपनिकायों में वह बँट गया। यह विभाजन अथवा पृथक्करण किसी धन-सम्पत्ति अथवा चल-अचल सम्पत्ति को लेकर नहीं हुआ था। कुछ आचरणसम्बन्धी, कुछ मान्यतासम्बन्धी और कुछ दार्शनिक मतभेदों को लेकर इनका प्रादुर्भाव हुआ था, किन्तु सभी भिक्षु-निकायों के शास्ता एक थे। भगवान् बुद्ध ही उनके एक मात्र मार्गोपदेष्टा थे और उन्हीं के बतलाये मार्ग पर चलना उन्होंने अपना कर्तव्य माना। सभी जन्म, जरा और मृत्यु से मुक्त होकर निर्वाण पाना चाहते थे और इसी उद्देश्य की पूर्ति में उन्होंने ध्यान-भावना, शील, समाधि और प्रज्ञा, त्रिकाय, त्रियान, महायान, हीनयान आदि का निरूपण किया। किसी ने कहा कि यान एक ही है,[1] तो किसी ने तीन प्रकार की बोधि की व्याख्या की।[2] किसी ने बुद्ध को महामाया के गर्भ से उत्पन्न भौतिक कायधारी माना तो किसी ने उन्हें तुषित लोक से इस भूमि पर आने से इनकार किया। किसी ने परिनिर्वाण के पश्चात् उन्हें उसी प्रकार अदृश्य माना, जिस प्रकार आम का फल अपने वृन्त से टूट जाने के बाद फिर उससे जुड़ता नहीं,[3] तो किसी ने बुद्ध को उस समय तक जन्म लेते रहने की विवेचना की जबतक संसार के सभी सत्त्व ज्ञानप्राप्त नहीं हो जाते।[4] कुछ ने बोधि चित्त से युक्त होकर बोधिचर्या विभूषण बनने का उपदेश दिया और

१. सद्धर्मपुण्डरीक, २.५४, पृष्ठ ३१।
"एकं हि यानं द्वितीयं न विद्यते। तृतीयं हि नैवास्ति कदाचि लोके॥"

२. बुद्ध, प्रत्येक बुद्ध और श्रावक बोधि—स्थविरवाद में ये तीन बोधि भी आते हैं।

३. दीघनिकाय, १, १, हि० अनुवाद, पृष्ठ १५।

४. बोधिचर्यावतार, पृष्ठ १३१-१३८।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

सुखावती के सुख तथा नरक के नारकीय दुःखों की कल्पना की,[1] तो किसी ने इसी जन्म में यथाशीघ्र निर्वाण पाने की कामना की। इतना होने पर भी सभी का लक्ष्य एक था और सभी के शास्ता एक थे। कभी लक्ष्य और शास्ता को लेकर कोई भी धर्मविवाद नहीं हुआ। अशोककाल में कुछ विवरण ऐसे मिलते हैं कि भिक्षु-निकाय का संशोधन किया गया और मिथ्या दृष्टिवाले भिक्षु संघ से बहिष्कृत कर दिये गये, किन्तु इन बातों को लेकर कभी किसी प्रकार का रुधिरपात नहीं हुआ और न तो धर्म-संग्राम जैसी स्थिति उत्पन्न हुई। सभी के सामने एक लक्ष्य और एक शास्ता का प्रशस्त मार्ग था। सभी संसारिक दुःखों से मुक्त होने के लिए उत्सुक थे। सब में यह प्रेरणा थी कि वे बुद्धवचनों का पालन करते हुए एवं सद्धर्म पर चलते हुए अर्हत् का साक्षात्कार कर परम सुखी बनें। इसके लिए उन्होंने नाना प्रकार के आचरण, पूजा-विधान, स्तूप, विहार, बिम्ब और भित्ति-चित्र के माध्यम से पुण्य-सञ्चय का उपदेश दिया। शील, समाधि और प्रज्ञा द्वारा सद्धर्म के पालन से अपने को कृतार्थ माना और यहाँ तक कहा कि जो इस धर्म को देखता है, वह बुद्ध को देखता है।[2]

यो पस्सतीह सततं मुनिधम्मकायं,
बुद्धं स पस्सति नरो इति सो अवोच।
बुद्धं च धम्मममलं च तिलोकनाथं,
सम्पस्सितुं विचिनाथापि च धम्मता भो॥[3]

अर्थ—ऐ लोगों! यहाँ जो सर्ववेत्ता (=बुद्ध) के धर्मकाय को देखता है, वह व्यक्ति बुद्ध और निर्मल धर्म को देखने के लिए अभ्यास करो (यही) धर्मता (=प्रकृति) भी है।

यही कारण था कि लंका, वर्मा, थाईलैण्ड, कम्बोडिया, जावा, सुमात्रा, चीन, जापान, तिब्बत, मंगोलिया, कोरिया, मंचूरिया, मध्येशिया आदि देशों के बौद्धों के विभिन्न निकायों में विभक्त होने पर भी विभिन्न परिवेश एवं

---

१. बोधिचर्यावतार, पृष्ठ १३१-१३८।

२. यो खो वक्कलि। धम्मं पस्सति, सो मं पस्सति, यो मं पस्सति सो धम्मं पस्सति! धम्मं हि वक्कलि पस्सन्तो मं पस्सति, मं पस्सन्तो धम्मं पस्सति—संयुत्त निकाय २,२१,२,४,५।

३. तेलकटाहगाथा ९३।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

पूजाविधानों द्वारा बौद्ध धर्म का आचरण करने पर भी तथागत ही उनके एकमात्र शास्ता हैं और निर्वाण की प्राप्ति ही उनका परम लक्ष्य। चाहे वे बोधिसत्व-यान से चलकर निर्वाण का साक्षात्कार करें अथवा श्रावक बोधि द्वारा। उन सबके शाक्य-मुनि एक ही है और उनका परम लक्ष्य एक ही है।

बहुजनहिताय बहुजनसुखाय की भावना से प्रेरित

भगवान् बुद्ध को जब बोधिवृक्ष के नीचे बुद्धत्व प्राप्त हुआ तब उन्होंने बहुजन-कल्याण की दृष्टि से ही अपने सद्धर्म की देशना करने का संकल्प किया और वहाँ से चलकर ऋषिपत्तन मृगदाव पहुँचे। ऋषिपत्तन मृगदाव में वर्षा-वास के उपरान्त उन्होंने अपने साठ भिक्षुओं को सद्धर्म प्रचार के लिए प्रेरित करते हुए कहा था—

चरथ भिक्खवे चारिकं बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानु-कम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानम्। देसेथ भिक्खवे धम्मं आदिकल्याणं मज्झेकल्याणं परियोसानकल्याणं सात्थं सव्यञ्जनं केवल परिपुण्णं ब्रह्मचरियं पकासेथ। —महावग्ग (विनयपिटक)

अर्थ—भिक्षुओं! बहुजन के हित के लिए, बहुजन के सुख के लिए, लोक पर दया करने के लिए, देवताओं और मनुष्यों के प्रयोजन के लिए, हित के लिए, सुख के लिए, विचरण करो। भिक्षुओं! आरम्भ, मध्य और अन्त—सभी अवस्था में कल्याणकारक धर्म का उसके शब्दों और भाव सहित उपदेश करके, सर्वांश में परिपूर्ण परिशुद्ध ब्रह्मचर्य का प्रकाश करो।[1]

इसी भावना से प्रेरित भिक्षु ग्रामों, नगरों, निगमों आदि में घूमें और सद्धर्म का प्रचार किया। लोगों का कल्याण अर्थात् जनहित ही उनके सामने परम लक्ष्य था। वे करुणा से आप्लावित हो मैत्री भावना के साथ बहुजन को सन्मार्ग पर लाने का प्रयत्न करते रहे। उन्हें गालियाँ मिलीं, उनकी प्रताड़नायें की गयीं, उन्हें भूखों रहना पड़ा। उन्हें कलंकित करने का प्रयत्न किया गया, उनके पीछे षड्यन्त्र किये गये और भगवान् तथा उनके पवित्र संघ को सुन्दरी, चिन्चा माणविक आदि के षड्यन्त्रों से बदनाम करने का प्रयत्न किया गया, किन्तु वे अपने एक लक्ष्य में, बहुजन-कल्याण की भावना से ओतप्रोत हो लगे रहे। उन्होंने अपने प्राणों की परवाह न करके अलंघ्य पर्वतों को लांघा, डगमगाती हुई नौकाओं द्वारा समुद्र के उत्ताल-तरंगों को चीरते हुए

१. विनयपिटक, महावग्ग, १,१,१०, हिन्दी अनुवाद, पृष्ठ ८७।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

दूसरे देशों को प्रस्थान किया। भयानक मरुस्थलों, अरण्यों एवं दुर्गम वन कांतारों को पार करते हुए सद्धर्म की ज्योति को जगमगाया। बहुजनकल्याण की भावना से ही प्रेरित होकर हमारे देश के भिक्षु अस्सी वर्ष की अवस्था में भी तिब्बत गये और अपनी तरुणायी की भी परवाह न करके, अपने भाई-बन्धुओं एवं परिजनों को त्यागकर खोतन, काशगर, बुखारा, चीन, जापान आदि देशों की यात्रायें की। अशोक जैसे धार्मिक सम्राट् के पुत्र महेन्द्र तथा पुत्री संघमित्रा ने लङ्का की यात्रा की और अपना सम्पूर्ण जीवन वहीं बिता दिया। दूसरी पुत्री चारुमती ने अपने पति के साथ नेपाल को सद्धर्म के आलोक से प्रकाशित किया। ये सभी हमारे देश के सांस्कृतिक धर्मदूत थे, जिन्होंने केवल बहुजन कल्याण की भावना से ही सीरिया, मिश्र, यूनान, मध्येशिया, वर्मा, चीन, तिब्बत, हिन्देशिया और श्रीलङ्का में धर्म-साम्राज्य को स्थापना की। सबको भाई-चारे के सूत्र में बाँधा और अशोक के शब्दों में सबको बतलाया कि सद्धर्म सबके लिए समान है और उसका पालन करते हुए एक छोटे-से-छोटा व्यक्ति भी महान् हो सकता है।[१] इसी भावना से प्रेरित होकर सभी बौद्ध नरेशों ने, सभी भिक्षु-निकायों ने और सभी बौद्ध-प्रेमियों ने जनहित के कार्य सम्पादित किये। अजातशत्रु, कालाशोक, अशोक, कनिष्क और हर्ष के समय सद्धर्म के उत्थानहेतु जो भी कार्य किये गये अथबा जो संगीतियाँ या सम्मेलन हुए, सब इसी भावना से प्रेरित होकर सम्पन्न हुए। चाहे कोई महायानी हो या हीनयानी हो, चाहे कोई महासांघिक हो या सर्वास्तिवादी, चाहे कोई वैतुल्यवादी हो अथवा हेतुवादी, सभी भिक्षु-निकायों का बहुजन-कल्याण ही परम लक्ष्य था और इसी लक्ष्य की पूर्ति में उन्होंने अनेक चैत्यों, स्तम्भों, विहारों आदि के निर्माण कराये और जनता को अपनी ओर आकर्षित करके उन्हें सद्धर्म के पालन में लगाया। यद्यपि उनके मार्ग में भिन्नता थी, किन्तु शास्ता एवं लक्ष्य एक था और बहुजन-कल्याण की भावना भी एक ही थी।

भिक्षुसंघ के प्रति बौद्ध-धर्म की उदात्त भावना

धर्म में भिक्षुसंघ के प्रति एक बड़ी ही पवित्र एवं उदात्त भावना है। संघ बौद्ध धर्म का एक पारिभाषिक शब्द भी है, जिसके अन्तर्गत भिक्षु और भिक्षुणी दोनों संघ आ जाते हैं। यों तो भिक्षु-भिक्षुणी, उपासक और उपासिका, इन चार संघों की इकाई बौद्ध संघ के नाम से प्रसिद्ध है, किन्तु

१. अशोक के अभिलेख, पृष्ठ ११३।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

गृहत्यागी प्रव्रजित भिक्षु-भिक्षुणियों का संघ ही परमपूज्य माना जाता है। चार भिक्षुओं का समूह संघ कहलाता है और चार से कम को संघ न कहकर व्यक्ति अथवा पुद्गल कहते हैं। इसी लिए पौद्गलिक दान का उतना महत्त्व नहीं होता, जितना संघ का।[1] इस संघ में पृथक्जन भिक्षुओं का भी आदरणीय स्थान होता है किन्तु ज्ञानप्राप्त आर्यों का संघ परम पुण्य-क्षेत्र माना जाता है और संघ में चार युग्म अर्थात् आठ ज्ञानप्राप्त पुद्गल होते हैं। वास्तव में संघ पूजनीय होता है और संसार के सभी बौद्ध उसी संघ की प्रतिदिन पूजा तथा वन्दना इस प्रकार करते हैं—

सुपटिपन्नो भगवतो सावकसङ्घो उजुपटिपन्नो भगवतो सावकसङ्घो, ञायपटिपन्नो भगवतो सावकसङ्घो, सामीचिपटिपन्नो भगवतो सावकसङ्घो, यदिदं चत्तारि पुरिसयुगानि अट्ठपुरिस पुग्गला-एस भगवतो सावकसङ्घो, आहुनेय्यो, पाहुनेय्यो, दक्खिणेय्यो, अन्जलिकारणीयो, अनुत्तरं पुञ्ञक्खेत्तं लोकस्साति।

अर्थ—"भगवान् का श्रावकसंघ सुमार्ग पर चल रहा है, भगवान् का श्रावकसंघ सीधे मार्ग पर चल रहा है, भगवान् का श्रावकसंघ न्याय मार्ग पर चल रहा है, भगवान् का श्रावकसंघ उचित मार्ग पर चल रहा है, जो वह चार युगल और आठ पुरुष पुद्गल है, यही भगवान् का श्रावक संघ है, वह अह्वान करने के योग्य है, पाहुन बनाने के योग्य है, दान देने के योग्य है, हाथ जोड़ने योग्य है और लोक के लिए सर्वोत्तम पुण्य-क्षेत्र है।

कुछ लोग इस भिक्षुसंघ को साधारण संघ समझते हैं,[2] किन्तु यह साधारण संघ नहीं है। यह कोई राजनीतिक संगठन नहीं है और न तो किसी राजनीतिक उद्देश्य की पूर्ति के लिए भगवान् ने इसका गठन किया था। यह ज्ञान-मार्ग पर लगा हुआ एक पवित्र, सदाचारयुक्त, शीलवान् व्यक्तियों का संघ है। यह एक सांस्कृतिक संघ है। निष्प्रपञ्च, निर्द्वन्द्व एवं शान्त मुनियों का संघ है। यह एक ऐसा संघ है जिसकी शरण में जाने से व्यक्ति अपना अहो भाग्य मानता है। यह तीन रत्नों में-से एक रत्न है। बौद्ध धर्म में बुद्ध, धर्म एवं संघ यह तीन इकाइयाँ हैं। उन्हीं तीनों के समूह को त्रिरत्न कहते हैं और इन्हें ही शरण कहते हैं। बौद्ध धर्म ग्रहण करने वाला प्रत्येक व्यक्ति इन शरणों को इस प्रकार ग्रहण करता है—

१. मज्झिम निकाय, दक्खिणा विभंगसुत्त, ३,४,२। पृष्ठ ५८१-५८३।

२. हिन्दू-राजतन्त्र, प्रथम भाग, पृष्ठ ६८।

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

बुद्धं सरणं गच्छामि। धम्मं सरणं गच्छामि। सङ्घं सरणं गच्छामि।

अर्थ—मैं बुद्ध की शरण में जाता हूँ। मैं धर्म की शरण में जाता हूँ। मैं संघ की शरण में जाता हूँ।

इस प्रकार स्पष्ट है कि भगवान् का यह श्रावक-संघ जो प्रव्रजित भिक्षु-भिक्षुणियों का एक पवित्र संघ है, वह लोक के लिए सम्पूज्य एवं कल्याणकारी है। इस भिक्षुसंघ के प्रति बौद्ध धर्म की जो उदात्त भावना है उसकी थोड़ी बहुत झलक इससे मिल जाती है। कहा गया है कि संघ बुद्ध से भी महान् है।[१] एक समय की बात है कि महाप्रजापति गौतमी भगवान् बुद्ध के पास अपने हाथ से कातकर बुने हुए वस्त्र को लेकर दान देने की इच्छा से गई। भगवान् ने स्वयं उसे न ग्रहण करके संघ को दे देने के लिए कहा। साथ ही उन्होंने यह भी कहा कि संघ को देने से मैं भी पूजित हो जाऊँगा और संघ भी।[२]

इससे स्पष्ट है कि बुद्धधर्म में भिक्षुसंघ का क्या स्थान है। इस उदात्त भावना के कारण ही भिक्षुओं के आचरणविहीन होने पर भी उनके केवल भिक्षुवेश में होने से भी उनके महत्त्व में कोई अन्तर नहीं पड़ता।

भगवान् बुद्ध ने भिक्षुसंघ के महत्त्व को बतलाते हुए कहा—"आनन्द! भविष्यकाल में भिक्षु नामधारी, काषाय वस्त्रधारी दुःशील, पापधर्मा भिक्षु होंगे। लोग संघ के नाम पर उन दुःशीलों को दान देंगे। उस समय भी आनन्द! मैं संघविषयक दक्षिणा को असंख्येय, अपरिमिति फलवाली कहता हूँ। आनन्द! किसी तरह भी संघविषयक दक्षिणा से पौद्गलिक (=व्यक्तिगत) दक्षिणा को अधिक फलदायक मैं नहीं मानता हूँ।

विमानवत्थु में भी कहा गया है—

यत्थ च दिन्न महाफलमाहु, चतुसु सुचीसु पुरिसयुगेसु।
अट्ठ च पुग्गल धम्म दसा ते, संघमिमं सरणत्थमुपेहि ॥[३]

अर्थ—जो चार शुद्ध पुरुषों का युग्म है, जो धर्मदर्शी आठ पुरुष पुद्गल हैं, जिन्हें दिया गया दान महाफलदायक कहा गया है, उस संघ की शरण में जाओ।

---

१. मज्झियनिकाय ४,४,१२, पृ० ५७९।

२. वही।   ३. वही, पृष्ठ ५८२।

४. विमानवत्थु, छत्तमाणवक विमान, ५,३,३, पृष्ठ ५१।

Ac. Gunratnasuri MS   Jin Gun Aradhak Trust

सहायक ग्रन्थों की सूची

पालि

अंगुत्तरनिकाय	नव नालन्दा महाविहार प्रकाशन, नालन्दा, १९६१
अंगुत्तरनिकायट्ठकथा	आर० धर्माराम नामक स्थविर द्वारा सिंहली लिपि में सम्पादित, सत्यसमुच्चय प्रेस पैलियगोड, श्रीलङ्का १८६६
अरियवंस	नव नालन्दा महाविहार प्रकाशन, नालन्दा, १९६१
इतिवुत्तक	राहुल सांकृत्यायन, आनन्द कौसल्यायन एवं जगदीश कश्यप द्वारा नागरीलिपि में सम्पादित, उत्तमभिक्खु द्वारा प्रकाशित, १९३७
उदान :	सम्पादक, प्रकाशक तथा वर्ष १९३७
कथावत्थु	नव नालन्दा महाबिहार प्रकाशन, नालन्दा, १९६१
कालामसुक्ष	,, ,, ,,
चुल्लवग्ग	,, ,, ,,
जातक	,, ,, ,,
जातकट्ठकथा	भिक्षु धर्मरक्षित द्वारा सम्पादित, भारतीयज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड, वाराणसी १९५१
जातकनिदानकथा	भिक्षु धर्मरक्षित, मास्टर खेलाड़ीलाल एण्ड संस कचौड़ी गली, वाराणसी १९५६
थेरीगाथा	राहुल सांकृत्यायन, आनन्द कौसल्यायन तथा भिक्षु जगदीश कश्यप द्वारा नागरी लिपि में सम्पादित उत्तम भिक्खु द्वारा प्रकाशित, १९३७
वसुत्तरसुत्त	नव नालन्दा महाबिहार प्रकाशन, नालन्दा १९६१
दीघनिकाय	एन० के० भागवत द्वारा नागरी लिपि में सम्पादित, दो भाग, बम्बई विश्वविद्यालय से प्रकाशित, १९३६–४२
दीघनिकाय	नव नालन्दा महाविहार प्रकाशन, १९६१
दीपवंस	पी० ज्ञानानन्द स्थविर द्वारा सम्पादित, श्रीलंका १९४०
धम्मपद	भिक्षुधर्मरक्षित द्वारा सम्पादित, सारनाथ,वाराणसी १९५३
धम्मपदट्ठकथा	धर्मानन्दनामक स्थविर तथा ज्ञानेश्वर स्थविर द्वारा सिंहली लिपि में सम्पादित, ग्रन्थ प्रकाश प्रेस कोलम्बो, श्रीलङ्का से प्रकाशित, १९३१

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

नवनीत टीका	आचार्य धर्मानन्द कौशाम्बी, महाबोधि सभा सारनाथ, बनारस, १९४१
पपञ्चसूदनी	धम्माराम महास्थविर द्वारा सिहली लिपि में सम्पादित, दि रायल एशियाटिक सोसाइटी, कोलम्बो ब्रांच द्वारा दि विद्यासागर प्रिटिङ्ग वर्क्स कोलम्बो, श्रीलङ्का से मुद्रित, दो भागों में १९१७, १९२८
बुद्धघोसुप्पत्ति	एन०के० भागवत, पद्मपब्लिकेशन्स लि० बम्बई, १९४०
मज्झिमनिकाय	एन०के० भागवत द्वारा नागरी लिपि में सम्पादित बम्बई विश्वविद्यालय से प्रकाशित, १९३८
	नव नालन्दा महाबिहार प्रकाशन, नालन्दा, १९६१
मधुरत्थ विलासिनी	पण्डित यगिरल प्रज्ञानन्द स्थविर दी त्रिपिटक पब्लिकेशन प्रेस, कोलम्बो, श्रीलङ्का, १९२२
मनोरथ पूरणी	आर० धर्माराम नामक स्थविर द्वारा सिंहली लिपि में सम्पादित, सत्यसमुच्चय प्रेस पैलियगोड, श्रीलंका, १८९६
महापरिनिब्बान सुत्तं	भिक्षु धर्मरक्षित द्वारा नागरी लिपि में सम्पादित तथा हिन्दी में अनूदित, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, कबीर चौरा, वाराणसी, प्रथम संस्करण १९५८
महावंस	एन० के० भागवत द्वारा नागरी लिपि में सम्पादित, बम्बई विश्वविद्यालय से प्रकाशित, १९३६
महावग्ग	नव नालन्दा महाविहार, नालन्दा, १९६१
विनय पिटक	,, ,,
संयुत्त निकाय	,, ,,
समन्त पासादिका	यू०पी० एक नायक द्वारा सम्पादित, श्रीलङ्का, १९१५
शासनवंश	नव नालन्दा महाबिहार प्रकाशन, नालन्दा, १९६१
सुत्तनिपात	डॉ० भिक्षु धर्मरत्न, महाबोधि सभा सारनाथ, बनारस प्रथम संस्करण, १९५१
सुमंगल विलासिनी	बर्मी लिपि में जम्बू प्रेस, रंगून से प्रकाशित, १९१४

संस्कृत

अवदानशतकम्	डॉ. पी. एल. वैद्य द्वारा सम्पादित, मिथिला इन्स्टिट्यूट दरभंगा, १९५८
आलोक	हरिभद्र बड़ौदा संस्कृत सीरीज, १९४२

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

तत्त्वसंग्रह — डॉ. बी, भट्टाचार्य द्वारा सम्पादित, बड़ौदा, १९३७

दिव्यावदानम् — पी. एल. वैद्य, मिथिला संस्थान, दरभंगा, १९५९

निर्णयसिन्धु — कमलाकर भट्ट वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई, सं० १९५५

बुद्ध — सूर्यनारायण चौधरी द्वारा सम्पादित तथा हिन्दी में अनूदित १९५४

बोधिचर्यावतार — शान्ति भिक्षु शास्त्री द्वारा सम्पादित तथा हिन्दी में अनूदित, बुद्धविहार लखनऊ, १९५५

बौद्ध स्तोत्र संग्रह — डी. धर्महर्ष बज्राचार्य काठमाण्डू, नेपाल द्वारा सम्पादित तथा प्रकाशित, नेपाल सं० १०८४

महावस्तु अवदानं — डॉ. एस. बागची द्वारा सम्पादित दो भाग में, मिथिला संस्थान, दरभंगा, १९५८

ललितविस्तर — पी. एल. वैद्य द्वारा सम्पादित, मिथिला संस्थान दरभंगा, १९५८

सद्धर्मपुण्डरीकसूत्रम् — पी. एल. वैद्य द्वारा सम्पादित, मिथिला संस्थान, दरभंगा, १९६०

हिन्दी

अशोक — डॉ. आर. भण्डारकर, द्वितीय संस्करण, १९६०

अशोक — भगवती प्रसाद पांथरी, किताब महल इलाहाबाद, १९५५

अशोक के अभिलेख — डॉ० राजबली पाण्डेय, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, कबीरचौरा वाराणसी सं० २०२२

आन्ध्र सातवाहन साम्राज्य का इतिहास — चन्द्रभानु पाण्डेय, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली—६, मई १९६३

उदान — भिक्षु जगदीश कश्यप, महाबोधि सभा, सारनाथ, १९४१

उत्तर प्रदेश में बौद्ध धर्म का विकास — डॉ. नलिनाक्ष दत्त एवं कृष्णदत्त वाजपेयी, हिन्दी समिति लखनऊ, १९५६

जातक — भदन्त आनन्द कौसल्यायन, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, छः भागों में प्रकाशित।

जातक निदान — भिक्षु धर्मरक्षित, वाराणसी, १९५६

दर्शन दिग्दर्शन — महा पंडित राहुल सांकृत्यायन, किताब महल इलाहाबाद, १९४४

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

धम्मपद	भिक्षु धर्मरक्षित, सारनाथ, १९५३
धर्मचक्र प्रवर्तन सूत्र	,, ,, १९४९
नेपाल-यात्रा	भिक्षु धर्मरक्षित, गंगा पुस्तक माला, लखनऊ १९५१
पालि-साहित्य का इतिहास	डॉ. भिक्षु धर्मरक्षित, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, कबीर चौरा, वाराणसी, १९७१
,, ,,	महापण्डित राहुल सांकृत्यायन, लखनऊ, १९६३
,, ,,	डॉ. भरत सिंह उपाध्याय, प्रयाग, सम्बत २००८
बुद्धचर्या	महा पण्डित राहुल सांकृत्यायन, महाबौधिसभा सारनाथ, १९५२
बुद्धवचन	भदन्त आनन्द कौसल्यायन, महाबौधिसभा सारनाथ, १९५८
बोधि के पत्र	भिक्षु धर्मरक्षित (अप्रकाशित)
बौद्धदर्शन तथा अन्य भारतीय दर्शन	डॉ. भरत सिंह उपाध्याय, दो भाग, कलकत्ता, सं० २०११
बौद्ध योगी के पत्र	भिक्षु धर्मरक्षित, वाराणसी १९५६
बौद्धधर्मके मूल सिद्धान्त	भिक्षु धर्मरक्षित, ममता प्रेस, वाराणसी, १९५८
बौद्धधर्म के विकास का इतिहास	डॉ. गोविन्दचन्द्र पाण्डेय, लखनऊ, १९३३
बौद्धधर्म के २५००वर्ष	पब्लिकेशन डिवीजन, दिल्ली, १९५६
बौद्धधर्म के हीनयान का विकास	डॉ. मधु वर्मा (अप्रकाशित)
भगवान् गौतम बुद्ध	डॉ. विद्यावती मालविका, वाराणसी १९६६
भगवान् बुद्ध	आचार्य धर्मानन्द कौशाम्बी, बम्बई १९५६
भारतीय दर्शन	आचार्य बलदेव उपाध्याय, काशी १९६०
भारतीय इतिहास की रूपरेखा	जयचन्द विद्यालङ्कार, इलाहाबाद १९४२
भिक्षु प्रातिमोक्ष	भिक्षु धर्मरक्षित, वाराणसी, १९६८
मिलिन्द प्रश्न	भिक्षु जगदीश कश्यप, सारनाथ, १९३७
मज्झिम निकाय	राहुल सांकृत्यायन, सारनाथ, १९३३
मथुरा की मूर्तिकला	डॉ. नीलकण्ठ पुरुषोत्तम जोशी, मथुरा १९६५
मथुरा	श्रीकृष्णदत्त वाजपेयी द्वारा लिखित ।
महावंश	भदन्त आनन्द कौसल्यायन, प्रयाग, १९४२

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

विनयपिटक — महापण्डित राहुल सांकृत्यायन, सारनाथ, १९३५

विशुद्धि मार्ग — भिक्षु धर्मरक्षित द्वारा अनूदित, दो भाग, महाबोधि सभा सारनाथ, १९५६

संयुत्त निकाय — भिक्षु धर्मरक्षित, महाबोधि सभा सारनाथ १९५४

सारनाथ का इतिहास — भिक्षु धर्मरक्षित, वाराणसी १९६१

श्रामणेर विनय — भिक्षु धर्मरक्षित, प्रतापगढ़, १९६८

सुत्तनिपात — भिक्षु धर्मरत्न महाबोधि सभा, सारनाथ, १९५१

हिन्दी सन्त साहित्यपर बौद्ध धर्म का प्रभाव — डॉ. विद्यावती मालविका, वाराणसी, १९६६

हिन्दू राजतन्त्र — डॉ. काशीप्रसाद जायसवाल, प्रयाग, सम्बत् १९८४

ह्वेनसांग का भारत-भ्रमण — अनुवादक, श्रीठाकुर प्रसाद शर्मा, प्रयाग, १९२९

सिंहली

निकाय संग्रह — मुनिदास कुमारतुङ्ग, कोलम्बरत्नाकर पोत् वेलदशालाव, कोलम्बो, बुद्धाब्द २५०१

त्रिपिटक परीक्षण्य — कोलम्बो, श्रीलङ्का १९४५

अंग्रेजी

ऐन आउटलाइन आफ अर्ली बुद्धिज्म — डॉ. अजय मित्र शास्त्री, वाराणसी, १९६५

ए रिकार्ड आफ दि बुद्धिस्ट रेलिजन — इत्सिङ्ग, जे. ताकाकुसु द्वारा अंग्रेजी में अनूदित, दिल्ली, १९६६

ऐस्पेक्ट आफ महायान ऐण्ड इट्स रिलेशन टु हीनयान — डॉ. नलिदनाक्षदत्त, कलकत्ता, १९३०

बुद्धिष्ट केव टेम्पुलस एंड देयर इंसक्रिप्शंस — जे. बर्गेस, नयी दिल्ली, १८८१, इण्डोलॉजिकल बुक हाउस, वाराणसी १९७४

बुद्धिस्ट फिलासफी इन इण्डिया ऐण्ड सिलौन — ए. बी. कीथ, वाराणसी, १९६३

बुद्धिस्ट सेक्ट्स इन इण्डिया — डॉ. नलिनाक्षदत्त, कलकत्ता १९७०

इपिग्राफिया इण्डिका भाग २१ — १९३१

,, ,, २१ — १९३४

,, ,, २१, संख्या ५, — १९५६

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust

इनसाइकलोपोडिया आफ रेलिजन ऐण्ड एथिक्स — सं. जे. हेस्टिंग्स।
गिलगिट मैन्युस्क्रिप्ट्स, जिल्द ३, भाग १ — डॉ. नलिदनाक्षदत्त कलकत्ता १९३३
हिस्ट्री आफ बुद्धिस्ट थाट — ई. जे. टामस, लन्दन ,,
हिस्ट्री ऐण्ड डाक्ट्रिन आफ आजिविकाज — ए. एल. वाशम १९५९
कार्प्स इन्सक्रिप्शन इन डेकोरम, भाग ३ — जान एफ. फ्लीट, वाराणसी, १९६३
ओरिजिन्स आफ बुद्धिज्म — रेप्सन किमूरा, कलकत्ता, १९२०
सम ऐस्पेक्ट्स आफ यक्ष कल्ट — बुलेटिन आफ दि वेल्स म्यूजियम, बम्बई, १९५४
स्तूपा आफ भरहुत — कनिंघम, १८७९
ट्वेन्टीफाइव हन्ड्रेड इयर्स आफ अर्ली बुद्धिज्म — गायकवाड ओरियन्टल सिरीज, बड़ौदा से प्रकाशित
दि अर्ली हिस्ट्री आफ बुद्धिज्म — श्री वी. ए. स्मिथ, आक्सफोर्ड, १९२४
दि भिलसा टोप्स — सर ए. कनिंघम, लन्दन, १८५४
दि बुद्धिस्ट स्तूपाज ऐट अमरावती एण्ड जग्गापेट — आक.स.सा.ई.भाग, लंदन १८८७

पत्र-पत्रिकाएँ

दि जनरल आफ डिपार्टमेन्ट आफ लेटर्स — बेनीमाधव बरुआ, कलकत्ता
धर्मदूत, हिन्दी मासिक, सारनाथ, वाराणसी, वर्ष १९४५
बुलेटिन आफ दि प्रिंस आफ वेलस म्यूजियम — बम्बई, १९५४
साप्ताहिक हिन्दुस्तान — नयी दिल्ली, ८ जून १९७५

●

Ac. Gunratnasuri MS Jin Gun Aradhak Trust